सन्त समागम

राधास्वामी सत्संग ब्यास

सन्त समागम

राधास्वामी सत्संग ब्यास

सन्त समागम

सन्त-समागम

दरियाईलाल कपूर

राधास्वामी सत्संग ब्यास

सन्त-समागम

दरियाईलाल कपूर

प्रकाशक :

सेवासिंह
सेक्रेटरी
राधास्वामी सत्संग ब्यास
डेरा बाबा जैमलसिंह
ज़िला अमृतसर (पंजाब)

पहली बार	1968	5,000
दूसरी बार से ग्यारहवीं बार तक	1971 से 1989 तक	93,500
बारहवीं बार	1991	10,000
तेरहवीं बार	1994	15,000
चौदहवीं बार	1996	20,000

लेज़रटाइप सैटिंग : राधास्वामी सत्संग ब्यास, जयपुर
मुद्रक : कुमार एण्ड कम्पनी, जयपुर

बाबा सावनसिंह जी

समर्पण

परम सन्त हुज़ूर महाराज
बाबा सावनसिंह जी
की
पुण्य स्मृति में
सादर सविनय समर्पित

'बर्गे सब्ज़ अस्त तोहफ़ाए दरवेश'

हे मालिक! इस दीन भिखारी के पास एक सब्ज़ पत्ते के सिवाय तुझे भेंट करने के लिये और कुछ नहीं है।

दरियाईलाल

विषय-सूची

प्रकाशक की ओर से

'सन्त-समागम' श्री दरियाईलाल कपूर की प्रसिद्ध अंग्रेज़ी पुस्तक 'काल ऑफ़ द ग्रेट मास्टर' का हिन्दी अनुवाद है। इसमें परम सन्त हुज़ूर महाराज बाबा सावनसिंह जी के उन वार्तालापों और उपदेशों का सुन्दर संकलन किया गया है जो हुज़ूर ने विभिन्न जिज्ञासुओं और परमार्थ के खोजियों के प्रश्नों के उत्तर में दिये थे। इनमें मनुष्य-जन्म का असली उद्देश्य, परमात्मा और उससे मिलाप के साधन, योग, वेदान्त आदि गूढ़ विषयों पर सरल और सरस व्याख्या है।

सन्त इस संसार में कोई नया धर्म या मज़हब चलाने के लिये नहीं आते। वे बाहरमुखी क्रियाओं, कर्मकाण्ड के बन्धनों और शरीयत की पाबन्दियों में उलझे हुए जीवों को परमात्मा की प्राप्ति का मार्ग बतलाने के लिये आते हैं। हमारी आत्मा उस परमात्मा रूपी समुद्र की एक बूँद है जो अपने असल से बिछुड़ कर, यहाँ मन और माया के सम्पर्क में आकर, अत्यन्त मैली हो चुकी है। इसे सच्ची शान्ति और सच्चा सुख वापस जाकर अपने मूल में समाने पर ही मिल सकता है।

परमात्मा हमारे अन्दर है, कहीं बाहर नहीं। बाहर न वह कभी किसी को मिला है, न मिल सकेगा। संसार बाहर नौ द्वारों में उसे ढूँढ़ रहा है। अन्तर में जाने का भेद, दसवीं गली की कुंजी सन्तों के हाथ में है। सन्तों से यह भेद प्राप्त करके परमार्थ के खोजी इस कथन की सच्चाई का स्वयं जीते-जी अनुभव कर सकते हैं।

अनादि काल से सन्तों का यह मार्ग चला आ रहा है। कबीर साहिब, गुरु नानक, तुलसी साहिब, पलटू, दादू, मौलाना रूम, शम्स तब्रेज़, स्वामीजी महाराज, बाबा जैमलसिंह जी आदि सन्तों का यही मार्ग रहा है। सन्तों की इसी महान् परम्परा में ब्यास में हुज़ूर महाराज सावनसिंह जी हुए हैं जिन्होंने 45 वर्षों तक सत्संग और नामदान के द्वारा अनेक जीवों का मार्ग-दर्शन और उद्धार किया है और उन्हीं के समान

विषय-सूची

प्रकाशक की ओर से

'सन्त-समागम' श्री दरियाईलाल कपूर की प्रसिद्ध अंग्रेज़ी पुस्तक 'काल ऑफ़ द ग्रेट मास्टर' का हिन्दी अनुवाद है। इसमें परम सन्त हुज़ूर महाराज बाबा सावनसिंह जी के उन वार्तालापों और उपदेशों का सुन्दर संकलन किया गया है जो हुज़ूर ने विभिन्न जिज्ञासुओं और परमार्थ के खोजियों के प्रश्नों के उत्तर में दिये थे। इनमें मनुष्य-जन्म का असली उद्देश्य, परमात्मा और उससे मिलाप के साधन, योग, वेदान्त आदि गूढ़ विषयों पर सरल और सरस व्याख्या है।

सन्त इस संसार में कोई नया धर्म या मज़हब चलाने के लिये नहीं आते। वे बाहरमुखी क्रियाओं, कर्मकाण्ड के बन्धनों और शरीयत की पाबन्दियों में उलझे हुए जीवों को परमात्मा की प्राप्ति का मार्ग बतलाने के लिये आते हैं। हमारी आत्मा उस परमात्मा रूपी समुद्र की एक बूँद है जो अपने असल से बिछुड़ कर, यहाँ मन और माया के सम्पर्क में आकर, अत्यन्त मैली हो चुकी है। इसे सच्ची शान्ति और सच्चा सुख वापस जाकर अपने मूल में समाने पर ही मिल सकता है।

परमात्मा हमारे अन्दर है, कहीं बाहर नहीं। बाहर न वह कभी किसी को मिला है, न मिल सकेगा। संसार बाहर नौ द्वारों में उसे ढूँढ़ रहा है। अन्तर में जाने का भेद, दसवीं गली की कुंजी सन्तों के हाथ में है। सन्तों से यह भेद प्राप्त करके परमार्थ के खोजी इस कथन की सच्चाई का स्वयं जीते-जी अनुभव कर सकते हैं।

अनादि काल से सन्तों का यह मार्ग चला आ रहा है। कबीर साहिब, गुरु नानक, तुलसी साहिब, पलटू, दादू, मौलाना रूम, शम्स तब्रेज़, स्वामीजी महाराज, बाबा जैमलसिंह जी आदि सन्तों का यही मार्ग रहा है। सन्तों की इसी महान् परम्परा में ब्यास में हुज़ूर महाराज सावनसिंह जी हुए हैं जिन्होंने 45 वर्षों तक सत्संग और नामदान के द्वारा अनेक जीवों का मार्ग-दर्शन और उद्धार किया है और उन्हीं के समान

तेजस्वी और रूहानी शोभा से परिपूर्ण महाराज चरनसिंह जी आज मार्ग-दर्शन कर रहे हैं।[1]

पुस्तक के लेखक श्री दरियाईलाल कपूर को लगभग 38 वर्षों तक हुज़ूर महाराज सावनसिंह जी के चरण-कमलों में बैठने तथा उनके पावन उपदेशों को सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। 38 वर्षों का यह समय उन्होंने सन्तमत के अध्ययन और अभ्यास तथा हुज़ूर महाराजजी की सेवा में बिताया है। विभिन्न सत्संगों और वार्तालापों के दौरान जो नोट्स उन्होंने लिये, उन्हीं के आधार पर संकलित यह 'गागर में सागर' प्रस्तुत है। आशा है, इसे परमार्थ के प्रेमी, प्रेरक और लाभप्रद पायेंगे।

डेरा बाबा जैमलसिंह
ज़िला अमृतसर (पंजाब)
1968

एस. एल. सोंधी
सेक्रेटरी
राधास्वामी सत्संग ब्यास

1. हुज़ूर महाराज चरनसिंह जी 1 जून 1990 को ज्योति-ज्योत समा गये।

परिचय

यह मेरा बहुत बड़ा सौभाग्य है कि मैं हिन्दुस्तान में (राधास्वामी सत्संग ब्यास में) देहधारी सतगुरु के सम्पर्क में आया और मुझे उनके चरणों में बैठने का अनमोल अवसर मिला। इसी उद्देश्य को लेकर मैं सन् 1955 से अब तक तीन बार राधास्वामी कालोनी, ब्यास, डाकघर: डेरा बाबा जैमलसिंह, आ चुका हूँ। इस कालोनी (बस्ती) के बारे में निस्सन्देह कह सकता हूँ कि यह शान्ति और चैन का एक स्वर्ग है, जहाँ आकर कोई भी जिज्ञासु पूर्ण गुरु की रहनुमाई में एक अलौकिक रूहानी तरक़्क़ी का लाभ उठा सकता है।

अपनी पहली यात्रा में ही जज साहब दरियाईलाल जी से मेरी मित्रता हो गई थी। इस पुस्तक में उन्होंने हुज़ूर महाराज बाबा सावनसिंह जी के वचनों को तथा लोगों के साथ हुई उनकी बातचीत को दर्ज किया है, उनका अनुवाद और संग्रह किया है। हुज़ूर महाराजजी उन परम सन्तों में से थे जो इस संसार में समय-समय पर आते रहते हैं। श्री दरियाईलाल जी को आज से क़रीब पचास साल पहले खुद हुज़ूर बड़े महाराजजी ने सन् 1910 में नामदान दिया था। उन्हें 38 साल तक महाराजजी के चरणों में रहने का सौभाग्य और आनन्द प्राप्त हुआ है। इस समय को उन्होंने सन्तमत का सही और पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने तथा अभ्यास द्वारा उसका अनुभव करने में व्यतीत किया है। उन्हें हुज़ूर महाराजजी के उत्तराधिकारी सरदार बहादुर जगतसिंह जी महाराज की सेवा करने का भी लाभ मिला है और इन दिनों ये मौजूदा सतगुरु हुज़ूर चरनसिंह जी महाराज[1] की उनके निजी सचिव (पर्सनल सेक्रेटरी) के रूप में सेवा कर रहे हैं।

श्री दरियाईलाल ने हुज़ूर बड़े महाराजजी के इन वचनों को अंग्रेज़ी में पुस्तक के रूप में तैयार करके सत्संगियों की और परमार्थ के जिज्ञासुओं की सच्ची सेवा की है — ख़ासकर पश्चिमी देशों के सत्संगियों और खोजियों की। इस उपकार के लिए हम सब उनके बड़े आभारी हैं।

---

1. हुज़ूर महाराज चरनसिंह जी 1 जून 1990 को ज्योति-ज्योत समा गये।

पुस्तक के लेखक दो विषयों — क़ानून और कला — के ग्रेजुऐट (स्नातक) हैं और इस पुस्तक को लिखने के लिये हर प्रकार से योग्य हैं। उनके द्वारा किया हुआ इन वार्ताओं का अंग्रेज़ी अनुवाद बिलकुल सही और सच्चा है। जब वे जज थे तो उन्हें हर चीज़ को इन्साफ़ और सच्चाई की निगाह से देखने की आदत पड़ गई थी, और इसी आदत ने इस पुस्तक को भी बिलकुल शुद्ध और प्रामाणिक बना दिया है।

एक दूसरे मित्र, प्रोफ़ेसर जगमोहनलाल ने इस काम को 'गागर में सागर भर देना' कहा है। यह एक तरह से आध्यात्मिक ज्ञान का विश्वकोष है। इस पुस्तक में उन विविध समस्याओं और सवालों पर एक परम सन्त के अधिकार-पूर्ण वचन और उनकी प्रामाणिक राय दी गई है जो कि सत्य के जिज्ञासुओं के मन में उठते रहते हैं। हुज़ूर महाराजजी ने आत्मा, परमात्मा और जड़ तत्त्व सम्बन्धी दिमाग़ को चकरा देने वाले उन विषयों को स्पष्ट समझाया है जो हर बुद्धिमान और तर्कशील मनुष्य को परेशान करते रहते हैं। उन्होंने एक अभ्यासी के रास्ते में आने वाली रुकावटों और बाधाओं को दूर करने के उपाय भी बड़े ही सरल ढंग से बताये हैं।

योग, वेदान्त आदि दर्शन-शास्त्र के कई मार्गों तथा ईसाई धर्म की रूहानी शिक्षाओं पर प्रकाश डाला गया है। पर इन सबसे बढ़ कर, सुरत-शब्द-योग का सरल वर्णन किया गया है, जिसे बाइबिल में 'वर्ड' या 'लोगॉस' कहा गया है। ईसाई धर्म में पले हुए पाठकों को ये काफ़ी विचारोत्तेजक लगेंगे, क्योंकि यह पुस्तक ख़ासकर पाश्चात्य देशों के लोगों के लिये लिखी गई है जो ईसाई धर्म का ज्ञान रखते हैं। इसीलिये लेखक ने इस पुस्तक में हुज़ूर महाराजजी की उन वार्ताओं को सम्मिलित किया है जो यूरोप या अमेरिका के जिज्ञासुओं के साथ हुई थीं या उन बातों को शामिल किया है जो किसी न किसी वजह से पश्चिम के लोगों के लिये दिलचस्प हो सकती हैं।

इन वार्ताओं का विषय वही है जो हर देश और युग के सन्तों का विषय होता है। विषय कभी नहीं बदलता, क्योंकि परमात्मा वही हैं, इनसान वही है और सन्त भी वही हैं, और उनकी बातों का उद्‌देश्य भी वही है — फिर इन वार्ताओं का विषय दूसरा कैसे हो सकता है?

सन्त परमात्मा के प्यारे पुत्र होते हैं। उन्हें दया का दूत बना कर भेजा जाता है ताकि वे दुःख-दर्द से भरे इस संसार में कराहते हुए लोगों

को छुटकारा दिला कर अपने उस निज-धाम में ले जायें जो चेतनता, अमरता और परम आनन्द का स्थायी निवास-स्थान है। वे कोई नया गिरजा, धर्म, जाति या सम्प्रदाय नहीं बनाते। उन्हें इनसे कोई वास्ता नहीं और न ही उन्हें किसी तरह के रीति-रिवाज या समारोह में कोई दिलचस्पी है। वे तो सीधी बात कहते हैं कि मनुष्य-जन्म का असली उद्देश्य सत्य की खोज करना है और यह खोज केवल मनुष्य-जीवन में ही सफलतापूर्वक की जा सकती है।

इस पृथ्वी पर 84 लाख योनियों में से केवल मनुष्य ही परमात्मा से मिलाप प्राप्त कर सकने की शक्ति और योग्यता रखता है। पशुओं, पक्षियों, पेड़-पौधों या और दूसरे निचले स्तर के प्राणियों को परमात्मा प्राप्ति का ज्ञान नहीं हो सकता। देवी-देवताओं और फ़रिश्तों को भी यह सौभाग्य प्राप्त नहीं हो सकता। मनुष्य-जीवन के गिनती के दिन ही वह अवसर है जब कि परमात्मा की खोज की जा सकती है। इस खोज के लिये मनुष्य को कहीं बाहर नहीं जाना पड़ता। हमारा शरीर ही वह प्रयोगशाला है जिसके अन्दर जाकर यह खोज की जा सकती है। परमात्मा को हमें अपने ख़ुद के अन्दर ढूँढ़ना है। ख़ुदा की बादशाहत हमारे अन्दर ही है। हमारा शरीर ही वह मन्दिर है जिसमें परमात्मा रहता है और इसी में उसकी तलाश करनी चाहिये।

ख़ुदा की बादशाहत में प्रवेश पाने के लिये हमें एक रास्ता दिखाने वाले मार्गदर्शक की ज़रूरत है। बिना किसी अनुभवी मल्लाह की सहायता के हम रूहानियत के अनजाने अथाह समुद्रों को पार नहीं कर सकते। अगर हमारी नाव का मल्लाह ऐसा है जो इस समुद्र को तथा इसके ख़तरनाक तूफ़ानों को ख़ूब अच्छी तरह जानता है तो बेशक हम सही-सलामत उस पार पहुँच जायेंगे। लेकिन अफ़सोस! हमारी हालत क्या है ? हमारी नाव जर्जर है और उसका कोई खिवैया ही नहीं है! बग़ैर पतवार और पाल के वह ज़िन्दगी के तूफ़ानी समुद्र में आँधी और लहरों के थपेड़ों में डगमगा रही है, झोंके खा रही है। ऐसी हालत में वह इस सागर को पार करके शान्ति और सुरक्षा के धाम पहुँच नहीं सकती।

हर मनुष्य ने, चाहे स्त्री हो या पुरुष, अपनी ज़िन्दगी की नाव को पाप और पीड़ा के बोझ से बुरी तरह भर रखा है, और यह भयानक भवसागर इतना गहरा और विस्तीर्ण है कि इसे पार करने की कोशिश में लाखों इसमें डूब चुके हैं। केवल वे ही बच सकते हैं जिनकी तूफ़ान में

डगमगाती नाव पर किसी जहाज़ के अनुभवी कप्तान की कृपा-दृष्टि पड़ जाये, जो हाथ पकड़ कर उन्हें उठा ले और अपने सुरक्षित जहाज़ में शरण दे दे। सन्त ही ऐसे कप्तान होते हैं और संसार उनसे कभी ख़ाली नहीं रहता। वापस अपने असली घर जाने की लगन रखने वालों की मदद और रहनुमाई के लिये वे हमेशा इस संसार में मौजूद रहते हैं।

सन्त कभी धर्म छोड़ने या घर गृहस्थी को त्यागने का आदेश नहीं देते। वे कहते हैं कि दुनिया में रहते हुए, बाल-बच्चों तथा रिश्तेदारों के प्रति अपने फ़र्ज़ को अदा करते हुए परमात्मा को प्राप्त करने की कोशिश करो। यह सिद्ध करने के लिये कोई विशेष तर्क या बहस की ज़रूरत नहीं कि रूहानी या आध्यात्मिक विज्ञान को सीखने के लिये गुरु की उतनी ही ज़रूरत है जितनी कि दूसरी तरह की विद्याओं को सीखने के लिये होती है। बग़ैर किसी मार्गदर्शक के इस अनजानी राह पर कोई नहीं चल सकता। वह मार्गदर्शक एक ऐसा पूर्ण सन्त या कामिल मुर्शिद होना चाहिये जो हमें उस ऊँचे से ऊँचे रूहानी मण्डल में ले जा सके, जो नाश और प्रलय से परे है और जहाँ पहुँच कर हमें फिर इस संसार में न आना पड़े। बीते ज़माने के सतगुरु या सन्त, जिन्हें गुज़रे बहुत अरसा हो गया है, आज हमारी मदद नहीं कर सकते, जैसे वह शिक्षक जो बहुत वर्षों पहले मर चुका है आज किसी जीवित विद्यार्थी को पढ़ा नहीं सकता।

हर देश और हर वक़्त के सच्चे सन्तों द्वारा सिखाया जाने वाला आत्मा को परमात्मा से मिलाने का तरीक़ा या उपाय हमेशा एक-सा और समान रहा है, और आगे भी रहेगा। इसे सुरत-शब्द-योग कहते हैं। सन्त अपने शिष्य की आत्मा को उस मधुर दिव्य-धुन के साथ जोड़ देते हैं जो हर मनुष्य के शरीर में हमेशा गूँज रही है। यह शब्द-धुन सीधे परमात्मा के धाम से आ रही है और उसे पकड़ कर शिष्य वापस वहीं पहुँच सकता है जहाँ से यह धुन निकली है।

हमारी आत्मा परमात्मा रूपी सागर की एक बूँद है, उस परम चेतन सूर्य की एक किरण है, लेकिन मन और माया के सम्पर्क में आकर इतनी मैली हो गई है कि इसे अपने मूल का कोई ज्ञान नहीं रहा, और भूल गई है कि यह परमात्मा का अंश है। सृष्टि की शुरूआत से ही हम परमात्मा से बिछुड़े हुए हैं और संसार के भँवर-जाल में चक्कर खा रहे हैं। स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों के काले पर्दों ने आत्मा के असली

प्रकाश को धुँधला कर दिया है। सतगुरु हमें इन पर्दों को हटाने की विधि बताते हैं, जिनके हट जाने पर आत्मा अपने निज-प्रकाश में दमकने लगती है और अपने असल की ओर चढ़ाई करने लगती है। यह काम सिर्फ़ मनुष्य-जन्म में ही सम्भव है। वे धन्य हैं जो इस दुर्लभ मनुष्य-देह का मोल समझते हैं और जिस उद्देश्य के लिये यह मनुष्य-जन्म प्रदान किया गया था उसकी पूर्ति के लिये पूरी कोशिश करते हैं।

सन्तों की शिक्षा या सन्तमत का प्रचार यूरोप और अमेरिका में एक तरह से नया है, अर्थात् उन पूर्व के देशों के मुक़ाबले नया है जहाँ सन्तमत सैकड़ों वर्षों से चला आ रहा है। इन शिक्षाओं में गूढ़ आध्यात्मिक विज्ञान भरा पड़ा है जिसे अक्सर सन्तमत या सन्तों का मार्ग कहा जाता है। आज पश्चिमी देशों में ऐसे जिज्ञासुओं की संख्या बढ़ती जा रही है जिन्होंने इस विज्ञान को मनुष्य-जीवन के असली उद्देश्य को समझने और आत्म-साक्षात्कार तथा परमात्मा की प्राप्ति के आज़माये हुए सही मार्ग को अपनाने में बहुत सहायक पाया है। यह कोई धर्म, मत या सम्प्रदाय नहीं है। यह तो अपने अन्दर मौजूद ख़ुदा की बादशाहत में जीते-जी क़दम रखने और उसका अनुभव करने का एक वैज्ञानिक तरीक़ा है। संसार के सब धर्म-ग्रन्थों ने इस विज्ञान का उल्लेख किया है और हर युग के सन्त, पूर्ण गुरु और पैग़म्बर इस मार्ग को जानते थे और इसकी शिक्षा देते थे।

हमें सदियों से बताया जा रहा है कि 'इनसान परमात्मा का जीता-जागता मन्दिर' है। लेकिन एक पहुँचा हुआ पूर्ण गुरु ही हमें इस मन्दिर में प्रवेश करने का रास्ता बता सकता है। वह इस मन्दिर की कुंजी देता है और उस कुंजी से जिज्ञासु या साधक दरवाज़ा खोल कर अन्दर जाता है। सारा संसार सच्चे और स्थायी आनन्द की खोज में है। लेकिन संसार और उसकी वस्तुओं में किसी को भी वह सच्चा सुख नहीं मिला। परम शान्ति, सच्चा सुख तो तभी मिल सकता है जब मनुष्य इस मुक्ति-द्वार से प्रवेश करके परमात्मा से जा मिले और अपने अविनाशी घर पहुँच जाये, जिसकी विशेषता ही अनन्त जीवन है।

इस विज्ञान में कोई रूढ़िवाद या अंध-विश्वास नहीं है। यह तो आत्मिक उन्नति प्राप्त करने तथा परमात्मा के धाम की ओर बढ़ने का निश्चित और अचूक उपाय है। कोई भी सच्चा खोजी ख़ुद परख कर देख सकता है। पुरातन धर्मों के मूल सिद्धान्तों और सन्तमत की

शिक्षाओं में अन्तर नहीं है, और अगर है भी तो बहुत कम। अपने धर्म के असली और मूल सिद्धान्तों में खोजी के लिये जो कमी रहती है उसकी पूर्ति यह विज्ञान करता है। इस विज्ञान का ध्येय धर्मों द्वारा प्राप्त वस्तु को नष्ट करना नहीं है, बल्कि उस पर और प्रकाश डाल कर उसे अमली रूप देना है।

सच्चा गुरु अपने गुज़ारे के लिए अपने शिष्यों से कुछ नहीं लेता और न ही शिष्य को नाम-प्राप्ति के लिये किसी भी प्रकार की कोई फीस, भेंट या दक्षिणा देनी होती है। जो गुरु किसी तरह की भेंट या दक्षिणा माँगता अथवा स्वीकार करता है, वह सच्चा गुरु नहीं है। नामदान चाहने वाले को केवल इतनी तैयारी करनी पड़ती है कि वह मांस-मदिरा से दूर रहे और पवित्र तथा नेक जीवन बिताये। मन को एकाग्र करके आत्मा को अन्तर में उस द्वार तक जिसके लिये ईसा मसीह ने कहा है — 'खटखटाओ और वह खुल जायेगा' — किस प्रकार लाया जाये और रूहानी अभ्यास कैसे किया जाये, यह नामदान के समय सतगुरु भली प्रकार समझा देते हैं।

रूहानी तरक़्क़ी का यह अभ्यास बड़ा सरल और सीधा है। इसमें शरीर को किसी तरह का कष्ट देने की ज़रूरत नहीं है और न शरीर के किसी अंग को तानने या उस पर दबाव डालने की ज़रूरत है। छः साल का बच्चा और नब्बे साल का वृद्ध भी इस अभ्यास को आसानी से कर सकता है।

जागृत अवस्था में हमारे मन और आत्मा का केन्द्र (बैठक) ललाट पर भौंहों के बीच में है। इसी स्थान से हमारा मन और उसके साथ ही हमारी आत्मा, नौ द्वारों से होकर बाहर सारे संसार में फैल गये हैं। ये नौ द्वार हैं, दो आँखें, दो कान, दो नाक के नथुने, मुँह और दो नीचे के सूराख़। भौंहों के मध्य इस केन्द्र से ही सब विचार पैदा होते हैं।

सन्त हमें अपने भटकते हुए मन को वापस इसी केन्द्र पर लाने की शिक्षा देते हैं। यह कार्य इस केन्द्र पर तवज्जह रखते हुए गुरु के प्रदान किये हुए नामों के सिमरन से पूर्ण होता है। सिमरन के बाद ध्यान का अभ्यास आता है। सिमरन के द्वारा हमारी बाहर फैली हुई तवज्जह संसार और शरीर से सिमट कर आँखों के बीच में इस केन्द्र पर इकट्ठी होती है। ध्यान के द्वारा वह अन्तर में इस स्थान पर ठहरती है और बाहर भटकने से रुकती है। इसके बाद हमारी आत्मा उस अनहद शब्द

या दिव्य-धुन को पकड़ती है जिसके साथ सतगुरु ने नामदान के समय उसे जोड़ा था। यह अनहद शब्द आत्मा को ऊँचे आत्मिक मण्डलों में ले जाते हुए अन्त में अपने निज-धाम ले जाता है।

वे लोग धन्य हैं जिन्हें ऐसे पूर्ण गुरु मिल जाते हैं।

द्वारा, 9115 मार्ग 85वाँ
वुडहेमन 21 न्यूयार्क (अमेरिका) **जोसेफ लीमिंग**
1964

प्राक्कथन

इस पुस्तक की रचना कैसे हुई, उसके बारे में कुछ निवेदन करना चाहता हूँ। हर देश, धर्म और स्थान के लोग हुज़ूर महाराज बाबा सावनसिंह जी से मिलने आया करते थे। कुछ लोग कुतूहल वश आते थे, तो कुछ उनके उपदेशों को सीखने-समझने, और कुछ लोग आते थे उनसे सन्तमत के रूहानी मार्ग की दीक्षा प्राप्त करने के लिये। इस पुस्तक में जो वार्तालाप दिये गये हैं, वे हुज़ूर महाराजजी के वे वचन हैं जो उन्होंने समय-समय पर आने वाले जिज्ञासुओं या खोजियों के सवालों के जवाब में कहे हैं।

ये क़ीमती लेख (नोट्स) मेरे पास कैसे आये? मुझे 30 दिसम्बर, सन् 1910 को नामदान मिला था। तब मेरी उम्र 20 वर्ष की थी और मैं लाहौर के लॉ-कॉलेज में प्रथम वर्ष में पढ़ता था। उस समय हुज़ूर महाराजजी मिलिट्री की इंजीनियरिंग सर्विस में थे। वे अप्रेल 1911 में सेवा-निवृत्त होकर, 9 अप्रेल, 1911 को डेरा में स्थायी रूप से रहने के लिए चले आये। इस तरह उन्होंने सेवा-निवृत्त होने से कुछ दिन पहले ही मुझे अपने चरणों में बुला लिया था।

हुज़ूर महाराजजी ने 1 मई, 1911 से डेरा में हर रविवार को नियमित रूप से सत्संग देना शुरू किया। मैं शुक्रवार की शाम को लाहौर से ब्यास के लिये रवाना होता और रविवार की शाम या सोमवार की सुबह तक वापस लाहौर आ जाता था। (लाहौर ब्यास से लगभग 60 मील की दूरी पर है।) माफ़ कीजिये, मैंने यहाँ जो 'मैं' शब्द का प्रयोग किया है वह ग़लत है। 'मैं' खुद नहीं आता था बल्कि कोई ताक़त मुझे ज़बरदस्ती खींच लाती थी। मैंने हुज़ूर महाराजजी को नाम लेने से पहले कभी नहीं देखा था। उससे पहले मुझे सन्तों की महिमा का कुछ पता नहीं था। मुझे कभी यह कल्पना भी न थी कि इस धरती पर सन्त-सतगुरु चलता-फिरता परमात्मा ही होता है।

उस समय मैं नहीं मानता था कि परमात्मा मनुष्य का रूप धारण करके आ सकता है या आता रहता है। लेकिन जब मैंने सुना कि हुज़ूर महाराजजी 9 अप्रेल, 1911 को डेरा पहुँच गये हैं तो मैं भी डेरा चलने की अपनी आन्तरिक भावना को न रोक सका। जब मैं डेरा में रहता तो जहाँ भी हुज़ूर जाते मैं भी उनके पीछे-पीछे चलता। पता नहीं वह कौन-सी ताक़त थी जो मुझे उनकी तरफ़ खींचे हुए थी। मैं सिर्फ़ यह चाहता था कि लगातार उनके साथ रहूँ और सफ़ेद स्वच्छ पगड़ी और उजली दाढ़ी से शोभायमान उनके तेजस्वी तथा शान्त मुख-मण्डल की ओर निरन्तर निहारता रहूँ।

शनिवार, रविवार और वैशाखी की छुट्टियों को मिला कर मैं डेरा में कोई 4-5 दिन ठहरा। उसके बाद मैं वहाँ हर हफ़्ते के आख़िर में जाता रहा। हर हफ़्ते वहाँ जाने का विचार मेरे मन पर निरन्तर छाया रहता था, क्योंकि ये दो दिन उनके दिव्य-दर्शन और उनकी संगति के निर्मल आनन्द में बहुत अच्छे गुज़रते थे।

हर हफ़्ते मेरे वहाँ जाने से मेरे पिताजी बड़े नाराज़ होते थे, क्योंकि वे सन्तमत में रुचि नहीं रखते थे और न ही उन्हें इसके बारे में कुछ पता था। पिताजी से किसी ने कह दिया कि मैं हर शनिवार व रविवार ब्यास जाता हूँ और वहाँ दो-तीन दिन 'बरबाद' करता हूँ। उन्होंने इस बात की शिकायत करते हुए हुज़ूर के पास किसी ख़ास व्यक्ति के हाथ सन्देश भेजा। सौभाग्य से जब पिताजी का पत्र पढ़ा जा रहा था तो मैं वहाँ मौजूद था। पत्र में लिखा था कि एक महीने बाद इम्तिहान होने वाले हैं। अगर लड़के ने बराबर पढ़ाई नहीं की तो इतने मुश्किल इम्तिहान में कैसे पास हो सकेगा?

हुज़ूर ने पत्र लाने वाले से कहा, "पास तो वह ज़रूर होगा। इसके पिताजी से कह दें कि इस बारे में चिन्ता न करें। और मैंने भी लड़के को मेहनत के साथ पढ़ाई करने के लिये कह दिया है।"

मैंने भी पिताजी को इस बात के लिये धन्यवाद दिया कि उन्होंने हुज़ूर के मुँह से मेरे पास होने का वचन दिलवा दिया। इसका नतीजा यह हुआ कि मैंने इम्तिहान की तैयारियों की छुट्टियों का एक महीना भी हुज़ूर की सेवा में डेरे में ही बिताया। बेशक मैंने पढ़ाई बड़े ज़ोरों से की, लेकिन सिर्फ़ सन्तमत की पुस्तकों की। अपनी पढ़ाई की किताबें (क़ानून की किताबें) तो मैं डेरे लाया तक न था। इस बीच हुज़ूर महाराजजी ने

मुझसे कुछ भी नहीं कहा। सिर्फ़ एक या दो बार उन्होंने अपनी ज्योतिर्मय मुसकराती आँखों से मुझ पर दृष्टि डाली। ओह, उनकी वह दिव्य मुसकान! वह मेरी आत्मा की तह में समा गई और उसे भी हमेशा के लिये प्रफुल्लित कर दिया।

जब इम्तिहान के नतीजे आये तो प्रिंसीपल और प्रोफ़ेसर परेशान हो गए, क्योंकि उस साल बड़ी तादाद में विद्यार्थी असफल हुए थे। केवल 27 प्रतिशत विद्यार्थी ही पास हो पाये थे। उस समय मैं डेरे में था। मुझे पिताजी ने तार द्वारा सूचना दी कि मैं बड़े अच्छे नम्बरों से पास हो गया हूँ। अगले साल मैंने एल-एल.बी. का इम्तिहान भी पास कर लिया।

1 अक्तूबर, 1912 को जालन्धर में मेरे वकालत शुरू कर देने और उसके बाद कपूरथला स्टेट की सिविल सर्विस में चले जाने के बाद भी मेरा हर हफ़्ते डेरा जाना जारी रहा। डेरा मेरी ज़िन्दगी का एक अंग बन चुका था। जब हर हफ़्ते होने वाला सत्संग हर पखवाड़े और फिर हर महीने में होने लगा तब भी मैं अपनी सारी छुट्टियाँ डेरा में बिताता था। ऐसे मौक़ों पर सरदार बहादुर जगतसिंह जी, सरदार भगतसिंह, राय साहब मुन्शीराम, राय बहादुर मुन्नालाल, पण्डित लालचन्द तथा कुछ और लोग भी वहाँ मौजूद हुआ करते थे।

हर महीने होने वाले सत्संगों व भण्डारों पर आने वाली संगत की संख्या इतनी बढ़ने लगी कि जुलाई 1926 में निरन्तर बढ़ती हुई संगत की व्यवस्था व देखभाल करने तथा इसकी ज़िम्मेदारी सेवादारों में बाँटने के लिये हुज़ूर ने हम सबको (उपरोक्त सज्जनों को और मुझे) अपनी बैठक में बुलाया। उस समय सरदार बहादुर जगतसिंह जी को लंगर की व्यवस्था सौंपी गई, जहाँ सबको मुफ़्त भोजन मिलता था। राय हरनारायण को पत्र-व्यवहार व आम इन्तिज़ाम, प्रोफ़ेसर जगमोहनलाल को विदेशों के पत्र-व्यवहार और सरदार भगतसिंह को क़ानून का कार्य दिया गया। जब मेरी बारी आई तो महाराजजी ने कृपापूर्वक मेरे सिर पर हाथ रख कर (मैं उनके चरणों के पास ज़मीन पर बैठा हुआ था) कहा, "इसे मेरे पास छोड़ दो। यह यहीं काम करता रहेगा।" उस दिन से सब लोगों ने मुझे हुज़ूर के निजी सेवक के रूप में स्वीकार कर लिया।

38 साल तक इस प्रकार उनकी सेवा का गौरव प्राप्त करने के बाद, हुज़ूर से बिछुड़ना बड़ा ही हृदय-विदारक था। 90 साल तक इस धरती पर कार्य करने के बाद 2 अप्रेल, 1948 को उन्होंने पंचतत्त्व का

वह चोला छोड़ दिया जिसे संसार में, चौरासी के चक्कर में तड़पने वाली आत्माओं को उबारने के लिये धारण किया था और अपने असीम, अपार दया और प्रेम के समुद्र में वापस समा गये।

हालाँकि यह सही है कि सतगुरु कभी नहीं मरते, वे हमेशा हमारे अंग-संग रहते हैं, फिर भी उनके चोला छोड़ जाने से मेरी हालत दर्दनाक हो गई और मेरे दिल के टुकड़े-टुकड़े हो गये। प्रिय पाठको, आप महसूस नहीं कर पायेंगे कि हुज़ूर महाराजजी के चोला छोड़ने से सत्संगियों पर क्या बीती। मैं इस बात को अच्छी तरह से समझ सकता हूँ कि आपमें से कुछ को कभी अपने प्रिय-जनों के बिछोह पर बड़ा गहरा सदमा पहुँचा होगा, किन्तु जो प्यार हुज़ूर ने हमारे हृदय में पैदा किया था उसकी बराबरी किसी दूसरे प्यार से हो ही नहीं सकती। उसकी बराबरी और कोई प्यार कर ही नहीं सकता।

हुज़ूर महाराजजी के चले जाने के बाद मुझे ज़िन्दगी में कोई दिलचस्पी न रही। वे मेरे जीवन में उस समय (सन् 1910) आये थे जब कि मैंने दुनियादारी का कारोबार शुरू ही नहीं किया था (मैंने 1912 में वकालत शुरू की थी)। मैं 1947 में रिटायर हुआ और वे अप्रेल 1948 में चले गये। अब मेरी ज़िन्दगी में रह ही क्या गया था ? वे ही मेरे जीवन, मेरे प्राण थे। दिन-भर मैं उनके बारे में सोचता रहता और रात को उन्हीं की याद में डूबा रहता। उसके बाद कुछ समय तक तो मैं डेरे भी नहीं गया। मैं गर्मियों में शिमला गया, लेकिन मुझे कहीं भी शान्ति नहीं मिल रही थी। पीला चेहरा और सूखे गाल लिये मैं बरसात में वापस नीचे आया। अभी भी उनके प्यार और उनकी दया-मेहर की याद आते ही मेरी आँखों में आँसुओं की धारा बह निकलती थी। एक रात मैं इसी प्रकार रोते-रोते सो गया। हुज़ूर महाराजजी प्रकट हुए और बड़े प्यार से मुझसे पूछने लगे, "अब तुम डेरा क्यों नहीं आते ?"

"अब मैं किसके पास आऊँ ?" मैंने पूछा।

"मेरे पास ! क्या तुम समझते हो कि मैं कहीं चला गया हूँ ?" उन्होंने जवाब दिया।

उनके चोला छोड़ने के बाद यह पहली बार मुझे उनके दर्शन हुए थे। यह दिसम्बर 1948 की बात है।

दूसरे दिन सुबह मैं और मेरी पत्नी डेरा पहुँचे। लेकिन जो आनन्द और प्यार हमें उन दिनों डेरा चलने की तैयारी में आया करता था, वह

अब महसूस नहीं हो रहा था। उस प्यार और आनन्द की जगह अब हमारी आँखों से आँसू बह रहे थे। वे स्थान जहाँ हमारे मालिक, प्यारे सतगुरु घूमते-फिरते थे, आज सूने प्रतीत हो रहे थे। हमने एक सेवादार से सरदार बहादुर जगतसिंह जी महाराज के बारे में पूछा, जिन्हें हुज़ूर महाराजजी अपना उत्तराधिकारी बना गये थे। सेवादार ने बताया कि वे दफ़्तर में कुछ लोगों से मुलाक़ात कर रहे हैं। दफ़्तर में पहुँचने पर हमने देखा कि वहाँ सरदार बहादुर जी महाराज नहीं बैठे हुए हैं, बल्कि हुज़ूर महाराजजी (बाबा सावनसिंह जी) दफ़्तर के बरामदे में आराम-कुर्सी पर बैठे हैं, जैसे कि पहले बैठा करते थे। वे वहाँ अकेले थे, हम अपने आँसुओं को नहीं रोक सके और रोते हुए उनकी तरफ़ दौड़ पड़े। वे खड़े हो गये, मुझे अपनी बाहों में भर लिया और बड़े प्यार के साथ उसी मीठी आवाज़ में मेरे कुशल समाचार पूछने लगे। मैं बुरी तरह रोता रहा। वे भी एक-दो मिनट के लिए मौन रहे। उसके बाद, अपनी कुर्सी के पास पड़े लकड़ी के दीवान की ओर बैठने के लिये इशारा किया, जहाँ मैं उनके समय में बैठा करता था। मेरी पत्नी भी उनके चरणों में झुकी और उसी दीवान के एक किनारे पर बैठ गई।

"जज साहब, आप इतने दिनों तक आये ही नहीं। कहाँ छिपे रहे ?" उन्होंने पूछा। जब जवाब देने के लिये मैंने आँखें ऊपर उठाईं तो देखा कि उनका स्वरूप सरदार बहादुर जी महाराज की शक्ल में बदल गया था। अब भी मेरी आँखों से आँसू बह रहे थे। सरदार बहादुर जी महाराज ने कहा, "जज साहब, आप ख़ुशक़िस्मत हैं। आप आँसू तो बहा सकते हैं। मुझे तो इसकी भी इजाज़त नहीं है।"

सरदार बहादुर जी और मैं पुराने मित्र थे। शुरू-शुरू में डेरे में हम एक ही कमरे में रहा करते थे। वे मुझे बड़े प्यार से रखते थे। उन्हें पता था कि हुज़ूर के चले जाने से मेरे दिल को कितना धक्का लगा था, इसलिये वे मुझे अपने कमरे में ले गये और वहाँ एक घण्टे तक मुझे धीरज दिलाते रहे। आख़िर उन्होंने फ़रमाया, "आप हुज़ूर महाराजजी की बातचीतों और सत्संगों के नोट्स लिया करते थे। उनको ढंग से लिख कर पुस्तक का रूप क्यों नहीं देते ? इससे आपका ध्यान दुःख और शोक की ओर से हटेगा और सत्संगियों तथा परमार्थ के खोजियों की यह एक बहुत बड़ी सेवा भी होगी।"

मैंने जवाब दिया, "हुज़ूर, आप जानते हैं, वे तो पेन्सिल से लिखे साधारण नोट्स थे, कभी तो उन्हें अख़बार के किनारों पर लिख लिया करता था, कभी हाथ में जो भी किताब होती उसके आगे-पीछे के पन्नों पर, और कभी-कभी मैं हुज़ूर महाराजजी की वाणी के कुछ सुन्दर शब्दों या उद्धरणों को चिट्ठियों के पीछे ही लिख लिया करता था। वे कभी छपवाने के इरादे से नहीं लिखे गये थे और न एक ही जगह रखे गये हैं। इसलिये मैं नहीं कह सकता कि उन्हें तलाश कर पाऊँगा या नहीं, और अगर वे मिल भी गये तो उनसे कोई चीज़ तैयार भी कर पाऊँगा या नहीं।"

उन्होंने ज़ोर दिया, "हुज़ूर महाराजजी की हर बात अनमोल है। उन्हें ज़रूर ढूँढ़िये।"

मैंने कुछ पुराने धूल-भरे काग़ज़ ढूँढ़ तो निकाले जिनमें ये छोटे-छोटे नोट्स लिखे थे, लेकिन उनमें से अधिकांश को समझना कठिन था। उनको स्याही में उतारने और तरकीब से जमाने में मुझे कोई दो महीने से अधिक समय लग गया। इसके बाद मैंने उन्हें किताबों की अलमारी में एक तरफ़ रख दिया और वे तब तक वहीं पड़े रहे जब तक कि एक दिन प्रोफ़ेसर जगमोहनलाल के हाथ नहीं पड़ गये।

मुझे यह काम सौंपने का सरदार बहादुर जी महाराज का जो उद्देश्य था वह पूरा हो गया। मेरा शोक काफ़ी हद तक हलका हो गया। वे मुझे बराबर समझाते भी रहते थे कि हुज़ूर महाराजजी के चोला छोड़ने पर मेरा इस प्रकार रंज करना यह ज़ाहिर करता है कि यह मैं अभी तक नहीं समझ सका हूँ कि वास्तव में हुज़ूर महाराजजी क्या थे और 'गुरु' शब्द का असली अर्थ क्या होता है। उन्होंने पूछा, "क्या सतगुरु वह शरीर था जिसके अन्त होने पर आप इतना विलाप कर रहे हैं ? याद रखिये, सतगुरु कभी नहीं मरते। वे हमेशा आपके साथ हैं और आपके अन्दर हैं। ज़रा दरवाज़ा तो खोलो और उन्हें देखो। जितनी उत्सुकता और तमन्ना आपको उन्हें देखने की है उससे कहीं अधिक उत्सुकता से वे आपका रास्ता देख रहे हैं।"

शुरू में इस पुस्तक को अलग-अलग नामों से कई अध्यायों में बाँटने का विचार था, जो हुज़ूर महाराजजी के वार्तालापों में आये अलग-अलग विषयों के अनुसार होते। उनमें से नीचे लिखे कुछ शीर्षक

चुने गये और अलग-अलग जगह हुई बातों के सारे विषय एक जगह लाकर इकट्ठे कर दिये गये :

वार्ता के विषय :

1. सन्तमत के सम्बन्ध में
2. आज-कल के धर्मों से सन्तमत की भिन्नता
3. पूर्ण गुरु की आवश्यकता
4. 'असीम' कैसे 'सीमित' बन सकता है
5. अकथ-कथा
6. योग और वेदान्त
7. षट्चक्र
8. गीता और उपनिषद्
9. चमत्कार
10. अभ्यासियों के लिये उचित आहार
11. तीन गुण
12. मानव-जीवन का उद्‌देश्य
13. सन्तमत की श्रेष्ठता
14. सच्चा ईसाई धर्म, वग़ैरह, वग़ैरह।

दोबारा विचार करने पर मुझे ऐसा लगा कि इस तरह की व्यवस्था से वार्ताओं की कड़ी टूट जायेगी और उनकी ख़ूबसूरती, स्वाभाविकता और क्रम-बद्धता नहीं रह सकेगी। इसलिये, पुस्तक में वार्ताओं को उनके असली रूप में ही रखा गया है जैसी कि मुलाक़ात करने वालों के साथ हुई थीं।

इन वार्ताओं की सही तारीख़ें तो मुझे याद नहीं, लेकिन मेरा ख़याल है, कुछ बाद के नोट्स को छोड़ कर ये 10-12 साल तक अलमारी में पड़े रहे। हुज़ूर महाराजजी के चोला छोड़ने के क़रीब एक साल बाद, मेरे मित्र स्वर्गीय प्रोफ़ेसर जगमोहनलाल ने एक रोज़ मेरी किताबों की अलमारी में छापा मारा और ये नोट्स उनके हाथ में आये। वे उन्हें उठा कर ले गये। ऐसा लगता है कि ये काग़ज़ कोई पाँच साल तक उनके बिस्तर में तकिये के नीचे आराम करते रहे (जो कि उनके ऑफ़िस, पुस्तकालय और ड्राइंग-रूम रूपी कमरे में उनका सबसे प्रिय स्थान

था।) एक बार मेरी वर्षगाँठ (सालगिरह) के दिन, सुबह ही सुबह, वे इन काग़ज़ों को एक रेशमी रूमाल में लपेट कर ले आये।

"मैं तुम्हारी वर्षगाँठ पर एक बहुमूल्य भेंट लाया हूँ," उन्होंने कहा, "तुम इसे 'चाय की केटली में सागर' के समान पाओगे।"

"मैं चाय नहीं पीता, इसलिये मुझे केटली की ज़रूरत नहीं", मैंने जवाब दिया।

उन्होंने कहा, "दरअसल अगर तुम नामंज़ूर कर दोगे तो मैं खुश होऊँगा।"

उन्हें यह वार्ताओं का संग्रह बहुत पसन्द आया और उन्होंने मुझे सलाह ही नहीं दी बल्कि मेरे ऊपर ज़ोर डाला कि मैं इन्हें एक पुस्तक का रूप दूँ। मैंने उन नोट्स को इस पुस्तक की शक्ल दी और हस्तलिखित पुस्तक को फिर एक बार उन्हें पढ़ने के लिये दिया।

एक बार फिर उन काग़ज़ों को उनके मकान के एकान्तवास में एक लम्बी क़ैद भुगतनी पड़ी। लेकिन सन् 1959 में अपनी मृत्यु के दो हफ़्ते पहले उन्होंने ये काग़ज़ मुझे लौटाये और कहा, "तुम्हारी यह धरोहर तुम्हें लौटा रहा हूँ, लेकिन नहीं, अब तो यह मेरी धरोहर है। इसे अपने ही पास न रख लेना।" उसके बाद फिर अपनी बात को दुरुस्त करते हुए बोले "यह न तुम्हारी धरोहर है, न मेरी। यह हुज़ूर महाराजजी की धरोहर है। जिसकी है, उसी को सौंप दो। कहीं भूल न जाना।" और उसके बाद हम फिर कभी न मिल सके।

इस पुस्तक को अब मैं अपने मालिक, मौजूदा सतगुरु के चरणों में अर्पित करता हूँ। वे जैसा चाहें इसका उपयोग करें।

मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर ।
तेरा तुझको सौंपते, क्या लागे है मोर ॥

(कबीर साहिब)

दरियाईलाल

डेरा बाबा जैमलसिंह
1 अक्तूबर 1963

चौदहवें संस्करण की भूमिका

'सन्त-समागम' सन्तमत अथवा सन्तों की शिक्षा की स्पष्ट और रुचिप्रद व्याख्या है। यह शिक्षा सदा एक ही रही है, चाहे यह आज के अनुभवी महात्माओं के मुख से निकली हो, चाहे बीते हुए कल के।

यह पुस्तक महाराज सावनसिंह जी (1858-1948) के साथ लेखक के बहुत लम्बे समय के सम्पर्क का फल है। लेखक को लगभग चालीस वर्ष तक महाराजजी के निकट रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, जिसके दौरान उन्हें सत्संगियों और जिज्ञासुओं के साथ हुई महाराजजी की बैठकों में उपस्थित रहने के कई अवसर मिले।

इन बैठकों में लेखक चिट्ठियों के पिछली ओर, काग़ज़ के छोटे-छोटे टुकड़ों पर और यहाँ तक कि समाचार-पत्रों के पृष्ठों के हाशिये पर भी नोट लिख लेते थे, जो बाद में संवादों के रूप में प्रस्तुत की गई इस रोचक पुस्तक का आधार बने। परन्तु पाठकों से अनुरोध है कि वे इस बात का ध्यान रखें कि कई वर्ष बीत जाने के बाद विस्तृत रूप देकर प्रस्तुत किये गये नोट्स को महाराजजी के वचनों का पूरा और ज्यों का त्यों उद्धरण नहीं कहा जा सकता।

कुछ पुराने सत्संगियों का ध्यान कुछ असंगतियों और त्रुटियों की ओर गया, और उन्हें दृष्टि में रखते हुए लेखक ने पहले 1972 में और उसके बाद 1975 में पुस्तक का संशोधन किया। समय-समय पर अन्य सुझाव आते रहे और उनमें से कुछ को वर्तमान संस्करण में शामिल किया गया है।

'सन्त-समागम' का महाराज सावनसिंह जी के व्यक्तित्त्व और शिक्षा के एक उत्तम विवरण के रूप में हार्दिक स्वागत हुआ है, और यह अब भी हमारे सबसे अधिक लोकप्रिय प्रकाशनों में से एक है।

राधास्वामी सत्संग ब्यास
डेरा बाबा जैमलसिंह 143 204
ज़िला अमृतसर (पंजाब)
1996

सेवासिंह
सेक्रेटरी

तस्वीर जिसका बयान नहीं कर सकती

परम सन्त हुज़ूर महाराज बाबा सावनसिंह जी की तस्वीर, जो इस पुस्तक में दी गई है, उनके साथ इन्साफ़ नहीं करती है। सच तो यह है कि कोई भी तस्वीर, चित्र या फ़ोटो उनके शहंशाही, प्रभावशाली तथा आत्मिक तेज से जगमगाते स्वरूप को दरसा नहीं सकते। वे सन्तों के बादशाह थे। सदैव मधुर मुसकराहट में खिले हुए उनके मुख-मण्डल के मोहक आकर्षण तथा अपार दया, प्रेम और करुणा से परिपूर्ण उनकी अलौकिक छवि को कोई कैमरा चित्रित नहीं कर सकता। उनके रूहानी तेज से चमकते नेत्रों की दिव्य निर्मल छवि को कौन चित्रित कर सकता था ? नहीं, परमात्मा को काग़ज़ पर चित्रित करना सम्भव नहीं।

लम्बे, दुबले, ऊँचे क़द और लम्बी बाहुओं के साथ उनकी शान निराली ही थी। जब वे पास से निकलते तो उन्हें न जानने वाले लोग भी उनके प्रभावशाली स्वरूप को देखने के लिये एकाएक ठहर जाते। उनके दिव्य ललाट, साँचे में ढली-सी अनुपम आकृति, लहराती हुई श्वेत दाढ़ी, गेहुँए रंग जिसमें थोड़ा-सा गुलाबी का पुट, चौड़े सीने और कन्धे का तो कुछ वर्णन किया भी जा सकता है, लेकिन उनके तेजस्वी नेत्रों की तीक्ष्ण दृष्टि तथा उनसे निकलने वाली प्रेम, माधुर्य और करुणा की अविरल धारा का चित्रण कौन कर सकता है। उनके मुख से कभी किसी ने कठोर वचन नहीं सुने। उनकी दया और क्षमाशीलता अपार थी, वे बड़े से बड़े पापी को भी क्षमा कर देते थे। स्त्री, पुरुष, बच्चे, सब यही कहते थे कि हुज़ूर मुझे ही सबसे ज़्यादा प्यार करते हैं। एक बार एक कुशल फ़ोटोग्राफर ने आश्चर्यचकित होकर मुझसे कहा :

"मैंने बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं, महारानियों, राजकुमारों, वाइसरायों, गवर्नरों और राजनीतिक तथा धार्मिक नेताओं के फ़ोटो लिये हैं, लेकिन हुज़ूर महाराजजी के अन्दर कोई ऐसी चीज़ है जिसे मेरा कैमरा कभी पकड़ ही नहीं पाता। मैं कह नहीं सकता, वह क्या चीज़ है। लेकिन वह एक ऐसी वस्तु है जिसे फ़ोटो में उतारने में अमेरिका और यूरोप की मेरी

सारी ट्रेनिंग असमर्थ साबित होती है। मुझे लगता है कि यह कोई शारीरिक या भौतिक वस्तु नहीं है, बल्कि ज़रूर ही कोई दिव्य या रूहानी वस्तु है जिसे मेरा कैमरा पकड़ नहीं पाता है।"

हुज़ूर महाराजजी का संक्षिप्त जीवन परिचय

हुज़ूर महाराज बाबा सावनसिंह जी का जन्म पंजाब के लुधियाना ज़िला के जटाना नामक ग्राम में एक प्रतिष्ठित ग्रेवाल जाट ख़ानदान में 20 जुलाई 1858 को हुआ था। महाराजजी के पिता सरदार काबलसिंह हिन्दुस्तानी फ़ौज में सूबेदार मेजर थे। उन दिनों अंग्रेज़ी राज्य में हिन्दुस्तानी सैनिकों के लिये यह सबसे ऊँचा पद था।

बचपन से ही हुज़ूर में तीक्ष्ण बुद्धि और परमात्मा के प्यार के लक्षण दिखाई देने लगे। वे अपने पिता के साथ गाँव में आने वाले हर साधु-सन्त के दर्शन के लिये जाया करते। उन्होंने 10 साल की उम्र में श्री गुरु ग्रंथ साहिब का एक पाठ पूरा कर लिया था। लड़कपन में वे गुरु नानक के जपुजी और गुरु गोबिन्दसिंह जी के जाप साहिब को ज़बानी सुना सकते थे। अपने दादा से मिली ख़ानदान की परम्परा के अनुसार वे अपने उच्च चरित्र, हृदय की विशालता और प्रभु के प्यार के लिये जल्दी ही प्रसिद्ध हो गये। इन गुणों के अलावा, क़ुदरत ने उन्हें बहुत ही ख़ूबसूरत और तन्दुरुस्त शरीर दिया था। रुड़की इंजीनियरिंग कॉलेज से इंजीनियरी की शिक्षा लेने के बाद वे हिन्दुस्तानी फ़ौज की इंजीनियरिंग सर्विस में भर्ती हो गए, जहाँ उन्होंने क़रीब 28 साल तक नौकरी की। हालाँकि रिटायर होने में अभी समय था, फिर भी आप अंग्रेज़ अफ़सरों के अनुरोध को अस्वीकार करके, समय से पहले ही अप्रेल 1911 में रिटायर हो गये, ताकि संसार-ताप से त्रस्त जीवों को रूहानी सुख और शान्ति के पथ पर लगाने का अपना असली काम सँभाल सकें।

वे छोटी उम्र में ही निपुण गुरुओं की देखरेख में वेदान्त और योग-शास्त्र का अध्ययन कर चुके थे। उनके पास दौलत, इज़्ज़त, सेहत, अच्छी नौकरी और वे सब चीज़ें थीं जिनकी कि मनुष्य कामना कर सकता है। लेकिन फिर भी वे अपने अन्दर एक ऐसी चीज़ की कमी महसूस कर रहे थे जो सच्ची शान्ति और प्रसन्नता प्रदान कर सके। उनकी आत्मा को एक ऐसी वस्तु की खोज थी जो इस जड़ संसार में

नहीं मिलती। वह अपने मालिक की प्राप्ति के लिये तरस रही थी। उनकी यह रूहानी प्यास कहीं बुझ नहीं पा रही थी।

अपनी नौकरी के सिलसिले में हुज़ूर कई वर्षों तक मरी पहाड़ पर रहे। वहाँ उन्हें भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों और धर्मों के साधुओं के दर्शन करने का मौक़ा मिला, क्योंकि मरी कश्मीर में प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान अमरनाथ के रास्ते में पड़ता था और हर साल हर सम्प्रदाय के साधु-महात्मा अपनी यात्रा पर वहाँ से गुज़रते थे। हुज़ूर के घर में हर वक़्त कोई न कोई साधु या संन्यासी बना ही रहता था। अमरनाथ जाने वाले साधुओं में उनका घर बिना पैसे का गेस्ट हाउस या रेस्ट हाउस के रूप में विख्यात था।

एक बौद्ध भिक्षु की मदद से उन्होंने बौद्ध और जैन धर्म-शास्त्रों का अध्ययन किया लेकिन उनकी तृप्ति नहीं हुई। वे तो जीते-जी, साक्षात् परमात्मा को देखना चाहते थे। मौत के बाद मुक्ति मिलने की बात उन्हें जँचती नहीं थी। अगर सिरजनहार परमात्मा पिता है और मनुष्य-मात्र उसकी सन्तान हैं तो क्या कारण है कि वे उसे अपनी ज़िन्दगी में देख न पायें या उससे बात न कर सकें ? एक अमेरिकन पादरी ने, जिसके साथ उन्होंने बाइबिल पढ़ी, उनके सामने मंज़ूर किया कि वह ऐसा कोई रास्ता नहीं जानता जिसके द्वारा परमात्मा को जीते-जी पाया जा सके। और लोगों ने भी उन्हें अपने-अपने सम्प्रदायों और अपने-अपने रीति-रिवाजों की ओर खींचने की कोशिश की। वे तिब्बत के लामाओं से भी मिले, लेकिन उनका मार्ग भी उन्हें पतंजलि के योग-मार्ग से ऊपर ले जानेवाला नहीं मालूम हुआ। और पातंजल-योग का अध्ययन वे कर चुके थे।

उनकी इस खोज के दौरान सन् 1894 की बात है। उनके एक मित्र बाबू काहनसिंह ने उनसे कहा कि एक बहुत बड़े सन्त बाबा जैमलसिंह जी मरी आये हुए हैं। "आप हमेशा से ही एक पहुँचे हुए पूर्ण गुरु की तलाश में रहे हैं; मेरे साथ चलिये, मैं आपको ऐसे सन्त से मिलाता हूँ", उन्होंने हुज़ूर से कहा।

बाबा जैमलसिंह जी के साथ हुई तीन-चार मुलाक़ातों में ही हुज़ूर की सब शंकाएँ दूर हो गईं और उन्हें पूरी तसल्ली हो गई। उन्हें महसूस हुआ कि जो कुछ वे चाहते थे, उन्हें मिल गया। बाबाजी ने उन्हें

सुरत-शब्द-योग के मार्ग की दीक्षा दी जिसका उन्होंने श्री गुरु ग्रन्थ साहिब तथा दूसरे सन्तों की वाणियों में वर्णन पढ़ा था।

उन्हें नामदान देते समय बाबा जैमलसिंह जी ने फ़रमाया कि वे उनके (सावनसिंह जी महाराज के) लिये ही इतनी दूर चल कर मरी आये हैं। उन्होंने कहा, "इनकी एक धरोहर मेरे पास रखी थी और वह आज मैंने इन्हें सौंप दी।"

हुज़ूर महाराजजी उस समय छत्तीस साल के थे और मरी पहाड़ पर मिलिट्री में इंजीनियर थे। लेकिन नौकरी से उनका दिल ऊब गया था और सांसारिक जीवन से भी वे उदासीन हो चुके थे। उन्होंने कई बार बाबाजी से अर्ज़ की कि वे उन्हें डेरा[1] में अपने चरणों में रहने की इजाज़त दें। लेकिन उनकी यह प्रार्थना हर बार यह कह कर नामंज़ूर कर दी जाती थी कि समय आने दो, आप जी-भर कर डेरा में रहोगे।

सन् 1911 में अप्रेल के पहले सप्ताह में हुज़ूर रिटायर हुए और उसके बाद चोला छोड़ने के दिन, 2 अप्रेल 1948 तक डेरा बाबा जैमलसिंह में रहे। इस अवधि में उन्होंने एक लाख छब्बीस हज़ार जीवों को नामदान दिया। जब उन्होंने डेरा में नियमित रूप से सत्संग शुरू किया उस समय पंजाब में सत्संगियों की कुल संख्या लगभग दो हज़ार थी और सालाना भण्डारों पर कोई दो-तीन सौ आदमियों से ज़्यादा इकट्ठा नहीं होते थे। (आज-कल भण्डारों पर तीन लाख से भी ज़्यादा संगत आती है।)

बाबा जैमलसिंह जी ने केवल 2400 व्यक्तियों को नाम दिया था। वे कहा करते थे कि वह महान सन्त, जिसे असली काम करना है, मेरे बाद आयेगा। वे कई बार कहते थे कि वह मुझसे दस गुनी ताक़त, दया और बख़्शिश लेकर आयेगा।

जब महाराजजी ने पंजाब में कार्य शुरू किया, उस समय यह दस गुरुओं की धरती सन्तों की शिक्षाओं को कतई भूल चुकी थी। यहाँ तक कि बड़े से बड़े विद्वान भी गुरु नानक की शिक्षाओं को योग और वेदान्त

---

1. यह वह छोटी-सी बस्ती थी जहाँ बाबा जैमलसिंह जी रहते थे। यही अब 'डेरा बाबा जैमलसिंह' के नाम से प्रसिद्ध है। यह ब्यास नदी के पश्चिमी किनारे पर है तथा उत्तरी रेलवे के ब्यास स्टेशन से साढ़े तीन मील की दूरी पर है। हुज़ूर महाराज बाबा सावनसिंह जी नौकरी से सेवा-मुक्त होकर यहीं रहे। आज यह एक विशाल कालोनी है और इसे 'राधास्वामी कालोनी ब्यास' कहते हैं।

के दर्जे तक उतार लाने में ही बड़ाई समझने लगे थे। पाँच नामों का भेद बिलकुल लुप्त हो गया था। सुरत-शब्द-योग और अनहद शब्द के मार्ग को कोई जानता भी न था। सन्तमत के इस बुनियादी उसूल का — 'बिना देहधारी पूर्ण गुरु के किसी को भी मुक्ति नहीं मिल सकती' — खुले आम खण्डन किया जाने लगा था। मूर्ति, पानी, पेड़ों वग़ैरह की जिस पूजा का सन्तों ने घोर विरोध किया था, उसकी जड़ें बे-पढ़े लिखे लोगों में अच्छी तरह जम गयीं थीं। और जो पढ़े-लिखे थे, वे अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रभाव में नास्तिक होते जा रहे थे।

एक ओर तो नास्तिकता छाई हुई थी, देश में नास्तिकों के कुछ संघ व समितियाँ भी बनाई जा रही थीं। दूसरी ओर धार्मिक विवाद और मज़हबी झगड़े ज़ोरों पर थे। ईश्वर पर विश्वास लगभग उठ चुका थां और लोग धर्म-हीनता की ओर तेज़ी से बहे जा रहे थे।

मालिक की दया के सागर को उमड़ाने के लिए शायद इन सब बातों की आवश्यकता थी। उन दिनों अमृतसर, लाहौर, लुधियाना, होशियारपुर, अम्बाला और देहली में बहुत थोड़े सत्संगी थे। जालन्धर शहर में जहाँ आज बीस हज़ार से ऊपर सत्संगी हैं, उन दिनों केवल सरदार भगतसिंह जी अकेले सत्संगी थे।

दूसरे सन्तों की तरह, हुज़ूर महाराजजी को भी उन दिनों चारों तरफ़ से काफ़ी विरोध का सामना करना पड़ रहा था। हिन्दुओं के हर सम्प्रदाय व धर्म ने उनका जी जान से विरोध किया। राधास्वामी मत के गुरु और शिष्यों के ख़िलाफ़ तरह-तरह की अफ़वाहें उड़ाई गईं और उन्हें बदनाम करने के लिये कोई कसर नहीं छोड़ी गई। उन्हें 'मनुष्य की पूजा करने वाले', 'भूत-प्रेतों में विश्वास करने वाले', 'जूठन खाने वाले', वग़ैरह-वग़ैरह कहा जाने लगा।

और वे क्या उपदेश देते थे? गुरु नानक, कबीर, पलटू, दादू, तुलसी साहिब, रविदास आदि सब सन्तों की तरह उनकी शिक्षा भी बड़ी सरल थी। उनका उपदेश था, "बिना परमात्मा से मिले सच्चा सुख व सच्ची शान्ति नहीं मिल सकती और परमात्मा बाहर कहीं भी नहीं मिल सकता। हमारा शरीर ही वह असली मन्दिर है, जिसमें वह रहता है। किसी ऐसे मनुष्य को ढूँढ़ो जिसने अपने अन्तर में उसके दर्शन किये हों और जो औरों को भी अन्तर में ले जाकर उससे मिला सके।" इसमें ऐसी कौन-सी आपत्तिजनक या अनुचित बात है? यह वही सत्य है

जिसका वर्णन ईसा मसीह, मोहम्मद साहिब, ज़रदुश्त, नानक, कबीर तथा और सब सन्तों ने किया है। लेकिन संसार लकीर का फ़क़ीर है। लोग अपने धर्मों की असलियत को तब तक सुनने या समझने को तैयार नहीं होते जब तक कि उनको उनके ही धर्म के लोग उन्हीं की रूढ़ियों और परिपाटी के अनुसार नहीं समझाते। लेकिन फिर भी हुज़ूर महाराजजी उन्हें अपनी बात सुनाने में कामयाब हुए।

दो-तीन साल के अन्दर ही डेरे का पुराना सत्संग-घर सत्संग सुनने आने वाली संगत के लिये बहुत छोटा हो गया। उसके बाद बड़ा सत्संग-घर (बाबा जैमलसिंह हाल) भी, जिसे लगभग दस हज़ार आदमियों के बैठने के लिये बनाया था, छोटा पड़ गया। उसके तैयार होने के बाद से, वह नामदान के काम में या कभी-कभी सत्संग के काम में लिया जाता है।

एक बार हुज़ूर ने फ़रमाया था कि चाहे कितना ही बड़ा सत्संग-घर बनवा लें, लेकिन भविष्य में सत्संग खुले मैदानों में करना पड़ेगा। तब से डेरा में और बाहर भी जहाँ सतगुरु सत्संग देने जाते हैं, प्रायः सत्संग खुले मैदानों में 50 से 80 शामियानों के नीचे दिये जाते हैं। लेकिन ये शामियाने भी कई जगह छोटे पड़ जाते हैं और लोगों को बाहर धूप में खड़े रहना पड़ता है।

हुज़ूर महाराजजी के सत्संग के लम्बे दौरों के ब्यौरे देने में पुस्तकों पर पुस्तकें लिखी जा सकती हैं। लोग हुज़ूर के अनेक चमत्कारों का वर्णन करते रहते हैं और उनकी दया-मेहर, प्यार, कृपा, करुणा तथा बख़्शिश, उनके दिन-रात काम करते रहने का सामर्थ्य, खोजी प्रेमियों की रूहानी प्यास बुझाने के लिये आधी-आधी रात तक जागते रहना आदि अनेक बातों को याद करते हैं। हुज़ूर दूर-दूर के पहाड़ी इलाक़ों के दौरे करते जहाँ के पहाड़ी लोग बेचारे इतने ग़रीब होते थे कि उनके पास डेरे तक आने का पूरा किराया भी नहीं होता था और डेरे का आधे से अधिक सफ़र ख़ुशी के साथ पैदल तय करते थे। गुरु नानक और कबीर साहिब की तरह (शायद सब सन्तों का यह तरीक़ा होता है) हुज़ूर ने पेशावर से बम्बई तक और कराची से कलकत्ता तक यात्राएँ कीं और अपने आप को भूले हुए, नास्तिकता की ओर बढ़ते हुए और भ्रमों में उलझे हुए लोगों को मोह-निद्रा से जगाने के लिये, उनके अन्तर में परमात्मा के प्यार की बौछार करने के लिये और उनके अन्दर वापस

अपने असली घर लौटने की लगन पैदा करने के लिये जगह-जगह सत्संग प्रदान किये।

उन्होंने पेशावर, रावलपिण्डी, ऐबटाबाद, कालाबाग़, कोहाट, डेरा इस्माइलखाँ, झेलम, गुजराँवाला, वज़ीराबाद, स्यालकोट, जम्मू, लायलपुर, मुलतान, मिंटगुमरी, सरगोधा, ओकाड़ा, शेखुपुरा, अम्बाला, देहली, रोहतक, रोपड़, हिसार, होशियारपुर, काँगड़ा, पालमपुर, शिमला, फिरोज़पुर, और अन्य स्थानों में सत्संग दिये। लाहौर, अमृतसर और जालन्धर तो अक्सर हर महीने सत्संग देने जाते थे। कपूरथला, फगवाड़ा, फ़िल्लौर, सुलतानपुर लोधी, ढिलवां, बटाला, तरनतारन, गुरदासपुर, दसूहा, फ़ाज़िल्का, जगाधरी, मोगा और दूसरे सैकड़ों छोटे क़सबों और गाँवों तक में वे सत्संग प्रदान करते रहे।

पंजाब के लगभग सभी बड़े शहरों में सत्संग-घर बन गये थे। रावलपिण्डी, मुलतान, लाहौर, मिंटगुमरी (जो अब पाकिस्तान में हैं), अमृतसर, जालन्धर वग़ैरह में बड़ी लागत से शानदार सत्संग-घर बने। आज केवल पंजाब के शहरों व छोटे-छोटे गाँवों में ही सत्संग-घर नहीं हैं, बल्कि दूर के पहाड़ी इलाक़ों में भी हैं, जहाँ हुज़ूर ने ख़ास सत्संग-केन्द्र स्थापित किये। परौर (पालमपुर के पास), कालू की बड़ (भरवाई बँगले के पास), भोटा (ऊना के पास), मण्डी (पुरानी मशहूर मण्डी रियासत) में बड़े सुन्दर सत्संग-घर बने हुए हैं। पंजाब के मशहूर ठण्डे पहाड़ डलहौज़ी में भी हुज़ूर ने तीन ख़ूबसूरत बड़े मकान ख़रीदे। इन सत्संग-केन्द्रों पर हुज़ूर हर साल कम से कम एक हफ़्ते के लिये ज़रूर जाते थे। जब हुज़ूर इन जगहों पर जाते तो सत्संगियों की भारी भीड़, अपने सतगुरु की महिमा गाती हुई, जमा हो जाया करती थी। पहाड़ी लोगों के लिये हर साल यह अवसर एक बड़े मेले-सा होता था। यहाँ तक कि ग़ैर-सत्संगी भी अपनी दुश्मनी और विरोध भूल जाते थे और उनमें से कई लोग तो खुले तौर पर स्वीकार करते थे कि ब्यास वाले महाराजजी ने कम से कम इन लोगों की मांस, मदिरा और दुश्चरित्रता की आदत छुड़ा दी है। यह वही भूमि है जहाँ आज से कोई तीन सौ साल पहले 34 रियासतों के राजपूत राजाओं ने गुरु गोबिन्दसिंह के सन्देश को सुनने से इनकार कर दिया था और उनके ख़िलाफ़ दुश्मनों के दल में जा मिले थे।

पंजाब के बाद हुज़ूर महाराजजी ने हिन्दुस्तान के दूसरे प्रान्तों में भी नाम का प्रचार शुरू किया। वे दीवान तेजूमल भवनानी की विनती पर सन् 1930 में सिन्ध के कराची, हैदराबाद, सक्खर और दूसरे शहरों में गये। उन दिनों दीवान साहब एकमात्र सिन्धी सत्संगी थे और कराची में पहले दो दिन उनके बँगले के बग़ीचे में ही सत्संग हुआ। इन दो दिनों में लोगों की संख्या बहुत ही कम थी। दीवान भवनानी ने सुझाव दिया कि पर्चे छपवा कर शहर में बँटवाना चाहिये ताकि लोगों को हुज़ूर के पधारने की ख़बर पहुँच जाये। हुज़ूर इस तरह के प्रचार और प्रोपेगैंडा को कभी पसन्द नहीं करते थे। उन्होंने फ़रमाया, "दीवान साहब, थोड़ा इन्तिज़ार कीजिये। आपका मुफ़्त में ही काफ़ी प्रचार हो जायेगा और पर्चे बाँटने की तकलीफ़ नहीं उठानी पड़ेगी और न कुछ ख़र्च ही होगा।"

तीसरे दिन, किसी व्यक्ति ने कराची की जनता को इस तरह सावधान करते हुए पर्चे बाँटे कि "ब्यास वाले सन्त से होशयार रहें — वह सन्तों की वाणी के ग़लत अर्थ लगाता है और लोगों के दिमाग़ों को ख़राब करता है।" लेकिन इसका नतीजा यह हुआ कि उस दिन शाम को सत्संग सुनने इतनी भीड़ आई कि दूसरे दिन से सत्संग समुद्र के किनारे खुले मैदान में करना पड़ा।

हुज़ूर उत्तरप्रदेश के बुलन्दशहर, खुर्जा, पिसावा, मेरठ, सहारनपुर आदि बड़े-बड़े शहरों में भी गये। राजा साहब साँगली की प्रार्थना पर हुज़ूर महाराष्ट्र में साँगली रियासत भी पधारे। साँगली जाते समय, उन्होंने कुछ सत्संग उस मुम्बई (बम्बई) शहर में भी दिये, जो कि दौलत और भौतिकवाद का गढ़ है। इस दौरे में उन्होंने पूना में जनरल राजवाड़े तथा उनकी पत्नी रानी लक्ष्मीबाई राजवाड़े के बँगले में भी सत्संग दिये। लौटते समय वे अमरावती के मशहूर वकील सर मोरोपन्त जोशी, के.सी.एस.आई. (जो कि एक समय गवर्नर की प्रबन्ध-कारिणी में गृह-विभाग के सदस्य रहे थे) की प्रार्थना पर अमरावती भी रुके। इन सब जगहों में हुज़ूर के सत्संगों को सुनने के लिये इतनी भीड़ जमा होती थी कि हाल और शामियाने खचाखच भर जाते थे और लोगों को बाहर खड़े होना पड़ता था। साँगली में, राजा साहब और रानी साहिबा ने सत्संग के लिये अपना महल ख़ाली कर दिया और वे राजकुमार और राजकुमारियों को लेकर तम्बुओं में रहे। हुज़ूर के उपदेश सर्वत्र बड़े ध्यान और तल्लीनता से सुने जाते थे।

हुज़ूर की इन यात्राओं ने सन्तमत के सन्देश को देश के एक कोने से दूसरे कोने तक फैला दिया और लोग हज़ारों की संख्या में सन्तमत की ओर खिंचे चले आये। हर धर्म, जाति और हर विचारधारा के स्त्री-पुरुष — हिन्दू, मुसलमान, यहूदी, ईसाई, पारसी, जैन, बंगाली, मद्रासी, गुजराती और मराठी — सन्तमत की ओर बरबस आकर्षित होने लगे। हुज़ूर महाराजजी के डेरे में कार्य शुरू करने से पहले ऐसा समय था जब राधास्वामी सत्संगी छिपे तौर पर रहने में ही अक़्लमन्दी समझते थे। लेकिन हुज़ूर ने सत्संगियों के दिलों में इतनी हिम्मत और दिलेरी भर दी कि वे इस सत्य को निडरतापूर्वक स्वीकार करने लगे और आज अपने आप को सन्तमत का अनुयायी कहने में गौरव का अनुभव करते हैं। सत्संगियों के बारे में आज बड़े से बड़ा निन्दक भी यह मानने लगा है कि "ये लोग मांस-मदिरा से दूर रहते हैं, पवित्र और ईमानदारी-पूर्ण जीवन बिताते हैं और इनके हृदय परमात्मा के प्यार और भक्ति से परिपूर्ण हैं।"

एक समय था जब पंजाब में कोई राधास्वामी मत का नाम तक नहीं जानता था। आज हिन्दुस्तान में उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक लाखों व्यक्ति इसके अनुयायी हैं। किसी गाँव या क़सबे में चले जाइये, आपको सत्संगी अवश्य मिलेंगे। मुम्बई (बम्बई) में अब सत्संगियों की संख्या चार हज़ार से ऊपर है। पिछले दिनों वहाँ एक सत्संग-हाल बनाया गया है जो मुम्बई (बम्बई) शहर के बड़े हालों में से एक है। देहली में साप्ताहिक सत्संग अलग-अलग सात स्थानों पर होते हैं, उनमें आने वाले लोगों के लिये एक ही जगह पर इतना स्थान नहीं है और फिर देहली में एक जगह से दूसरी जगह में दूरी भी बहुत है।[1]

हुज़ूर महाराजजी ने सन्तमत की शिक्षाओं का प्रचार केवल हिन्दुस्तान में ही नहीं किया, बल्कि उनकी कृपा से सन्तमत का ज्ञान विदेशों में भी फैल चुका है, जिसके फलस्वरूप आज इंग्लैण्ड, अमेरिका, कनाडा, अफ्रीका, स्विट्ज़रलैण्ड, स्वीडन और दूसरे बहुत-से देशों में सत्संग-केन्द्र चल रहे हैं। हर साल सर्दी के मौसम में संसार के दूसरे देशों से जिज्ञासु डेरा आते हैं और श्रद्धापूर्वक सतगुरु के चरणों में बैठ कर परमार्थ के उपदेश और वार्तालाप सुनते हैं। वास्तव में आज डेरा संसार के प्रमुख आध्यात्मिक केन्द्रों में से एक है।

---

1. देहली में छतरपुर में एक विशाल सत्संग-घर है जहाँ हुज़ूर महाराजजी आज-कल सत्संग करने जाया करते हैं।

हुज़ूर ने स्वामीजी महाराज के सारबचन वार्तिक का पंजाबी भाषा में अनुवाद किया और आपने स्वयं सन्तों के दर्शन पर 'गुरुमत सिद्धान्त' नामक ग्रन्थ की दो बड़े-बड़े भागों में रचना की, जिसका अब हिन्दुस्तान की कई भाषाओं तथा अंग्रेज़ी में अनुवाद हो चुका है।

अमेरिका के सर्जन, डॉक्टर जूलियस जॉनसन एम.ए., एम.डी., बी.डी., कई साल (1932 से 1939 तक) डेरा में रहे और उन्होंने दो किताबें लिखीं — 'विद ए ग्रेट मास्टर इन इंडिया' और 'द पाथ ऑफ़ द मास्टर्ज़' जो अब सत्संग के अंग्रेज़ी भाषी जिज्ञासुओं के लिये ऊँचे-दर्जे का साहित्य बन गया है। कुछ ही वर्षों में इन पुस्तकों के तीन-चार संस्करण निकल चुके हैं, इससे ज़ाहिर होता है कि इन पुस्तकों की कितनी माँग है। हाल ही में, 'द पाथ ऑफ़ द मास्टर्ज़' का एक संस्करण अमेरिका में भी छपा है। एक और सत्संगी कर्नल सी. डब्ल्यू. सेंडर्स (जो हिन्दुस्तान में फ़ौजी एमर्जेन्सी कमीशन के सलेक्शन बोर्ड के अध्यक्ष थे) ने 'द इनर वायेस' (अन्तर की आवाज़) नाम की एक बहुत ही विचारपूर्ण और ज्ञानपूर्ण पुस्तिका लिखी है। इसके भी अंग्रेज़ी और हिन्दुस्तानी भाषाओं मे कई संस्करण निकल चुके हैं और जर्मन, फ्रेंच और स्पेनिश में अनुवाद हो चुके हैं। इससे यूरोप और अमेरिका में सन्तमत को लोकप्रिय बनाने में बड़ी मदद मिली है।

हुज़ूर महाराजजी का निजी जीवन बहुत ही सादगी-पूर्ण था। उन्होंने अपनी ज़िन्दगी में कभी भी किसी आदमी से, चाहे वह सत्संगी हो या ग़ैर-सत्संगी, अपने ख़र्च के लिये एक पैसा भी नहीं लिया। वे हमेशा ज़ोर देते थे कि मनुष्य को अपनी ख़ुद की कमाई पर गुज़ारा करना चाहिये। ज़िला हिसार की तहसील सिरसा के सिकन्दरपुर ग्राम में उनकी अपनी बड़ी ज़मीन (फ़ार्म) थी। उन्होंने अपने जीते-जी सारी ज़मीन जायदाद अपने पुत्रों में बाँट दी।

मेरे मित्र स्व. प्रोफ़ेसर जगमोहनलाल द्वारा लिखे नोट्स को देकर इस संक्षिप्त जीवनी को पूरा किया जाता है :

"ब्यास के छोटे और मामूली रेलवे स्टेशन से लगभग तीन मील दूर, दुनियादारी के व्यर्थ के झगड़े-फ़सादों से परे, एकान्त में, 'ब्यास के संन्त' के नाम से प्रसिद्ध एक परम सन्त रहते थे।

न तो वे संन्यासी थे, न ही कोई तपस्वी। न उन्होंने कभी गेरुए वस्त्र पहने थे और न उनके शिष्य ही कभी ऐसे वस्त्र पहनते हैं, सिवाय

उनके जो पहले से ही संन्यासियों के किसी सम्प्रदाय में रहे हों। वे सादे श्वेत वस्त्र पहनते थे जैसे कि उनके सतगुरु बाबा जैमलसिंह जी पहना करते थे। फिर भी, उनका जीवन एक विलक्षण अनासक्ति से पूर्ण था और गुरु नानक ने जो आदर्श रखा उसके वे जीते-जागते ज्वलन्त दृष्टान्त थे:

जैसे जल महि कमलु निरालमु मुरगाई नैसाणे ॥
सुरति सबदि भवसागरु तरीऐ नानक नामु वखाणे ॥
(आ.ग्र.म.1, पृ. 938)

(जैसे कमल पानी में रहते हुए भी भीगता नहीं और मुर्गाबी पानी में रहती है पर जब उड़ती है तो सूखे परों के साथ, उसी तरह रहते हुए, इस संसार-सागर को, बिना इसमें लिप्त हुए, सुरत-शब्द अभ्यास के द्वारा पार कर ले।)

इस पद के कुछ ही शब्दों में बड़ी ख़ूबी के साथ उनकी आन्तरिक तथा बाहरी रहनी का सार आ गया है।

उनके उपदेश इतने सरल और कठिन विषयों पर भी उनकी व्याख्या इतनी स्पष्ट होती थी कि उन्हें एक साधारण अनपढ़ देहाती भी समझ सकता था। और फिर भी ये उपदेश इतने गहरे अर्थ से भरे होते थे कि कई बार अच्छे-अच्छे विद्वान और दार्शनिक भी उनके भाव और महत्त्व पर चकित रह जाते थे।

उन्होंने कभी कोई नवीन, अनूठी या मौलिक शिक्षा देने का दावा नहीं किया। वैसे इस संसार में कोई नई वस्तु है भी नहीं। नई बोतलों में वही पुरानी रूहानी शराब है जिसे कबीर, नानक, दादू, पलटू, हाफ़िज़, मौलाना रूम और शम्स तब्रेज़ ने अपने-अपने समय में कुछ चुने हुए लोगों को पिलाया था।

हुज़ूर बाबा सावनसिंह जी महाराज का यह कहना था कि सन्त स्वयं ही एक संस्था होते हैं, वे किसी धर्म, जाति या देश की सीमाओं के बन्दी नहीं होते। एक सन्त रूहानी कार्य को जहाँ छोड़ कर जाता है दूसरा सन्त वहीं से उसे सँभाल लेता है। उनका उपदेश, उनका सन्देश मनुष्य-मात्र के लिये समान है। गुरु अर्जनदेव जी फ़रमाते हैं:

खत्री ब्राहमण सूद वैस उपदेसु चहु वरना कउ साझा ॥
(आ.ग्र.म.5, पृ. 747)

(मेरा उपदेश ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, सबके लिये समान है।)

बाबा सावनसिंह जी महाराज के लगभग 1,26,000 शिष्य थे जिनमें सब तरह के लोग थे — ठेठ व्यावसायिक बुद्धि वाले व्यापारी, विद्वान, प्रोफ़ेसर, मिनिस्टर तथा राजा-महाराजा सभी थे। महीने के आख़िरी इतवार को जब मासिक सत्संग होता था तो देश के हर कोने से लोग उनके उपदेशों और उनके द्वारा की गई सन्तों की वाणियों की व्याख्या को सुनने के लिये जमा होते थे। उनकी वाणी आन्तरिक ज्ञान और निजी अनुभव से पूर्ण होती थी। सत्संग में लोगों की संख्या बीस हज़ार से भी ज़्यादा हो जाती थी, लेकिन ख़ामोशी ऐसी रहती थी मानों पत्ता तक न हिल रहा हो।

यद्यपि हज़ारों लोग उनके भक्त थे, प्रेम और आदर के साथ उनकी अर्चना करते थे, फिर भी वे सदैव नम्र और विनयशील थे और कोई भी सत्य का खोजी उनके पास कभी भी आसानी से आ जा सकता था। यहाँ तक कि अपने सेक्रेटरी तथा अन्य लोगों के मना करने पर भी वे अपने आराम करने के और सोने के समय लोगों को अन्दर आने की इजाज़त दे देते थे। हुज़ूर फ़रमाते, 'आख़िर इस शरीर का इससे ज़्यादा अच्छा उपयोग और क्या हो सकता है ?' और कभी-कभी धीमें स्वर में आगे कहते, 'आराम की कमी तो परमात्मा के सेवकों (सन्तों) की विरासत ही होती है। वे यहाँ आराम करने नहीं आते, बल्कि औरों की सेवा करने तथा उनके लिये कष्ट उठाने के लिये आते हैं।' और इस प्रकार सबको चुप करा देते थे।

वे कभी कोई भेंट या उपहार स्वीकार नहीं करते थे। गुरु नानक के समान ही वे भी मानते थे कि :

घालि खाइ किछु हथहु देइ। नानक राहु पछाणहि सेइ।

(आ.ग्र.म.1, पृ.1245)

(जो अपनी रोज़ी आप कमाता है और उसमें से कुछ दान करता है, वही मालिक की प्राप्ति के मार्ग को पहचानता है।)

उनके शिष्यों को भी — जो समाज के हर क्षेत्र से आते थे — सख़्त आदेश हैं कि वे अपनी खुद की कमाई पर ही गुज़ारा करें, औरों की भेंट, दान आदि पर न रहें।

वे मनुष्य और प्रकृति के अद्भुत रहस्यों के पूर्ण धनी थे। हर जाति और वर्ण के उनके हज़ारों शिष्य थे — हिन्दुस्तान में ही नहीं, यूरोप और अमेरिका में भी — फिर भी उनमें ऐसी सच्ची और मधुर नम्रता कूट-कूट कर भरी हुई थी जो और कहीं देखने में भी नहीं आती। उन्होंने अनेक लोगों को अन्तर्ज्ञान और आत्मानुभव की अलग-अलग मंज़िलों तक पहुँचने में मदद की। उन जीवों ने उनके दिव्य नूरी स्वरूप के दर्शन किये और उनसे अचूक रहनुमाई और मदद मिली। उनकी महानता का अनुभव करके लोग उनके चरणों में माथा टेक कर चरण छूना चाहते थे, लेकिन वे इसकी इजाज़त नहीं देते थे। वे हाथ जोड़ कर मुसकराते हुए सबका अभिनन्दन करते और कहते थे, 'मैं तो एक तुच्छ सेवक हूँ; तुच्छ से भी तुच्छ सेवक हूँ, आपकी सेवा करना और मदद, करना मेरा फ़र्ज़ है।'

उनकी शिक्षा का सार

उनकी शिक्षा थी कि मनुष्य खुद एक बहुत पवित्र मन्दिर है और यह मन्दिर ही अध्यात्म के खोजी के लिये पूजा का स्थान है। अगर कोई मनुष्य प्रयोग या खोज करना चाहे तो इस रूहानी खोज और प्रयोग के लिये और 'अपने आप को पहचानने के लिये' भी सबसे बढ़िया प्रयोगशाला अपने अन्दर ही मिलेगी। सब सन्तों-महात्माओं ने 'खुदा की बादशाहत' या परमात्मा के धाम को मनुष्य के अन्दर ही बताया है और मनुष्य इसका अनुभव तभी कर सकेगा जब वह नम्रता और धीरज के साथ शब्द या नाम की कमाई में लगेगा। यह वही 'शब्द' है जिसके लिए कहा गया है कि वह परमात्मा के साथ था और परमात्मा था। यही आज भी परमात्मा है, और आज इस कलियुग में भी वह किसी पूर्ण गुरु की कृपा से पाया जा सकता है। यह 'शब्द' केवल ब्रह्माण्ड का आधार ही नहीं है बल्कि हम सबके अन्तर में निरन्तर गूँज रहा है। इस शब्द की आराधना से पापों के भार से दबी हुई हमारी आत्मा इस बोझ से मुक्त होती है और निर्मल होकर परमात्मा की प्राप्ति के मार्ग पर बढ़ चलती है।

हुज़ूर महाराजजी ने कभी किसी पर ज़बरदस्ती सिद्धान्तों को थोपने की कोशिश नहीं की, न उन्होंने कभी यह कहा कि केवल विश्वास में आकर ही किसी बात को मान लेना चाहिये। इसके विपरीत, उन्होंने ज़ोर दिया कि हम उनके वचनों की सत्यता को खुद परखें। लेकिन साथ ही

कुछ मूल बातों को आरज़ी या अस्थायी तौर पर मान कर चलना ही पड़ेगा जिस तरह ज्योमेट्री में कुछ अनुमानों को लेकर चलना पड़ता है।

उनका दृष्टिकोण व्यापक और विशाल था, उसमें साम्प्रदायिकता की गन्ध तक न थी। वे अपने सत्संगों में निस्संकोच मुसलमान और सूफ़ी सन्तों की वाणियों के उद्धरण दिया करते थे और ख़ासकर कुरान की इस आयत पर बड़ा ज़ोर देते थे कि 'मरने से पहले मर जाओ' (मूतू कबलन्त मूतू)। जब मनुष्य रोज़ मरना सीख ले यानी जब चाहे अपनी तमाम चेतना को मस्तक के एक ख़ास हिस्से में समेट ले (जिसमें उस वक़्त शरीर चेतनाहीन दिखाई देता है) तो मनुष्य मृत्यु पर और मृत्यु के कष्टों पर विजय प्राप्त कर लेता है।

"हुज़ूर महाराजजी कहा करते थे कि मनुष्य-जन्म दुर्लभ रत्न है, जो बार-बार नहीं मिलता। हम मनुष्य चोले में ही मुक्ति का उपाय कर सकते हैं अर्थात् मन और माया के जाल से छुटकारा पाकर अपने उस निजधाम को वापस जा सकते हैं जहाँ से हम आये हैं। इस ध्येय की प्राप्ति के लिये हमें एक कामिल मुर्शिद या पूर्ण गुरु के हुक्म में रह कर अभ्यास करना पड़ेगा। वह गुरु हमें उपाय ही नहीं बतलायेगा बल्कि वह हमें तब तक अन्तर में रास्ता दिखाता रहेगा जब तक कि हम अपनी मंज़िल पर न पहुँच जायें। ऐसा सतगुरु चोला छोड़ जाने के बाद भी अपने शिष्यों की सँभाल करता है, इस बात के प्रमाण हुज़ूर के कई शिष्यों के अपने अनुभव में आये हैं। ऐसे थे बाबा सावनसिंह जी महाराज जो 'ब्यास के सन्त' के नाम से मशहूर थे, जिन्होंने 45 साल तक जीवों की रहनुमाई का अनुपम कार्य किया और भूले-भटके जीवों की, बिना किसी ज़ात-पात के ख़याल के, मदद और सँभाल की। 2 अप्रेल 1948 को उन्होंने 90 वर्ष की उम्र में इस पार्थिव शरीर को त्याग दिया।"

दरियाईलाल

1. वार्तालाप का प्रारम्भ

तारीख़, महीने या साल का तो मुझे ध्यान नहीं, क्योंकि इनकी आवश्यकता नहीं समझी, किन्तु इतना ज़रूर याद है कि एक बार सर्दी की छुट्टियों में लाहौर के डिस्ट्रिक्ट व सेशन्स जज राय बहादुर मुन्नालाल, अपने कुछ दोस्तों के साथ, हमेशा की तरह परम सन्त हुज़ूर महाराज बाबा सा़वनसिंह जी के चरणों में अपनी छुट्टियाँ बिताने आये। उनके साथियों में लाहौर हाईकोर्ट के मशहूर वकील बैरिस्टर राय रोशनलाल थे जो किसी ज़माने में आर्य समाज की पंजाब प्रतिनिधि सभा के सभापति रहे थे, दूसरे लाहौर के मलेरिया-विशेषज्ञ, डॉक्टर बावा हरनामसिंह थे, तीसरे थे एक नौजवान बैरिस्टर श्री ढींगरा (या बिन्दरा), एक मुसलमान डॉक्टर तथा दो सज्जन और थे जिनके नाम मुझे याद नहीं रहे। चाय वग़ैरह के बाद उन्हें हुज़ूर महाराजजी की बैठक में ले जाया गया और हुज़ूर को उनके आने की सूचना दी गई।

कुछ ही मिनटों में हुज़ूर महाराजजी कमरे में आये। उस वक़्त उनकी शोभा और शान किसी शहंशाह से कम नहीं लग रही थी। उन्होंने एक मेहर-भरी मुसकान के साथ हमारा स्वागत किया और हमारे साथ नीचे ज़मीन पर ही बैठ गये। हम सबने उनसे आराम-कुर्सी पर बिराजने की प्रार्थना की किन्तु वे हमारे साथ ज़मीन पर ही बैठे रहे। इस पर बैरिस्टर रोशनलाल अपनी अदालती चतुराई काम में लाये और बोले, "हुज़ूर, अगर आप थोड़े ऊँचे स्थान पर बैठेंगे तो हम लोग आपको अच्छी तरह देख व सुन सकेंगे।" इस पर हुज़ूर हँस पड़े और न चाहते हुए भी आराम-कुर्सी पर बैठ गये। ओह, उनकी मधुर मुस्कान कितनी आकर्षक और लुभावनी थी। उसका वर्णन हो ही नहीं सकता। उनके उठने-बैठने, हँसने, बोलने, हर बात में अपूर्व कशिश व शान्ति झलकती थी।

शुरू में कुछ इधर-उधर की बातों के बाद राय रोशनलाल ने सीधा वह विषय छेड़ दिया जों उनके मन में था। उन्होंने पूछा, "हुज़ूर, आपके मत की क्या शिक्षाएँ हैं ?"

इससे पहले कि हुज़ूर महाराजजी कुछ बोलें, नौजवान बैरिस्टर बिन्दरा बीच में ही पूछ बैठे, "हमने सुना है कि आप परमात्मा में विश्वास नहीं करते और उसकी जगह अपने गुरु की पूजा करते हैं।"

हुज़ूर ने जवाब दिया, "बहुत शुक्रिया ! यह सवाल करके आपने मेरा काम बहुत आसान कर दिया है, क्योंकि एक तरह से आपने हमारे मत के दो मूल सिद्धान्तों की पुष्टि की है। हम परमात्मा में केवल विश्वास ही नहीं करते बल्कि यहाँ तक मानते हैं कि मुक्ति और सच्चा सुख तब तक नहीं मिल सकता जब तक कि मनुष्य की आत्मा उस परमात्मा में लीन नहीं हो जाती जो कि परम आनन्द का समुद्र है, पूर्ण ज्योति, ज्ञान और सुख का स्रोत है। सन्तमत परमात्मा से शुरू होता है और परमात्मा में ही ख़त्म होता है।"

नौजवान बैरिस्टर बीच में ही बोल पड़ा, "यह तो बड़े ताज्जुब की बात है, आपके मत के बारे में चारों ओर कितनी झूठी अफ़वाहें फैली हुई हैं।"

"औरों के साथ तो और भी बुरी बीती", महाराजजी ने फ़रमाया, "संसार ने ईसा मसीह, कबीर, मन्सूर आदि के साथ क्या किया ? सर्दी की ठिठुरती रात में लोगों ने गुरु नानक को कसूर शहर के किसी मकान में घुसने तक नहीं दिया। वह रात उन्हें एक कोढ़ी की फूस की झोंपड़ी में बितानी पड़ी, जिसका कोढ़ उन्होंने सुबह होते ही दूर कर दिया। सुकरात की तरह उन पर भी लोगों के दिमाग़ को दूषित करने का इल्ज़ाम लगाया गया था।"

"सब सुधारकों की तक़दीर में यही रहता है। आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द जी को भी ज़हर दे दिया गया था", राय रोशनलाल ने कहा।

नौजवान बैरिस्टर ने पूछा, "राधास्वामी शब्द का क्या मतलब है ?"

महाराजजी ने उत्तर दिया, "मैं इस विषय को बाद में लूँगा। पहले मुझे सन्तमत के ख़ास-ख़ास सिद्धान्तों को स्पष्ट कर लेने दें। अच्छी बात है, मैं आपका सवाल पहले ही ले लेता हूँ। 'राधास्वामी' परमात्मा का नाम है, जैसे उसके और कई नाम हैं। 'राधा' का मतलब है आत्मा

और 'स्वामी' का अर्थ है कुल मालिक। क़रीब-क़रीब सब ही सन्तों-महात्माओं ने मालिक को स्वामी कह कर पुकारा है। गुरु नानक कहते हैं, 'ऊच अपार बेअंत सुआमी कउणु जाणै गुण तेरे।' कबीर साहिब ने भी उसे स्वामी कहा है। केवल 'राधा' शब्द — जिसका कि अर्थ आत्मा है और जिसका मालिक वह ख़ुद परमात्मा है — के जोड़ देने से यह सब ग़लतफ़हमी पैदा हो गई है।"

बावा हरनामसिंह ने पूछा, "आपके व गुरु नानक के मत में क्या अन्तर है ?"

हुज़ूर ने फ़रमाया, "कुछ भी नहीं। नानक, कबीर, दादू, पलटू, तुलसी साहिब, जगजीवन, शम्स तब्रेज़, मौलाना रूम, ख़्वाजा हाफ़िज़, मन्सूर, बाबा फ़रीद, मुजद्दिद-अल्फ़-सानी तथा दूसरे सन्तों ने, चाहे वे किसी भी देश, क़ौम या मज़हब के क्यों न रहे हों, उसी एक सत्य का उपदेश दिया है। सिद्धान्त तरीक़े और उपदेश हमेशा वही रहते हैं, सिर्फ़ 'कुंजी' कुछ समय के बाद एक घर से दूसरे घर में चली जाती है। यह कहा जाता है कि परमात्मा अपने आप को कई रूपों में इसलिये प्रकट करता है कि अच्छी होते हुए भी पुरानी प्रणाली कहीं संसार को गुमराह न कर दे। अन्तर के द्वार खोलने की 'कुंजी' एक बार कबीर साहिब के घर में थी। उसके बाद वह गुरु नानक के पास आ गई जहाँ वह दस पीढ़ियों तक रही। उसके बाद वह तुलसी साहिब के पास पहुँची और वहाँ से स्वामीजी महाराज (सेठ शिवदयालसिंह जी) के पास आ गई। यह क़ुदरत का क़ानून है, कुछ समय के बाद परिवर्तन ज़रूरी हो जाता है। आप देखेंगे कि इतने बड़े सन्तों के अनुयायी (शिष्य) भी उनकी असली शिक्षा को बिलकुल भूले बैठे हैं, हालाँकि उन सन्तों को इस दुनिया से गये हुए कुछ ही सदियाँ गुज़री हैं। आत्मिक अभ्यास के तरीक़ों का, जो कि उन सन्तों की शिक्षा का सार था, आज उनके अनुयाइयों को ज़रा भी पता नहीं है।

अब सन्तमत की ओर आइये। यह कोई नया मार्ग नहीं है। यह उतना ही पुराना है जितना कि संसार। यह इनसान के साथ ही पैदा हुआ है। हर समय में, हर मुल्क और क़ौम के लिये परमात्मा की प्राप्ति का वही एक मार्ग रहा है। सन्त हर युग में, हर देश में आते रहे हैं। उनके जीवन की रहनी या तरीक़े, अपने देश या समय के अनुसार या अपने मुल्क के रीति-रिवाजों, मौसम या अन्य विशेषताओं के अनुसार

एक-दूसरे से भिन्न हो सकते हैं, पर उनकी शिक्षा हरदम एक ही रहती है, चाहे वह संस्कृत में हो, चाहे फ़ारसी, हिब्रू, चीनी या अरबी में। वे किसी नये धर्म, सम्प्रदाय या समाज की शुरूआत नहीं करते, और न वे किसी धर्म, ग्रन्थ या मत से बँधे हुए होते हैं। वे लोगों को उनकी सीधी-सादी भाषा में उपदेश देते हैं और अपने शिष्यों को आदेश देते हैं कि वे उसी धर्म और समाज में रहें जिसमें पैदा हुए हैं। धर्म-परिवर्तन से, मज़हब बदलने से परमात्मा नहीं मिलता।

सन्तों ने कभी कोई मज़हब नहीं बनाया, उनके अनुयायी ही उनके चोला छोड़ने के बाद अपने आप को छोटे-छोटे टुकड़ों या हिस्सों में बाँट लेते हैं और नये धर्म चला देते हैं। सन्त कभी किसी तरह के रीति-रिवाज या कर्मकाण्ड का आदेश नहीं देते और न वे कोई ख़ास वेश-भूषा या रहन-सहन बतलाते हैं।

आपको संसार त्यागने या बीवी-बच्चों को छोड़ने का उपदेश नहीं दिया जाता। संसार में रहते हुए अपने सब कर्तव्य निभाते हुए परमात्मा की बख़्शी हुई दातों का सुख लो, पर निर्मल बुद्धि व विवेक के साथ। अपने मन को संसार के नाशवान पदार्थों के मोह में इतना न उलझने दो कि उनका विछोह चिन्ता व दुःख का कारण बने। इन चीज़ों की असलियत को समझने की कोशिश करो। ये आपकी सेवा के लिये हैं, इनके दास न बनो। अपने गुज़ारे के लिये धन कमाओ लेकिन उसकी असारता को भी याद रखो। क्या यह धन-दौलत अन्त समय में आपकी मदद करेगी ? क्या यह आपको परमात्मा के कुछ नज़दीक ले जायेगी ?

ईसा मसीह ने कितने स्पष्ट शब्दों में बताया है कि धन-दौलत परमात्मा की प्राप्ति में कितनी बड़ी बाधा है। फ़रमाया है, 'किसी अमीर आदमी द्वारा परमात्मा के देश में प्रवेश पा सकने से सुई के नाके में से एक ऊँट का निकल जाना कहीं आसान है।' यह संसार के पदार्थों का मोह ही है जो हमें बार-बार नीचे खींच लाता है और जन्म-मरण के चक्कर में डाल देता है। संसार में रहो पर संसार के न बनो। अपने सब कार्य करो पर निर्लिप्त (बे-लाग) मन से। 'हाथ काम करने में लगे हों और मन परमात्मा में बसा हो।' मन को निर्लिप्त या उपराम रहने की आदत डालो। यह कोई बहुत मुश्किल काम नहीं है। दिन-भर अपने दुनियावी फ़र्ज़ अदा करो, किन्तु रात में कुछ घण्टे 'अपने काम' के लिये नित्य दो।"

नौजवान बैरिस्टर ने कुछ हँसते हुए और कुछ गम्भीरता से पूछा, "क्या हम जो करते हैं वह सब हमारा काम नहीं है ?"

हुज़ूर महाराजजी ने जवाब दिया, "नहीं ! दिन-रात, चौबीस घण्टे जो कुछ आप करते हैं वह 'आपका अपना काम' नहीं है। ज़रा एक क्षण इस विषय पर विचार करें। आपका सबसे ज़्यादा समय अपने बीवी-बच्चों के लिये धन कमाने में जाता है। कुछ समय अपने रिश्तेदारों व दोस्तों की सेवा में बीत जाता है। आप रोज़ाना कुछ वक़्त अपने शरीर की देखभाल में लगाते हैं, पर एक दिन यह शरीर भी आपको छोड़ देगा। आप यह शरीर नहीं हैं। इस मिट्टी के तन को एक दिन छोड़ना ही पड़ेगा और इसे आग में जला दिया जायेगा या ज़मीन में दफ़ना दिया जायेगा। आपका 'निज-कार्य' तो अपने आप को उबारना, अपनी आत्मा को नरक की यातना से बचाना और उसे वापस मालिक के घर ले जाना है।"

बैरिस्टर ने पूछा, "क्या नरक और स्वर्ग सचमुच होते हैं ?"

महाराजजी ने जवाब दिया, "हाँ, वे उतने ही सच हैं जितना कि आज आपका व मेरा यहाँ मौजूद होना।"

बैरिस्टर रोशनलाल बोले, "मेरे मित्र इन बातों को बाद में पूछ सकते हैं। अभी तो हम सन्तमत के मूल सिद्धान्तों को और परमात्मा की प्राप्ति के लिये बताये गये सन्तों के मार्ग को समझना चाहेंगे।"

हुज़ूर महाराजजी ने फ़रमाया, "सन्तमत बहुत सरल है। यह बतलाता है कि मनुष्य पर जितने कष्ट और मुसीबतें आती हैं वे इसलिए आती हैं कि हम परमात्मा से अलग हो गये हैं। उनका एकमात्र इलाज यही है कि हम वापस उससे जा मिलें। यह संसार हमारा असली घर नहीं है। यह आत्मा तो परम आनन्द और चेतनता के उस समुद्र की एक बूँद है जिससे बिछुड़े हुए इसे करोड़ों साल हो गये हैं। यह तो इस पराये देश में परदेशी की तरह है। यहाँ इसके समान, इसकी ज़ात का, कुछ है ही नहीं। यह परमात्मा के नूर की एक निर्मल चमकती हुई किरण है जो मिट्टी, पानी और कीचड़ में फँस गई है। यों समझिये कि मिठाई व पत्थर एक ही बर्तन में भर दिये गये हैं। यह असमानता ही इसके दुःखों और मुसीबतों का मूल कारण है।

जब तक आत्मा वापस अपने घर पहुँच कर मालिक से नहीं मिल जाती तब तक इसकी दुर्गति और मुसीबतों का अन्त नहीं। सन्त दृढ़तापूर्वक कहते है कि इसके लिए आपको अपने शरीर से बाहर जाने

की ज़रूरत नहीं। मनुष्य-शरीर जीते-जागते परमात्मा का मन्दिर है। नौ दरवाज़े वाले इस मन्दिर में ही परमात्मा रहता है। बाहर न कभी किसी ने उसे पाया है, न कभी कोई पा सकेगा। सब साधु, सन्त और महात्मा जिन्होंने परमार्थ की खोज की है, मानते हैं कि 'खुदा की बादशाहत तेरे अन्दर है, तू उसे वहीं ढूँढ़।' मुक्ति पाने के लिये कहीं बाहर जाने की ज़रूरत नहीं। मनुष्य का शरीर खुद एक सूक्ष्म ब्रह्माण्ड है, जिसका बनाने वाला भी इसी के अन्दर है। किसी ऐसे मनुष्य को ढूँढ़ो जो इस ख़ज़ाने में घुसने का गुप्त मार्ग जानता हो और आपको मालिक के महल तक ले जा सकता हो। उसे आप गुरु, उस्ताद, शिक्षक या दोस्त कहें या चाहे जिस नाम से पुकारें।"

वह नौजवान फिर बीच में बोला, "यह तो आप गुरुडम का उपदेश दे रहे हैं। किसी बुद्धिमान मनुष्य को गुरु धारण करने की क्या ज़रूरत है ?"

महाराजजी मुसकराये और बोले, "बेशक आप एक बुद्धिमान पुरुष हैं, लेकिन क्या सब-कुछ आप अपने आप ही सीख गये ? आप क़ानून पढ़ने यूरोप क्यों गये ? मनुष्य पैदा होते ही अपने आप सब-कुछ नहीं सीख जाता। किसी न किसी को उसे चलना, बोलना, खाना, पहनना और खेलना तक सिखाना पड़ता है। बचपन से लेकर बड़े होने तक वह सिखाने वालों अथवा शिक्षकों को अपनाता रहता है। उस शिक्षक को आप माँ, बाप, भाई, बहन, मित्र या सहपाठी कह सकते हैं, किन्तु स्कूल या कॉलेज जाने से पहले आपने सब-कुछ उससे सीखा है। स्कूल पहुँचने पर आपको गुरुमुखी पढ़ाने वाला एक गुरु मिला तो दूसरा हिन्दी पढ़ाने वाला और इसी प्रकार उर्दू, फ़ारसी, अंग्रेज़ी, गणित, इतिहास, भूगोल आदि पढ़ाने वाले गुरु मिले। कॉलेज पहुँचने पर आपको विज्ञान, फ़िलासाफ़ी, अर्थशास्त्र, क़ानून, इंजीनियरिंग वग़ैरह पढ़ाने वाले शिक्षक मिले। हर विषय के लिये आपको एक अलग शिक्षक चुनना पड़ा। जब आप बड़े हो गये तो आपके दोस्त और आपके उच्च अफ़सर आपके गुरु बन गये। इस तरह और सब बातें सीखने के लिये तो आपको कोई न कोई गुरु अपनाना ही पड़ा, फिर आप सबसे अधिक कठिन विषय — आत्मा व परमात्मा की प्राप्ति के विज्ञान — को बग़ैर गुरु के सीखने की उम्मीद कैसे कर सकते हैं ?"

राय रोशनलाल ने बीच में ही कहा, "हुज़ूर, गुरुडम ने हमारे समाज को बहुत नुक़सान पहुँचाया है। इसका फ़ायदा उठा कर बहुत-से ढोंगी गुरु सीधे-सादे लोगों को ठगते रहते हैं।"

"यह सच है", हुज़ूर ने कहा, "पर इसके अलावा और कोई रास्ता भी नहीं है। परमात्मा का यही विधान है। सभी सन्तों ने पूर्ण गुरु धारण करने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया है। गुरु नानक कहते हैं, 'याद रखो, गुरु के बिना कोई मुक्ति नहीं पा सकता।' कबीर साहिब कहते हैं, 'बिना गुरु के तुम्हारा दान-पुण्य और माला जपना सब फ़ुज़ूल है।' मौलाना रूम कहते हैं, 'सावधान! बग़ैर मुर्शिद के इस राह में क़दम न रखो। रास्ते में बहुत-से डर व ख़तरे हैं जिनसे तुम्हें केवल कामिल मुर्शिद (पूर्ण गुरु) ही बचा सकता है। अगर तुम अक़्लमन्द हो तो अकेले सफ़र न करो, अपने साथ कोई राहबर (मार्गदर्शक) ले लो।"

राय रोशनलाल, पुराने ज़माने के सब कायस्थों की तरह, फ़ारसी के बड़े अच्छे विद्वान थे। उन्होंने हुज़ूर महाराजजी के द्वारा दिये गये मौलाना रूम के उद्धरणों को बहुत पसन्द किया।

हुज़ूर कहते गये, "इस विषय पर मौलाना रूम दूसरी जगह कहते हैं, 'अगर तू ख़ुदा के पास बैठना चाहता है तो किसी ख़ुदा के बन्दे के पास जाकर बैठ। अगर तू काबा की यात्रा पर जा रहा है तो किसी राहनुमा (रास्ता बतलाने वाले) को साथ में ले। किसी ऐसे शख़्स को साथ में ले जो ख़ुद वहाँ गया हो, चाहे वह हिन्दू हो, तुर्क हो या अरब। उसके रूप-रंग की तरफ़ न देख। सिर्फ़ रास्ता बताने की उसकी ताक़त को देख। परमात्मा व परमार्थी बातों का ज्ञान किसी परमात्मा तक पहुँची हुई हस्ती की मदद के बिना प्राप्त नहीं हो सकता। जो अन्दर के ऊँचे आत्मिक मण्डलों में प्रवेश करना चाहता है, जो मालिक की दरगाह में पहुँचना चाहता है, वह ज़रूर किसी राहबर की ज़रूरत महसूस करेगा। पर जो इस अन्दर के सफ़र पर जाना ही नहीं चाहता, वह अपनी इच्छानुसार कुछ भी धारणाएँ बना सकता है।"

राय रोशनलाल ने कहा, "यह सच है, पर धूर्त मनुष्यों के द्वारा अक्सर लोग ठगे जाते हैं।"

महाराजजी ने फ़रमाया, "इसमें कोई शक नहीं। सन्तों ने ख़ुद हमेशा खोजियों या जिज्ञासुओं को ऐसे लोगों से सावधान किया है। रूमी कहते हैं 'शैतान अक्सर कामिल फ़क़ीरों के भेष मे रहता है। इसलिये

अपना हाथ उस राहबर के हाथ में न दो जिसकी आज़माइश (परख) न की हो।' जैसे एक चिड़ीमार पक्षियों को अपने जाल में फँसाने के लिये चिड़ियों जैसी बोलियाँ बोलता है, इसी तरह ठग व धूर्त भी भोले जीवों को फँसाने के लिये सन्तों के तरीक़े अपना लेते हैं, और सन्तों से चुराई हुई वाणी बोलते रहते हैं। इसलिये गुरु को चुनने में बहुत सावधानी बरतनी चाहिये।"

डॉक्टर हरनामसिंह ने कहा, "हुज़ूर, मेरा तो विश्वास है कि मनुष्य को पवित्र जीवन बिताना चाहिये और जहाँ तक हो सके अपने संगी-साथियों का भला करना चाहिये। किसी भी प्राणी को दुःख या नुक़सान नहीं पहुँचाना चाहिये, ईमानदारी से अपनी रोज़ी-रोटी कमाना चाहिये और जितनी बन सके उतनी इनसान की सेवा करनी चाहिये। पूजा और ध्यान का यही सबसे अच्छा और ऊँचा तरीक़ा है। मैं नहीं सोचता कि और किसी भी चीज़ की ज़रूरत है।"

हुज़ूर ने जवाब दिया, "परमार्थ के मार्ग में साधक की चार अवस्थाएँ होती हैं :

1. **कर्मकाण्ड या शरीयत :** अच्छे कार्य करना जैसा कि संसार के सब धार्मिक ग्रन्थों में बताया गया है।

2. **उपासना या तरीक़त :** किसी कामिल गुरु के आदेश और मार्ग-दर्शन के अनुसार परमार्थ के कार्य करना। मन और इन्द्रियों को वश में करना तथा अपने आप को ध्यान वग़ैरह दूसरी आध्यात्मिक क्रियाओं में लगाये रखना।

3. **भक्ति या मारफ़त :** परमात्मा के प्यार में इतने लीन हो जाना कि सिवाय उसके और किसी बात की फ़िक्र ही न रहे, चित्त से संसार और संसार के पदार्थों के सब ख़याल दूर हो जायें, पाँचों विकार ख़त्म हो जायें, मन और इन्द्रियाँ वश में आ जायें और संसार के सुखों तथा इन्द्रियों के भोगों की तृष्णा दूर हो जाये।

4. **ज्ञान या हक़ीक़त :** सत्य या हक़ीक़त को जानना और परमात्मा के साथ एक हो जाना।

पवित्र व नेक जीवन परमात्मा की प्राप्ति के लिये बहुत ज़रूरी है, किन्तु इससे आगे किसी और चीज़ की भी ज़रूरत है। अगर एक आदमी दिन-भर तश्तरियों और प्लेटों को माँजता रहे और उन्हें खाने की मेज़ पर सजाता रहे, लेकिन उनमें खाने के लिये कुछ भी न रखे तो

क्या उसकी भूख मिट जायेगी ? नेक व सेवापूर्ण जीवन बिताना बर्तनों को साफ़ करने के समान है। इससे मन पवित्र होता है और ऊँचे मण्डलों की चढ़ाई के लायक़ हो जाता है। पर मन से गन्दगी को निकाल देना ही ज़िन्दगी का अन्तिम उद्‌देश्य नहीं है।

मन को पवित्र क्यों किया जाता है ? सिर्फ़ इसलिये कि कोई अपवित्र या गन्दी चीज़ मालिक के दरबार में प्रवेश नहीं कर सकती। मन के पवित्र हो जाने के बाद भी इसे ऊपर की यात्रा पर ले जाने के लिये कुछ और क़दम भी उठाने पड़ेंगे। इसके लिये परमात्मा को प्राप्त हुई किसी हस्ती से मार्ग-दर्शन लेना पड़ेगा, नहीं तो यह जन्म-मरण का चक्कर समाप्त नहीं होगा। पवित्र जीवन बिताने और पुण्य कर्म करने का फल यही होगा कि मनुष्य अगले जन्म में राजा, महाराजा, रईस या क़ौमों-मुल्कों का नेता बन जायेगा, या देवता और फ़रिश्ते के रूप में उसे किसी स्वर्ग में प्रवेश मिल जायेगा। परन्तु फिर भी वह चौरासी के चक्कर में ही रहेगा।

नौजवान बैरिस्टर ने पूछा, "क्या देवता और फ़रिश्ते होते हैं" ?

हुज़ूर ने फ़रमाया, "जिन आत्माओं ने मनुष्य शरीर में तप, यज्ञ, दान या अन्य पुण्य कर्म किये या जिन्होंने स्वर्ग की प्राप्ति के लिये विष्णु, शिव या इन्द्र की पूजा की उन्हें अपने पुण्य कर्मों का फल भोगने के लिये तरह-तरह के स्वर्गों में ले जाया जाता है। ये ही देवी-देवता हैं। इन स्वर्गों में भी इस संसार की तरह, नाना प्रकार के इन्द्रिय सुख मिलते हैं। वहाँ उनका शरीर सूक्ष्म होता है और वे अपने-अपने कर्मों के अनुसार वहाँ बहुत दिनों तक रहते हैं। अपने नियत समय तक वहाँ के सुख भोग लेने के बाद उन्हें वापस मृत्यु-लोक में भेज दिया जाता है। सारे स्वर्ग और नरक इस चौरासी के चक्कर में ही हैं।"

राय रोशनलाल ने पूछा, "हुज़ूर, क्या आपके आत्मिक-अभ्यास का तरीक़ा पतंजलि के प्राणायाम के समान ही है ?"

हुज़ूर ने कहा, "नहीं, पतंजलि के अभ्यास का आधार स्वाँस का नियमन (क़ाबू करना) है। यह आज के समय में ठीक नहीं है, क्योंकि प्राचीन समय के जैसा धीरज और लगन-पूर्वक मेहनत करने की शक्ति आज हममें नहीं है। आज कोई ब्रह्मचर्य तथा सदाचारपूर्ण जीवन के नियमों का पालन नहीं करता। लोगों का झुकाव भोग-विलास की ओर अधिक है। आज के दुर्बल नवयुवक प्राणायाम की कठिन साधना और

नेती, धोती, वस्ति आदि मुश्किल योगिक क्रियाओं को कैसे कर सकते हैं ? इसके सिवाय यह योग हमें सहस्रार-चक्र से ऊपर भी नहीं ले जा सकता।

पुराने ज़माने में योगियों को पिण्ड के षट-चक्रों को पार करने में सैकड़ों वर्ष लग जाते थे और इतना भी वे बड़ी मुश्किल से कर पाते थे। अष्ट-दल-कमल उनका सबसे ऊँचा व आख़िरी स्थान था, जब कि सन्तमत की शुरूआत ही यहाँ से होती है। आत्मा को नीचे के चक्रों से ऊपर उठाने के लिये योगीजन प्राणों का सहारा लेते थे, किन्तु चिदाकाश (शरीर के अन्दर पहला आकाश, जो तीसरे तिल में है) में पहुँचते ही प्राण चिदाकाश में लीन हो जाते थे और योगी वहाँ से आगे नहीं बढ़ पाते थे। उन्होंने यह मान लिया कि यह चक्र ही परमात्मा का सबसे ऊँचा धाम है। एक लम्बे अर्से तक वहाँ निवास करने के बाद उनमें से कुछ, पर बहुत थोड़ों ने जो कि कुछ ज़्यादा पहुँचे हुए थे, प्रकाश की तेज़ किरणों को ऊपर से आते हुए देखा। इस प्रकाश के सहारे वे और आगे बढ़े और त्रिकुटी तक पहुँच गये। यहाँ आकर इन योगीश्वरों की गति रुक गयी और वे आगे नहीं गये। उन्होंने इसी कमल (ब्रह्म-मण्डल) को परमेश्वर, ब्रह्म और संसार की रचना, पालन व नाश करने वाले का धाम कहना शुरू कर दिया।

नौजवान बैरिस्टर ने कहा, "मुझे तो यह कुछ भी समझ में नहीं आ रहा है। मैं तो 'योग' लफ़्ज़ का अर्थ तक नहीं जानता।"

हुज़ूर ने फ़रमाया, "मैं आपको यह सब समझा दूँगा। पर गुरु धारण करने के ख़िलाफ़ आपके तर्क का आपका यह कथन ख़ुद ही सबसे बड़ा जवाब है।"

बैरिस्टर ने कहा, "हुज़ूर, मैं अपना कथन वापस लेता हूँ।"

हुज़ूर महाराजजी ने कहा, "यह 'योग' शब्द संस्कृत भाषा के 'युज्' से बना है जिसका अर्थ है मिलाना या जोड़ना। यह 'आत्मा को परमात्मा से जोड़ने या मिलाने' का साधन है।"

राय रोशनलाल बोले, 'रिलीजन' शब्द का भी यही अर्थ है। लेटिन भाषा में 'री' का मतलब 'वापस' है और 'लेगर' का अर्थ है 'जोड़ना'। आत्मा को उसके मालिक से मिला देना ही 'रिलीजन' (धर्म) का उद्देश्य है या होना चाहिये।

"मन और इसकी तरह-तरह की हरकतें ही परमात्मा की प्राप्ति के मार्ग में सबसे बड़ी रुकावट हैं," महाराजजी ने कहा, "योग का ध्येय इन रुकावटों को दूर करना है। पतंजलि ऋषि ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ योगसूत्र में योग की परिभाषा करते हुए कहा है कि योग वह साधन है जिससे चित्त-वृत्तियों को रोका जा सके और मन की सब क्रियाओं को वश में लाया जा सके।"

बैरिस्टर ने पूछा, "हुज़ूर, चित्त-वृत्तियाँ क्या होती हैं ?"

"चित्त-वृत्ति का अंग्रेज़ी में अनुवाद करना बहुत मुश्किल है। चित्त, अन्तःकरण (आन्तरिक दर्पण, मन) का वह भाग है जिस पर चीज़ों की छाप या अक्स (प्रतिबिम्ब) पड़ता है। वृत्तियाँ वे बदलती हुई अवस्थाएँ या जल्दी-जल्दी होने वाली हलचलें या लहरें हैं जो चित्त की सतह को (इन्द्रियों के द्वारा लगातार तरह-तरह के आकार व रूप पेश किये जाने के कारण) विचलित करती हैं। मन की सतह पर निरन्तर उठने वाली इन तूफ़ानी लहरों को रोकना ही योग का काम है। यह मन की सब क्रियाओं को ठहराना और सब सोच-विचार को रोकना है।"

बैरिस्टर ने कहा, "हुज़ूर, आप सब चीज़ कितनी ख़ूबसूरती से समझाते हैं, और कितनी सरल भाषा में।"

"शुक्रिया बेटा", हुज़ूर ने कहा, "मुझे ख़ुशी है कि आपको यह आसान मालूम होती है। योग और असल में सभी आध्यात्मिक तत्त्वों को बातों से समझना या समझाना बड़ा मुश्किल है।"

राय रोशनलाल ने पूछा, "आपके और पतंजलि के मार्ग में क्या अन्तर है ?"

"हम सुरत-शब्द-योग का अभ्यास करते हैं। इस शब्द को उपनिषदों में 'अनहद-शब्द' और वेदों में उद्‌गीत (ऊपर से आने वाला गीत) कहा गया है। मुसलमान फ़क़ीरों ने इसे सुलतान-उल-अज़कार (शब्दों का शहंशाह) कहा है। यह बहुत आसान है और हर देश या धर्म के स्त्री और पुरुष इसका अभ्यास कर सकते हैं। छः साल का बच्चा तक भी इसका अभ्यास कर सकता है। इस अभ्यास में हम अपने बाहरी द्वारों को बन्द कर लेते हैं और मन को उस शब्द के साथ जोड़ते हैं जो माथे में, आँखों के पीछे, मीठी धुनकारें दे रहा है। यह दिव्य-ध्वनि मधुर संगीत के रूप में परमात्मा के धुरधाम से निकलती है और अपने रास्ते में तमाम नीचे के मण्डलों में चेतना और स्फूर्ति भरती हुई मनुष्य के मस्तक

में आँखों के पीछे अपना सदर मुक़ाम बना लेती है। यह परमात्मा और मनुष्य के बीच में सीधी कड़ी है। इस धुन को पकड़ कर हम सीधे अपने असली घर पहुँच सकते हैं। संसार के शुरू में हम इसी स्थान से उतर कर आये थे।

बाइबिल में इस शब्द या धुन को 'वर्ड' कहा गया है। जॉन I में हम पढ़ते हैं, 'शुरू में शब्द था, शब्द परमात्मा के साथ था और शब्द ही परमात्मा था। सब-कुछ उसने ही बनाया, और जो कुछ भी बना वह उसके बिना नहीं बना।' यूरोपियन धर्म-पुरुषों ने इसे 'लोगॉस' कहा है। गुरु नानक इसे शब्द कहते हैं। वे कहते हैं, 'शब्द ने पृथ्वी बनाई और आकाश बनाया। सूरज, चाँद और तारे शब्द ने बनाये। यह हमारे विश्व का बनाने वाला है और सबके हृदय में गूँज रहा है।'[1] कुरान का कथन है कि 'कुन' ने सारी दुनिया को बनाया है। स्वामीजी महाराज कहते हैं, 'शब्द ने तीनों लोक बनाये। शब्द ने अण्ड, ब्रह्माण्ड, सात द्वीपों और नौ खण्डों की रचना की है। शब्द ने ही तीनों गुणों को और सब जीवों को पैदा किया है। शब्द शरीर में धुनकारें दे रहा है। अपनी आत्मा को उसके साथ जोड़ो।[2] सब देशों के सन्तों ने अपने ग्रन्थों में इसका वर्णन किया है। ऋग्वेद का कथन है, 'यावद् ब्रह्म विष्ठितं तावती वाक्' — जितना विस्तृत ब्रह्म है उतनी ही विस्तृत वाणी है, अर्थात् जहाँ-जहाँ परमात्मा है वहाँ-वहाँ शब्द है। शतपथ ब्राह्मण भी यही कहता है, 'वाक् वै ब्रह्म' — वाणी ही ब्रह्म है; दूसरे शब्दों में, शब्द ही परमात्मा है।"

इसी वक़्त महाराजजी का नौकर अन्दर आया और बोला, "हुज़ूर कुछ 'जूलपियन' आये हैं और अन्दर आने की इजाज़त चाहते हैं।"

हुज़ूर महाराजजी उसका मतलब समझ गये और बोले, "मेहरबानी करके अपने यूरोपियन्स को ले आओ और उनके लिये कुछ कुर्सियाँ लगा दो।" नौकर कुछ अमेरिकन मिशनरियों को अन्दर ले आया। ये लोग ब्यास नदी का दृश्य देखने और मछलियाँ पकड़ने आये थे। उनमें से दो क्रिश्चियन कॉलेज, लाहौर के प्रोफ़ेसर थे। हुज़ूर महाराजजी ने खड़े होकर उनका स्वागत किया और उन्हें कुर्सियों पर बैठाते हुए चाय के लिए पूछा। उस दल के नेता ने, जो एक बुज़ुर्ग सज्जन थे, कहा कि वे

---

1. सबदै धरती सबदै आकास। सबदे सबद भइआ परगास।
सगली सृसटि सबद के पाछे। नानक सबद घटै घट आछै। (जन्म साखी, 19)

2. सा. ब., पृ. 88.

सुबह का नाश्ता ब्यास रेलवे स्टेशन पर कर आये हैं और अब तो डेरे के गुरु — जिनके बारे में उन्होंने लोगों से बहुत तारीफ़ सुनी है — की शिक्षा के बारे में कुछ जानना चाहेंगे।

हुज़ूर बोले, "सन्तमत की शिक्षाओं को मैं थोड़े लफ़्ज़ों में बताने की कोशिश करूँगा। हम अभी इसी बारे में चर्चा कर रहे थे। सन्त मानते हैं कि परमात्मा सबका दयालु पिता है, उससे मिले बिना मनुष्य की मुसीबतों व चिन्ताओं का अन्त नहीं हो सकता। वह कहीं बाहर नहीं मिलता। हमारा मनुष्य शरीर ही मन्दिर है जिसमें वह रहता है। वह सिर्फ़ मनुष्य-जन्म में ही मिल सकता है, दूसरी किसी भी योनि में न यह ताक़त है न यह बख़्शिश। हमें एक ऐसे गुरु या राहबर की ज़रूरत है जो इस नौ द्वारों के महल — मनुष्य शरीर — के अन्दर जाने का रास्ता जानता हो और जो हमारा परमात्मा से मिलाप करा सके। बस संक्षेप में ये ही सन्तमत की शिक्षाएँ हैं।"

बुज़ुर्ग मिशनरी ने कहा, "बाइबिल में लिखा है, 'ख़ुदा की बादशाहत तेरे अन्दर है', और 'तू ज़िन्दा ख़ुदा का मन्दिर है'।"

"यह सत्य तो हर धर्म की तह में पाया जाता है," हुज़ूर महाराजजी ने फ़रमाया, "लेकिन धर्म के संस्थापकों के संसार से चले जाने के बाद लोग इस सत्य को भूल जाते हैं और परमात्मा को मूर्तियों, मन्दिरों, पानी व पत्थरों में या उनकी समाधियों और पोथियों में ढूँढ़ने की कोशिश करते हैं।"

मिशनरी ने कहा, "आपके शिष्य कहते हैं कि आप उन्हें अन्दर संगीत सुनना सिखाते हैं।"

हुज़ूर ने उनसे कहा, "सन्त अपने शिष्यों को वह 'वर्ड' या शब्द सुनना सिखाते हैं जिसके बारे में बाइबिल का कथन है कि वह शुरू में था, वह परमात्मा के साथ था और परमात्मा था और उसने सब चीज़ों को, कुल आलम को पैदा किया।"

मिशनरी ने कहा, "वह 'वर्ड' ही ईसा मसीह है।"

"'है' नहीं, पर 'था'। ईसा मसीह देहधारी शब्द (वर्ड मेड फ़्लेश) था। वह अपने समय का मुर्शिद था और जो उसकी शरण में आये उनको वह अपने परमपिता के धाम ले गया। पर क्या वह आज आपको सिखा सकता है कि अपने शरीर के अन्दर जाकर परमात्मा को कैसे पाया जाये ? इसके लिये आपको एक जीता-जागता गुरु चाहिये — एक

जीता-जागता ईसा मसीह — जिसके पास आप जा सकें, जिससे मिल सकें, बात कर सकें, जिसे प्यार कर सकें, और जिसके साथ आप अपनी कठिनाइयों के बारे में बातचीत कर सकें, अपने शक व सन्देहों को हल कर सकें और जिससे नौ दरवाज़ों वाले इस मन्दिर शरीर में — जिसमें आप निवास करते हैं — जाने का मार्ग मालूम कर सकें। क्या आपको मालूम है कि इस शरीर में कौन-से दरवाज़े से प्रवेश किया जाये ? आँखों के ज़रिये, नाक के ज़रिये, कान या गले के रास्ते से या किन्हीं नीचे के द्वारों से ? केवल एक जीता-जागता गुरु ही हमारी सहायता कर सकता है और मालिक के मिलाप के लिये तरसती व तड़पती आत्माओं की मदद और रहनुमाई के लिये इस संसार में 'वर्ड' (शब्द) हमेशा देह रूप में मौजूद है।

यहीं लोग ग़लती कर बैठते हैं। एक गुरु जो हज़ारों साल पहले चोला छोड़ चुका है आज आपको दीक्षा नहीं दे सकता और न आपकी मदद ही कर सकता है। लेकिन लोग इतने लकीर के फ़क़ीर हैं कि वे सत्य को सुनने को तब तक तैयार ही नहीं होते जब तक कि वह उनको अपने सीखे हुए ढंग से या उनके विश्वास के ग्रन्थों से न समझाया जाये। आत्माओं को वापस अपने पास लाने के लिये परमात्मा ने अपने पुत्र को सिर्फ़ दो हज़ार वर्ष पहले ही नहीं भेजा था, बल्कि इस काम के लिये वह अपने पुत्रों को हर समय भेजता रहता है। तुलसी साहिब ने कहा है, 'सन्त न होते जगत में जल मरता संसार।'

अन्दर के मार्ग में इतनी उलझनें और ख़तरे हैं कि आपको हर क़दम पर गुरु की सलाह व मदद की ज़रूरत पड़ती है। महान सन्त रूमी कहते हैं, 'जो बिना राहबर (मुर्शिद) के अन्दर जाता है उसे शैतान की फ़ौज गुमराह करके गहरे अँधेरे कुएँ में डाल देती है। जब काल या शैतान जीवित गुरु के शिष्यों को भी उनके गुरु का रूप बना कर ठगने और गुमराह करने की कोशिश करता है, तो फिर उन बेचारों का क्या हाल होगा जिन्होंने ऐसे गुरु को धारण किया है, जिसे उन्होंने कभी देखा ही नहीं और जो हज़ारों साल पहले मर चुका है। क्या आप अपनी बीमारी का इलाज ऐसे डॉक्टर से करा सकते हैं जिसको गुज़रे बहुत समय हो गया हो ? क्या उसकी लिखी किताबें आपकी जाँच कर सकती हैं ? आपको तो उसकी ख़ुद की राय और हर वक़्त निजी देखभाल चाहिये। कभी आपको उसे आधी रात को बुलाना पड़ता है क्योंकि सुबह

तक न मालूम आपका क्या हाल हो। क्या एक कन्या उस गुज़रे हुए आदमी से शादी कर सकती है, जिसकी तस्वीर उसने कभी किसी पुरानी पुस्तक में देखी है? क्या एक वकील जो कि मर चुका है आपको क़ानूनी सलाह देने के लिये आ सकता है ? दो हज़ार साल पहले दयालु पिता ने अपने पुत्र को जीवों के उद्धार के लिये भेजना ठीक समझा था, क्या वह उसे आज फिर नहीं भेज सकता ? क्या उसका प्यार और उसकी दया अब न रही या दुनिया की हालत बदल गई है? राम, जो हज़ारों साल पहले इस दुनिया में आये थे, क्या वे आगे आने वाले हर समय के लिये, सदा के लिये काफ़ी हैं ? नहीं, मेरे दोस्तो, नहीं। परमात्मा के प्यार का समुद्र सूख नहीं गया है। वह हमेशा लहराता व उमड़ता रहता है। उसके प्यारे पुत्र (सन्त) हमेशा इस संसार में मौजूद रहते हैं, संसार उनसे कभी ख़ाली नहीं होगा। यही परमात्मा का विधान है।"

मिशनरी पार्टी के एक नौजवान सदस्य, जो मुझे बाद में पता लगा कि मिशन कॉलेज के प्रोफ़ेसर थे, बोले, "यह सब बिलकुल वाजिब और ठीक मालूम देता है। क्या आपका मार्ग अष्टांग योग जैसा ही है ?"

हुज़ूर ने फ़रमाया, "नहीं, हमारा मार्ग उससे बहुत आसान है और अभ्यासी को उससे कहीं ऊँचे मण्डलों में ले जाता है। हम प्राणायाम का अभ्यास नहीं करते।"

नौजवान बैरिस्टर ने पूछा, "यह अष्टांग योग क्या चीज़ है, हुज़ूर ?"

"पतंजलि की योग-विधि को ही अष्टांग योग कहते हैं। 'अष्ट' का मतलब है आठ और अंग का अर्थ है भाग या हिस्से।" हुज़ूर महाराजजी ने जवाब दिया।

बैरिस्टर ने अर्ज़ की कि क्या हुज़ूर इसे खोल कर समझायेंगे?

हुज़ूर ने फ़रमाया, "आठ अंग ये हैं :

1. **यम :** वे बुरी आदतें जिन्हें छोड़ देना चाहिये।

2. **नियम :** वे अच्छी आदतें जिन्हें अपनाना चाहिये।

3. **आसन :** बैठने के ख़ास तरीक़े या ढंग ।

4. **प्राणायाम :** साँस की साधना।

5. **प्रत्याहार :** अन्तर्मुखी हो जाना यानि चित्त-वृत्तियों को दुनिया से मोड़ कर अन्दर समेट लेना।

6. **धारणा :** चित्त को एकाग्र करना।

7. ध्यान : लगातार एक चीज़ का ध्यान या चिन्तन करना (एकाग्रता में सफलता)।

8. समाधि : आध्यात्मिक चेतना या आत्मिक तन्मयता, शरीर का शून्य हो जाना, इस दुनिया को भूल जाना, परम आनन्द की वह अवस्था जिसमें सांसारिक ज्ञान या बाहरी चेतना नहीं रहती।

पहले पाँच बाहरी और आख़िरी तीन आन्तरिक अभ्यास हैं। क्या आप चाहते हैं कि मैं इनका और खुलासा करूँ या इतना ही काफ़ी है?"

नौजवान पादरी ने कहा, "मैं आज-कल योग-शास्त्र का अध्ययन कर रहा हूँ। कृपा करके इस विषय पर कुछ और प्रकाश डालें।"

हुज़ूर ने कहा, "यह पाँच हैं। यम लफ़्ज़ का मतलब है, बन्द करना, क़ाबू करना या अधीन कर लेना। साधना में इन्हें निषिद्ध कर्म (न करने योग्य कर्म) कहा गया है। इनका सब कोई पालन करके लाभ उठा सकते हैं। ये सब धर्मों में समान रूप से मिलते हैं। ये इस प्रकार हैं :

1. अहिंसा : किसी भी जीव को विचार, वाणी या कर्म से भी दुःख न पहुँचाना।

2. सत्य : कभी झूठ न बोलना।

3. अस्तेय : कभी किसी की चीज़ को लेना या चुराना नहीं।

4. ब्रह्मचर्य : किसी को वासनामय दृष्टि से नहीं देखना; मन, वचन, काया से पवित्र रहना।

5. अपरिग्रह : ज़रूरत से ज़्यादा चीज़ों का संग्रह व कामना न करना। त्याग; मन, वचन कर्म से लालच को छोड़ना।

इन अच्छे और पवित्र नियमों का सबको पालन करना चाहिये। ये परमार्थ की सीढ़ी की पहली पौड़ियाँ हैं, जिनके बिना परमात्मा की प्राप्ति सम्भव नहीं।

"परमार्थ में तरक़्क़ी के लिये ऊँचा नैतिक जीवन बहुत ज़रूरी है। मैं नहीं समझता कि ऊपर बताये गये संयमों की ताईद में कुछ कहने की ज़रूरत है। सभी धर्म इन्हें अपनाने के पक्ष में हैं। जो जीव-हिंसा करता है या किसी के शरीर, मन या भावनाओं को चोट पहुँचाता है, वह सख़्त-दिल, निर्दयी, अन्यायी और अत्याचारी बन जाता है, उसमें हैवानियत और जंगली आदतें आने लगती हैं। शिकार करने वाले जानवर जंगली और ख़ूँख़्वार होते हुए भी प्रायः स्वभाव से डरपोक होते हैं।

दूसरी तरफ़, घास-फूस खाने वाले जानवर — साँड़, हाथी वग़ैरह हिम्मत वाले, निडर व निश्चिन्त होते हैं। ज़बानी हिंसा (निन्दा, चुगली, ईर्ष्या, दूसरों की बुराई) और मानसिक हिंसा (जलन, दुश्मनी, किसी का बुरा सोचना) भी उतनी ही ख़राब हैं जितनी कि कर्म से हिंसा।

इसी तरह, जो झूठ बोलता है वह अपने हृदय को काला करता है। वह योग-साधना के लायक़ नहीं। उसे कायरता, झिझक और अपने कर्तव्य से भागने की आदत पड़ जाती है और वह सही प्रकार से सोच भी नहीं सकता।

जो आदमी दूसरे की चीज़ों को चुराता है वह उनके बुरे कर्मों का बोझ तो अपने सिर पर ले ही लेता है, बल्कि उसके मलिन विचार, बुरी आदतें और उन बुरी बीमारियों को भी अपने ऊपर ले लेता है जो उसकी काम में ली गई चीज़ों के साथ आती हैं। एक चोरी छिपाने के लिये चोर को दूसरे कई पाप और अपराध करने पड़ते हैं। छल, कपट व ठगी उसके स्वभाव में आ जाती है।

"काम और विषय-वासना परमार्थ की जड़ें ही काट देती हैं। कबीर साहिब कहते हैं, जैसे 'प्रकाश और अन्धकार एक साथ एक जगह नहीं रह सकते, उसी तरह काम और परमात्मा का प्यार दोनों एक हृदय में नहीं रह सकते। ज्यों ही काम हृदय में आता है, परमात्मा का नाम वहाँ से हट जाता है।[1]' काम-वासना परमार्थ के मार्ग में सबसे बड़ी रुकावट है।"

किसी तरह के संग्रह की इच्छा न रखना अपरिग्रह है। योगी को भिक्षा पर गुज़ारा नहीं करना चाहिये और न समाज के ऊपर बोझ बनना चाहिये। सन्तों ने अपनी कमाई पर गुज़र-बसर करने पर बहुत ज़ोर दिया है।

अब नियमों की ओर आयें। इन्हें विहित कर्म या करने योग्य कर्म कहते हैं; वे आदर्श जिन पर आचरण करना चाहिये। ये भी पाँच हैं :

1. शौच या स्वच्छता : आपका शरीर साफ़ रहना चाहिये। आपके रहने का स्थान, आपके पहनने के कपड़े, आपके खाने का भोजन शुद्ध और साफ़ होना चाहिये और आपके विचार पवित्र होने चाहियें।

---

1. जहाँ काम तहँ नाम नहिं, जहाँ नाम नहिं काम ॥
दोनों कबहूँ ना मिलैं, रबि रजनी इक ठाम ॥ (कबीर साखी-संग्रह, पृ. 130)

2. सन्तोष या सब्र : अपने हिस्से में जो आये या जो भाग्य में बदा है उस पर खुश रहना। इसका मतलब यह नहीं है कि कोई अपनी तरक़्क़ी के लिये कोशिश न करे, बल्कि असन्तोष और बेसब्री की भावना को दूर करना है। वास्तव में हमारी ज़रूरतें ही कितनी-सी हैं, पर फिर भी धनी से धनी मनुष्य भी और अधिक वस्तुओं की कामना करता है।

3. तप या कठोर आत्म-संयम : इन्द्रियों का दमन करना, सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास, धूप-छाँव, दुःख-सुख, प्यार व घृणा, अमीरी-ग़रीबी, तन्दुरुस्ती-बीमारी, हानि-लाभ आदि को शान्ति और सम-भाव के साथ सहना। ये साधक को बड़ा आत्म-बल प्रदान करती हैं, जिसके सहारे वह दुःख और मुसीबतों में भी अपना सन्तुलन बनाये रख सकता है।

4. स्वाध्याय या धार्मिक और आध्यात्मिक ग्रन्थों का अध्ययन : इसमें साधु-सन्तों का सत्संग सुनना भी आ जाता है।

5. ईश्वर प्रणिधान : परमात्मा में अटूट विश्वास रखना और अपने आप को उसकी मौज पर छोड़ देना। परमात्मा के एजेण्ट (कारिन्दा) की तरह काम करते रहना और अपने कर्मों के फल की चिन्ता न करना।

हुज़ूर महाराजजी कहते चले गये, "भक्ति व प्रेम के मार्ग के अनमोल लाभों की ओर न जाकर अगर मनुष्य सिर्फ़ इन यम-नियमों का ही ईमानदारी से अभ्यास करता चला जाये तो वह सिद्ध पुरुष हो जाता है और उसमें अलौकिक शक्तियाँ आ जाती हैं। जैसे, अगर एक आदमी हर क़ीमत पर सच बोलता रहे और सत्य की भावना उसके रोम-रोम में इतनी समा जाये कि स्वप्न में भी उसके मुख से असत्य न निकले, तो उसे 'वाक-सिद्धि' प्राप्त हो जाती है अर्थात् जो कुछ वह कहता है वह पूरा होकर ही रहता है।"

"यह तो बहुत अच्छा है।" नौजवान बैरिस्टर ने कहा, "मैं भी इसकी कोशिश करूँगा। हुज़ूर, मुझे यह सिद्धि कितने समय में मिल सकती है ?"

महाराजजी ने जवाब दिया, "सत्य ही आपकी ज़िन्दगी, आत्मा और सब-कुछ बन जाना चाहिये। यह सिद्धि आपको तभी मिल सकेगी, जब कि आपके शरीर के अंग-अंग और रोम-रोम में सत्य रम जाये।"

नौजवान बैरिस्टर ने कहा, "यह तो बड़ा मुश्किल है। एक वकील इसमें कैसे कामयाब हो सकता है? बेहतर है कि मैं किसी और बात की कोशिश करूँ। अहिंसा के अभ्यास से मुझे क्या मिलेगा?"

हुज़ूर नें फ़रमाया, "ठीक है, तब आपको शेर-चीते भी नुक़सान नहीं पहुँचायेंगे और साँप-बिच्छू भी दोस्तों की तरह व्यवहार करेंगे।"

बैरिस्टर बोला — "यह तो बड़ी अच्छी बात है पर......."

हुज़ूर ने कहा, "इस साधना में एक ख़ूबी और है। यदि आप इनमें से एक भी यम को सिद्ध कर लेते हैं तो दूसरे गुण अपने आप आ जाते हैं।"

नौजवान मिशनरी प्रोफ़ेसर ने महाराजजी की बातों के नोट लेना शुरू कर दिये थे, उसने हुज़ूर से आसनों के बारे में कुछ फ़रमाने के लिये कहा।

महाराजजी ने फ़रमाया, "आसन शब्द का मतलब है 'बैठक' या बैठने का तरीक़ा। एक ही आसन में काफ़ी देर तक बैठे रहना आत्मिक अभ्यास में बड़ी मदद देता है। आसनों के बारे में कई पुस्तकें हैं, कुछ चौरासी आसनों का वर्णन करती हैं तो कुछ सौ का, किन्तु आसनों का ख़याल आपके मन पर छा नहीं जाना चाहिये। बैठने का तरीक़ा ही मुख्य वस्तु नहीं है। ज़रूरी तो मन की एकाग्रता है। आसन का महत्त्व तो वहीं तक है जहाँ तक वह एकाग्रता में मदद करता है। अभ्यासी को किसी भी ऐसी सरल और आरामदेह बैठक में बैठना चाहिये जिसमें उसे बार-बार हिलने-डुलने की ज़रूरत महसूस न हो। बार-बार हिलने-डुलने और बैठक बदलते रहने से एकाग्रता की प्राप्ति नहीं हो सकती। दृढ़ आसन या स्थिर व अडोल बैठक से तुरन्त एकाग्रता प्राप्त होती है। ध्यान के आसन में सिर, गर्दन और रीढ़ की हड्डी बिलकुल सीधी रहनी चाहिये। तनाव से रहित, सहज भाव से बैठना चाहिये, शान्त और एकान्त स्थान में बैठना चाहिये ताकि अभ्यास बग़ैर विघ्न-बाधा के हो सके।"

नौजवान मिशनरी ने पूछा, "क्या आपने कभी इस योग का अभ्यास किया है?"

हुज़ूर ने जवाब दिया, "हाँ, अपने सन्त-सतगुरु के मिलने से पहले कुछ समय तक किया था। लेकिन मेरे एक मित्र के काफ़ी ज़ोर देने पर

मैंने छोड़ दिया। वे अभ्यास में काफ़ी तरक़्क़ी कर चुके थे, लेकिन इसके कारण बीमार रहने लगे थे।"

मिशनरी ने अर्ज़ की, "हुज़ूर, यदि आपको अनुचित न लगे तो क्या आप कृपा करके कुछ आसन करके बता सकेंगे?"

हुज़ूर ने पूछा, "आपको किस आसन में रुचि है?"

"किसी ख़ास में नहीं", मिशनरी ने जवाब दिया।

हुज़ूर ने फ़रमाया, "योगी अक्सर पद्मासन या सिद्धासन में बैठते हैं। 'पद्म' का मतलब है कमल। इस आसन में अभ्यासी ज़मीन पर बैठ कर दायीं एड़ी को बायीं जाँघ पर और बायीं एड़ी को दायीं जाँघ पर रखता है। उसके बाद दाहिने पैर का अँगूठा पीठ के पीछे से दाहिने हाथ में थाम लिया जाता है और बायें पैर का अँगूठा बायें हाथ से। शुरू-शुरू में यह आसन कुछ मुश्किल है, पर थोड़े अभ्यास के बाद काफ़ी आसान हो जाता है। सारे आसन साफ़ व ख़ाली पेट करने चाहियें। सिद्धासन इससे कुछ आसान है। उसमें अभ्यासी उसी तरह (ज़मीन पर) बैठता है किन्तु बायीं एड़ी नीचे की दो इन्द्रियों के बीच में रखता है तथा दायां पैर बायीं एड़ी पर रखता है और दोनों हाथों को घुटनों पर रखता है।

योग हमेशा किसी ऐसे योगी की देख-रेख में करना चाहिये जो कि अपनी विद्या का पूर्ण जानकार हो और जो योग की क़रीब-क़रीब सभी विधियों को सिखाने में समर्थ हो। योगियों में यह एक पुरानी कहावत चली आ रही है कि जो केवल किताबें पढ़ कर योग-साधना शुरू करता है वह बीमारियों को न्योता देता है और अपनी उम्र घटा लेता है।

हुज़ूर महाराजजी ने आगे फ़रमाया, "प्राणायाम एक दोधारी तलवार है जो एक तरफ़ तो बेहद लाभ पहुँचा सकती है और दूसरी तरफ़ ऐसा नुक़सान जिसकी कोई पूर्ति न हो सके। इससे लाभ होते हुए मैंने कुछ बिरले लोगों को ही देखा है, और नुक़सान बहुत लोगों को हुआ है। एक गृहस्थी को इसमें नहीं उलझना चाहिये। अगर मनुष्य ब्रह्मचारी नहीं है तो उसे यह अभ्यास नहीं करना चाहिये। उससे फेफड़ों की बीमारियाँ हो सकती हैं।"

नौजवान मिशनरी ने कहा, "लोग कहते हैं कि योगी की आयु बहुत लम्बी होती है।"

हुज़ूर ने उत्तर दिया, "इतना ही नहीं, बल्कि उसे और बहुत-सी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं और वह कई चमत्कार कर सकता है। वह जहाँ चाहे वहाँ फ़ौरन जा सकता है, जो भी चाहे वह कहीं से भी मँगवा सकता है, वह बहुत भारी या बहुत हलका, बहुत लम्बा या बहुत छोटा बन सकता है। ऐसी अठारह सिद्धियाँ हैं, पर हमारा मक़्सद उन्हें प्राप्त करना नहीं है और उन्हें प्राप्त करने का मार्ग भी बहुत लम्बा और कठिन है।"

मिशनरी बोला, "किन्तु आप तो इन्हें अवश्य सिद्ध कर सकते थे। आपने इनको छोड़ कर यह नया मार्ग क्यों अपनाया?"

हुज़ूर महाराजजी ने फ़रमाया, "क्योंकि जहाँ तक परमात्मा की प्राप्ति का सवाल है योग हमें बहुत दूर नहीं ले जा सकता। इस योग की सबसे ऊँची और आख़िरी मंज़िल चेतन-मण्डल में सहस्रार है जो कि सन्तमत की सबसे पहली मंज़िल है।"

मिशनरी ने पूछा, "हमें यह कैसे विश्वास हो कि उनकी आख़िरी मंज़िल आपकी पहली मंज़िल है?"

हुज़ूर महाराजजी ने कहा, "सारे योग-शास्त्र इस बात की ताईद (पुष्टि) करते हैं। योगी सबसे नीचे के चक्र, मूल चक्र (गुदा-चक्र) पर ही ध्यान धरते रहे और इसे सिद्ध करने में ही अपनी ज़िन्दगी बिताते रहे। इस चक्र के ऊपर पाँच चक्र और हैं। अगर ये उन सब पर पहुँच भी जायें तो उन्हें हक़ीक़त की कुछ झलक या छाया ही दिखाई देगी, असली चीज़ नहीं। यहाँ उन्हें शरीर की देखभाल करने वाले कुछ देवता ही मिलेंगे।

"इनके ऊपर अण्ड के छः चक्र हैं (पिण्ड के निचले छः चक्र इनके ही अक्स या प्रतिबिम्ब हैं) और अण्ड के ऊपर ब्रह्माण्ड के छः चक्र हैं। इनमें सबसे ऊँचा धाम सतलोक है, जो अमर, अविनाशी, स्थायी और प्रलय-महाप्रलय से परे परमात्मा का निवास-स्थान है। सृष्टि के शुरू में आत्मा यहीं से उतर कर नीचे आई थी और अब वापस वहीं जाना चाहती है। क्योंकि आत्मा की बैठक छठे चक्र में है, यह इसी स्थान से अपने घर की ओर चढ़ाई शुरू कर सकती है। यह क्यों अपनी बैठक से उतर कर सबसे नीचे के चक्र में आये और क्यों नीचे के चक्रों को तय करने की लम्बी और थकाने वाली यात्रा शुरू करे?

चढ़ाई शुरू करने का स्थान जितना नीचा होगा, सफ़र उतना ही लम्बा और मुश्किल होगा। छठे चक्र से कुछ ऊपर सहस्रार में पहुँच कर

योग-मार्ग का अभ्यासी थक गया और उसने इसी स्थान को परमात्मा का सबसे ऊँचा धाम समझ लिया। योगी इससे आगे जाने में असमर्थ थे। सन्त यहीं से अपनी शुरूआत करते हैं। उनका साधन बहुत सहज व सरल है और अभ्यासी को सबसे ऊँचे मण्डल में ले जाता है। वह मण्डल प्रलय की पहुँच से परे है। वहाँ पहुँचना ही हमारा ध्येय होना चाहिये। पिण्ड के छः, अण्ड के छः और ब्रह्माण्ड के पाँचों चक्र नाशवान हैं। कुछ प्रलय में नष्ट हो जाते हैं तो कुछ महाप्रलय में। केवल सतलोक ही अविनाशी है, प्रलय-महाप्रलय से परे है।"

इतने में ही बीबी रली आयीं और बोलीं कि कभी का एक बज चुका है और दोपहर के खाने में काफ़ी देर हो रही है। हुज़ूर ने अपनी जेब-घड़ी निकाली और कहा, "ओह ! वक़्त एक से ऊपर हो गया है। आप लोगों को इतनी देर तक रोके रखने का मुझे अफ़सोस है।" मुझसे फ़रमाया, "इन्हें नई कोठी (जिसे आज-कल गेस्ट हाऊस कहते हैं) में ले जाइये और इनके खाने का इन्तिज़ाम कीजिए।" मिशनरियों और राय रोशनलाल की तरफ़ मुड़ कर बोले, "हमारा डेरा जंगल में है, शहर या दुकानों से दूर। यहाँ कोई भी बढ़िया चीज़ें नहीं मिलती हैं, सो तुच्छ और सादे भोजन के लिये आप हमें माफ़ करें।"

उन सबने हुज़ूर महाराजजी को उनकी दिलचस्प, स्पष्ट और प्रेरक बातों के लिये धन्यवाद दिया और कहा कि इस आत्मिक भोजन के बाद उन्हें सांसारिक भोजन की कोई भूख महसूस नहीं हो रही है।

2. चमत्कार

मैंने नौजवान मिशनरी प्रोफ़ेसर को अपना परिचय दिया। उन्होंने अपने साथियों से मेरा परिचय कराया। मैंने उन्हें बताया कि मैं भी लाहौर में उनके कॉलेज का विद्यार्थी रहा हूँ और वहीं से बी.ए. किया है। मिशनरी प्रोफ़ेसर मेरे एक पुराने प्रोफ़ेसर के पुत्र निकले। उन्होंने मुझसे हाथ मिलाया और पूछा कि मैं मिशन कॉलेज में कौन-से साल में था। मैंने जवाब दिया, '1908 से 1910 तक'। 'ओह! तब तो मैं एक छोटा बच्चा ही था', वे बोल उठे।

इस परिचय से हम एक-दूसरे के कुछ नज़दीक आ गये और नई मुलाक़ात की स्वाभाविक झिझक दूर हो गयी। भोजन के बाद जब मैंने जाने की इजाज़त चाही तो प्रोफ़ेसर ने पूछा कि क्या वह मेरे साथ मेरे निवास-स्थान चल सकता है। इसके लिये मैं तुरन्त राज़ी हो गया। हालाँकि वह 30 साल से कम का नौजवान था, पर उसने ऐसे खोजपूर्ण सवाल पूछे कि मैं जल्दी ही समझ गया कि वह काफ़ी विद्वान और बुद्धिमान व्यक्ति है और उसे सत्य या हक़ीक़त पाने की पक्की लगन है। उसमें ईसाई धर्म की ओर कुछ पक्षपात या तरफ़दारी का भाव ज़रूर था। पर ईसाई होने के नाते यह स्वाभाविक ही था। उसने अरविन्द घोष के गीता पर दिये भाषण, स्वामी रामकृष्ण और विवेकानन्द की पुस्तकें, वेदान्त और थियोसाफ़ी पर कुछ साहित्य और कुछ मैक्समूलर द्वारा किये गये संस्कृत ग्रन्थों के अनुवाद भी पढ़ रखे थे और इन पर की गई उसकी आलोचना बहुत बुद्धिमत्तापूर्ण थी।

हमने भारत के छहों दर्शनों के बारे में बातचीत की। उसके बाद हमारी चर्चा चमत्कारों की तरफ़ चल पड़ी। उसने हुज़ूर महाराजजी से चमत्कार के बारे में सवाल किया था, पर हुज़ूर जाने के लिये उठ खड़े हुए थे, इसलिये उन्होंने फ़रमाया था कि इसके बारे में वे फिर कभी बात करेंगे। लेकिन जब हम उनके कमरे से निकल रहे थे तो उन्होंने मेरी ओर देखा और कहा, 'बेहतर है तुम ही इस विषय पर' इनसे बातचीत

कर लो।' चूँकि मैं इस विषय में बातचीत करने में समर्थ नहीं था, और इसीलिये शायद मुझे परेशान-सा देख कर हुज़ूर ने अपनी एक पैनी दृष्टि सीधी मेरी आँखों में डाली। वह क्या दृष्टि थी! वह कोरी दृष्टि ही नहीं थी बल्कि प्रकाश की एक चमक थी जो मेरी आँखों के ज़रिये मेरे दिमाग़ में घुस गई। ऐसी दृष्टि क्या नहीं कर सकती! यह एक गूँगे से चारों वेदों का पाठ करा सकती है। क्या इसी दृष्टि ने कल्हा गाँव की अनपढ़ मुसलमान जुलाहिन माई हुसैनी को वेद के इस कठिन पद 'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे' को ज़िला अमृतसर के चीमा गाँव के पण्डित रामरतन के सामने खोल कर समझाने की ताक़त नहीं दे दी थी ! मेरी परेशानी दूर हो गई और हुज़ूर महाराजजी ने मुझसे जो शब्द कहलवाये वे आगे दिये जाते हैं :

प्रोफ़ेसर ने पूछा, "क्या कभी महाराजजी ने कुछ चमत्कार दिखाये हैं ? ईसा मसीह ने तो बहुत दिखाये थे।"

मैंने जवाब दिया, "सन्त कभी लोक-दिखावे के लिये चमत्कार नहीं करते। कभी-कभी ये उनसे अपने आप स्वाभाविक ढंग से हो जाया करते हैं। किन्तु हमेशा वे गुप्त रखे जाते हैं।"

प्रोफ़ेसर ने पूछा, "ऐसा क्यों किया जाता है ?"

मैंने उत्तर दिया, "सन्त चमत्कारों को कोई महत्त्व नहीं देते। चमत्कारों के द्वारा परमात्मा की इच्छा व मौज में दख़ल देने से, उसकी मौज में राज़ी रहना सन्तमत में कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण समझा जाता है। सन्तों में इतना अपार सामर्थ्य और शक्ति है जिसका अनुमान भी नहीं किया जा सकता। वे तो परमात्मा के प्यारे पुत्र हैं जिन्हें उसने अपना सब-कुछ सौंप रखा है। वे जो चाहें कर सकते हैं। किन्तु वे चमत्कारों को बच्चों का खेल समझते हैं — जैसे एक बच्चे का साबुन के पानी में बुलबुले उठा कर खेलना।"

प्रोफ़ेसर ने कहा, "लेकिन चमत्कार करना भी तो एक अलौकिक शक्ति का काम है। क्या ऐसा नहीं है ?"

मैंने जवाब दिया, "लोग चमत्कारों को आदर, भय और ताज्जुब से ज़रूर देखते हैं। पर वास्तव में उनमें कोई आत्मिक या ईश्वरीय बात नहीं है। वे तो मन के खेल हैं। मन जब पूरी तरह एकाग्र हो जाता है, तो अद्‌भुत सिद्धियाँ प्राप्त कर लेता है। वह बीमार को अच्छा कर सकता है, अन्धे को सुजाखा और कंगाल को अमीर बना सकता है। दौड़ती हुई

रेल को रोक सकता है, बारिश ला सकता है, पानी पर चल सकता है और हवा में उड़ सकता है, जहाँ चाहे वहाँ पहुँच सकता है, और बहुत-से असाधारण काम कर सकता है। जो अपने मन को जीत लेता है वह क़ुदरत की ताक़तों का बादशाह हो जाता है। जड़ पदार्थ और प्रकृति एक दास की तरह उसका हुक्म मानती हैं। ऊँचे आत्मिक मण्डलों पर पहुँच जाने पर मनुष्य को अलौकिक सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। पर वह दुनियावी मान-बड़ाई के लिये लोगों को करामातें दिखा कर उनका दुरुपयोग क्यों करे ?"

प्रोफ़ेसर ने पूछा, "अगर किसी मनुष्य में ये ताक़तें हैं तो उन्हें काम में लाने में हरज ही क्या है ?"

मैंने जवाब दिया, "सन्त हमेशा अपने शिष्यों को सलाह देते हैं कि इन ताक़तों को कभी काम में न लें। इनके उपयोग में बहुत-से ख़तरे हैं। काल ख़ुद आपके सामने प्रकट होकर विनती करेगा कि इन ताक़तों का आनन्द लूटो। शैतान इनके ज़रिये आत्माओं को अपने जाल में फँसाये रखता है और ऊपर की ओर तरक़्क़ी नहीं करने देता। अपनी रूहानी चढ़ाई के दौरान अभ्यासी को ये ताक़तें बहुत जल्दी मिलना शुरू हो जाती हैं। पर इनको काम में लेना ख़तरे से ख़ाली नहीं। कभी-कभी इसकी सज़ा बहुत सख़्त होती है। यह न सिर्फ़ उसकी रूहानी चढ़ाई को बन्द कर देता है, बल्कि कभी-कभी मनुष्य को गन्दी से गन्दी वासनाओं का शिकार भी बना देता है। फिर उसकी सारी सिद्धियाँ नष्ट हो जाती हैं।"

प्रोफ़ेसर ने पूछा, "लेकिन सन्तों को तो कोई नुक़सान नहीं पहुँच सकता, फिर वे इनका उपयोग करने में क्यों संकोच करते हैं?"

मैंने उत्तर दिया, "लेकिन वे इनका उपयोग क्यों करें ? उन्हें अपना कोई मतलब तो गाँठना नहीं है। वे मान-बड़ाई या कीर्ति के भूखे नहीं होते। उन्हें दुनिया में दिखावे की और नाम कमाने की ज़रूरत नहीं। उनमें अभिमान व घमण्ड लेश-मात्र भी नहीं होता। ऐसे कार्य हमेशा अपने साथ तकलीफ़ लाते हैं। इतिहास बताता है कि मुलतान के सन्त शम्स तब्रेज़ की जीते-जी खाल खींच ली गई थी क्योंकि उन्होंने एक मृत लड़के को ज़िन्दा कर दिया था।"

प्रोफ़ेसर ने पूछा, "क्या ईसा मसीह को चमत्कारों के कारण ही सूली पर चढाया गया था ?"

मैंने कहा, "यह तो मैं नहीं कह सकता किन्तु सन्त चमत्कारों के प्रदर्शन को कभी बढ़ावा नहीं देते। अभ्यासी आत्मिक मण्डलों पर जितना ऊँचा चढ़ता जाता है उतना ही वह ख़ुद को मालिक की मौज पर छोड़ता जाता है। वह यह महसूस करने लगता है कि संसार के हर काम का इन्तिज़ाम वह सबसे बड़ा मैनेजर सही ढंग से कर रहा है, और वह कभी कोई ग़लती नहीं कर सकता। फ़िर वह उसके काम में फ़ुज़ूल ही दख़ल क्यों दे ? वह जो कुछ करता है, अच्छा ही करता है।"

प्रोफ़ेसर बोला, "इन अलौकिक सिद्धियों व ताक़तों को प्राप्त कर लेना तो एक बड़ी निराली बात होगी।"

मैंने उत्तर दिया, "मनुष्य के अन्दर कई छिपी हुई शक्तियाँ हैं। अगर किसी गुरु के मार्ग-दर्शन के द्वारा वह उन्हें जाग्रत कर लेता है तो वह क़ुदरत की सब ताक़तों पर क़ाबू पा लेता है। असल में मनुष्य तभी सही माने में 'मनुष्य' बनता है जब कि वह इन शक्तियों को प्राप्त कर लेता है। यह तो उसकी अपनी विरासत है जिसे पाये बग़ैर मनुष्य सच्चे माने में मनुष्य नहीं कहला सकता। वह केवल कुछ अधिक विकसित दिमाग़ वाला जानवर ही कहलायेगा।"

"अगर कोई व्यक्ति इन ताक़तों का अपनी धन-दौलत बढ़ाने में उपयोग करे तो क्या उसका कोई नुक़सान होगा ?" प्रोफ़ेसर ने पूछा।

मैंने कहा, "मैं आपको अपने एक रिश्तेदार का अनुभव बतलाता हूँ। वह बहुत ग़रीब था, बड़ी मुश्किल से गुज़ारा होता था और बदनसीबी क़दम-क़दम पर उसका पीछा करती थी। एक बार मैंने उसे दो सौ रुपये दिये ताकि वह कोई छोटा-मोटा रोज़गार शुरू कर सके। वह रुपये लेकर घर भी नहीं पहुँच पाया कि रास्ते में सौ-सौ के दोनों नोट किसी जेबकतरे ने चुरा लिये। फिर एक बार उसके एक चाचा ने उसे एक सिलाई की मशीन दिलवा दी ताकि उसकी पत्नी सिलाई के द्वारा कुछ पैसा कमा सके। वह सिलाई के काम में होशयार थी। पर ज्यों ही उसकी मशीन लेने की बरसों की इच्छा पूरी हुई, वह एक लम्बे समय के लिये सख़्त बीमार पड़ गई और उसके पति को दवा और डॉक्टरों के बिल चुकाने के लिये उस मशीन को बेचना पड़ गया।

मेरा रिश्तेदार अच्छा अभ्यासी था और अच्छी आन्तरिक प्रगति कर रहा था। वह चाहे कंगाल था और उसके माँ-बाप तथा स्त्री उसे ताने सुनाते और तंग करते रहते थे, पर वह अपने हाल पर खुश था। एक

रात जब वह भजन में बैठा था तो उसे सोने की मोहरों से भरा हुआ एक सन्दूक भेंट किया गया। ग़रीबी से परेशान, कमज़ोरी के क्षण में उसने वह सन्दूक मंज़ूर कर लिया। शायद यह भी कारण रहा हो, जैसा कि बाद में मालूम हुआ, उसे यह पता ही नहीं था कि भजन के समय अगर अन्दर कोई चीज़ दी जाये तो उसे नहीं लेना चाहिये। नतीजा यह हुआ कि वह बहुत धनवान हो गया। किन्तु उसके दिल से मालिक की भक्ति व प्यार ग़ायब हो गये। उसके बाद वह कभी डेरा नहीं आया। मैं अक्सर उससे मिलता हूँ और वह हमेशा कहता है कि एक दिन वह हुज़ूर महाराजजी के दर्शन करने ज़रूर आयेगा। लेकिन वह दिन आज तक नहीं आया क्योंकि वह अपने धन्धे में ज़रूरत से ज़्यादा जुटा रहता है। हम परमात्मा और दौलत दोनों की एक साथ भक्ति नहीं कर सकते। परमात्मा बड़ा 'ईर्ष्यालु प्रीतम' है। वह कहता है — 'अगर तुम मुझे चाहते हो तो अन्य सब प्यार और इच्छाओं को छोड़ दो।' जैसा कि कहा जाता है कि एक म्यान में दो तलवारें न कभी किसी ने देखी हैं न सुनी हैं।"

प्रोफ़ेसर ने पूछा, "क्या आप मुझे यहाँ कोई कमाई वाली या पहुँची हुई हस्ती से मिला सकते हैं ?"

मैंने कहा "ऐसे पहुँचे हुए बहुत-से लोग हैं, पर वे हमेशा अपने आप को छिपाये रखते हैं।" मैं डेरा में रहने वाले कई कमाई वाले लोगों के बारे में सोच ही रहा था कि भाई वज़ीरा हमारे कमरे के सामने से निकले। मैंने उन्हें अन्दर बुलाया। प्रोफ़ेसर खड़े हुए, उनसे हाथ मिलाया और अपने पास सोफ़े पर बैठने के लिये कहा। लेकिन भाई वज़ीरा संकोच व नम्रता के साथ ज़मीन पर बैठ गये और इन्तिज़ार करने लगे कि हम कोई बात पूछें या कोई काम बतायें। थोड़ी देर के लिये मैंने दोनों को चुपचाप रहने दिया और वे एक-दूसरे की ओर देखते रहे, क्योंकि उनमें से कोई एक-दूसरे की बोली नहीं समझता था, इसलिये बातचीत का सवाल ही नहीं था।

कुछ मिनटों के बाद भाई वज़ीरा ने जाने की इजाज़त माँगी। उसके चले जाने के बाद मैंने प्रोफ़ेसर को बताया कि यह एक अछूत जाति का बहुत ग़रीब आदमी है, इसके पास कोई सम्पत्ति या जायदाद नहीं है। अपने लड़कपन से ही डेरा में रहता आ रहा है। नाम मिल जाने के बाद इसने पूरा समय भजन-सिमरन में लगाया और अच्छी

आन्तरिक तरक़्क़ी की। यह उस हालत में पहुँच गया है जब कि जड़-चेतन सबमें सतगुरु दिखाई देते हैं। यह एक पेड़ को बाहों में भर लेता और कहता, 'गुरुदेव, मेरे प्यारे सतगुरु' या एक कुत्ते को गोद में ले लेता और कहता 'मेरे सतगुरु इसके अन्दर हैं।' यह घण्टों तक बड़े प्यार से बैल की पीठ पर हाथ फेरता और बार-बार पूछता रहता, 'मेरे सतगुरु, आप मुझसे ख़ुश तो हैं न ?' कभी-कभी यह उस ज़मीन से धूल उठा लाता जहाँ से हुज़ूर महाराजजी निकले हों और यह कहते हुए उसे अपने चेहरे व माथे पर लगाता कि मन के मैल को धोने के लिये यह एक उत्तम साबुन है। एक दिन वह हुज़ूर महाराजजी के चरणों में गिर पड़ा और चिल्लाने लगा, "मेरा सतगुरु परमात्मा है, सबका सिरजनहार है।" हुज़ूर ने उसकी सब बातें सुन रखी थीं। उन्होंने उसे खड़ा किया और ज़रा सख़्त स्वर में पूछा, "तुम्हारे बारे में यह सब क्या सुन रहा हूँ।"

भाई वज़ीरा ने पूछा, "क्या आप सबके बनाने वाले नहीं हैं? क्या आप सबकी ज़िन्दगी नहीं हैं ?"

हुज़ूर महाराजजी ने कहा, "राज़ की बातें ज़ाहिर करना अच्छा नहीं है। तुम्हें इसका नुक़सान उठाना पड़ेगा।"

भाई वज़ीरा बोला, "मैं तो सिर्फ़ सच्ची बात कह रहा हूँ।"

हुज़ूर ने उससे पूछा, "तुम्हें यह करने के लिये किसने कहा ?"

भाई वज़ीरा ने कहा, "आपने।"

हुज़ूर महाराजजी ने फ़रमाया, "अच्छी बात है। मैं अपनी इजाज़त वापस लेता हूँ।"

और तुरन्त सब-कुछ वापस ले लिया गया। भाई वज़ीरा के लिये अन्दर का दरवाज़ा बन्द हो गया। मालिक की बख़्शिश वापस हो गयी। भक्ति और प्रेम का सोता सूख गया। वह भजन में एक मिनट भी नहीं बैठ पाता था। उसका वह उत्साह न रहा, उसकी लगन चली गयी। रूहानी दौलत के खो जाने का सदमा सांसारिक दौलत के खोने के सदमे से कहीं बढ़ कर होता है। भाई वज़ीरा उसे बरदाश्त नहीं कर सका। वह दिन-रात रोता रहता। हुज़ूर महाराजजी ने उससे मिलने से भी इनकार कर दिया। अन्दर के दर्शन बन्द होने के साथ ही उसे बाहर के दर्शनों से भी वंचित कर दिया गया। यह पूरे एक महीने तक चलता रहा। भाई वज़ीरा की नींद और भूख सब ग़ायब हो गई और वह सूख

कर काँटा हो गया। कुछ पुराने सत्संगियों ने उसकी तरफ़ से हुज़ूर से प्रार्थना की और उसे हुज़ूर के सामने पेश किया गया।

हुज़ूर महाराजजी मुसकराये और बोले, "अब क्या बात है, बेटा ?"

भाई वज़ीरा ने अपने दोनों कान पकड़े और कहा, "मेरे मालिक, मुझे सबक़ मिल गया, अब मुझे माफ़ कर दें।"

हुज़ूर ने कहा, "जाओ, फिर कभी यह ग़लती न करना।"

कहानी ख़त्म करते हुए मैंने कहा, "भाई वज़ीरा को अपनी खोयी हुई दौलत फिर मिल गई। तब से वह बहुत कम बोलता है। उसके चेहरे पर हमेशा शान्ति और प्रसन्नता झलकती रहती है। लोग उसे अब मौनी वज़ीरा कहते हैं।"

प्रोफ़ेसर ने कहा, "शुक्रिया। यह तो बड़ा दिलचस्प वृत्तान्त है।"

मैं कहता चला गया, "अब मैं आपको बतलाता हूँ कि एक सन्त ने करामातें दिखलाने पर अपने बेटे के साथ क्या किया। ताल, जो बाद में बाबा ताल के नाम से मशहूर हुए, गुरु हरगोबिन्द जी के बेटे थे। गुरु हरगोबिन्द जी गुरु नानक की परम्परा में छठे गुरु थे। इसलिये एक तरह से यह हाल ही की घटना है। जब बाबा ताल 9 साल के थे तो उनका एक दोस्त जिसका नाम मोहन था, मर गया। वह मोहन के घर गये तो वहाँ उन्होंने उसके माता-पिता और दूसरे रिश्तेदारों को बुरी तरह रोते हुए पाया और मोहन की माँ तो इतना विलाप कर रही थी कि उसे देखा भी नहीं जा सकता था। उसने ताल को अपनी गोद में भर लिया और चिल्लाई 'मेरे बच्चे ! तेरा दोस्त चल बसा !' ताल ने कहा, 'नहीं, यह मरा नहीं है। यह तो खेल में मेरी बारी न देने और मुझे न जीतने देने के लिये मौत का सिर्फ़ बहाना बना कर पड़ा है। कल शाम को हम खेल रहे थे। मेरी बारी आयी कि इतने में अँधेरा हो गया। लेकिन मेरे साथ इसकी चाल नहीं चलेगी।' मोहन की लाश के पास जाकर ताल ने उसका हाथ पकड़ कर उसे उठा दिया और कहा, 'बहुत देरी हो रही है। चलो हम अपना खेल ख़त्म कर लें।' और वे दोनों खेल के मैदान में चले गये। उसके बाद मोहन कई वर्षों तक ज़िन्दा रहा।

"जब यह बात गुरु हरगोबिन्द जी को मालूम हुई तो उन्होंने ताल को बुलाया और कहा, 'बेटा, तुमने यह अच्छा नहीं किया। अब यह चमत्कार करने के बदले या तो तुम्हें यह संसार छोड़ना होगा या मुझे

जाना होगा।' बाबा ताल ने अपनी नादानी का मोल चुकाना मंज़ूर किया और उसी समय, वहीं ज़मीन पर लेट कर चोला छोड़ दिया।"

प्रोफ़ेसर ने कहा, "लेकिन यहाँ तो लोग कहते हैं कि हुज़ूर महाराजजी ने बहुत-सी करामातें दिखलाई हैं।"

"हाँ !" मैंने उत्तर दिया, "पर कुछ दूसरी तरह की करामातें भी हैं जिनका सन्त ख़ूब उपयोग करते हैं तथा उनके शिष्य जिनका रोज़ अनुभव करते हैं। यहाँ किसी से भी पूछें, वह आपको अपने कई निजी अनुभव सुनायेगा। अगर आप सुनना चाहें तो मैं अपने ख़ुद के कुछ अनुभव सुना सकता हूँ।"

प्रोफ़ेसर ने आग्रह किया, "कृपया ज़रूर सुनाइये। ये सब बातें बड़ी दिलचस्प हैं।"

मैंने कहा, "अच्छी बात है। जहाँ तक मेरा अपना सवाल है, जिस दिन मुझे नाम मिला उसी दिन से, बल्कि अभी पूरा नाम भी न मिल पाया था कि मुझ पर यह करामातों की बौछार शुरू होने लग गई। नामदान के समय ही मुझे अपना पहला अनुभव हुआ। नाम अक्सर दो हिस्सों में दिया जाता है। पहले हिस्से में महाराजजी ने हमें अन्दर के रास्ते की कुछ बातें बतलाईं, रास्ते के ख़ास-ख़ास मण्डलों और पड़ावों का वर्णन किया, उनके नाम बताये, उन मण्डलों के धनियों के नाम बतलाये, उन रोशनियों का वर्णन किया जो रास्ते में हमारी मदद करती हैं, उस अनहद नाद या धुन के बारे में बताया जिससे हम अलग-अलग मण्डलों के भेद समझ सकें। और इसी तरह आन्तरिक मार्ग की दूसरी ज़रूरी बातें समझाईं। यह सब समझा कर हुज़ूर महाराजजी हमारे पास दो अनुभवी सत्संगियों को छोड़ कर चले गये, जिनको हमें नाम याद कराने का काम सौंपा गया था। इन नामों का जाप हमारे अभ्यास का पहला अंग था। मैंने अपने यूरोपियन शिक्षकों से मुश्किल चीज़ को याद करने का सरल तरीक़ा सीख रखा था, सो मैंने पाँचों नामों के पहले अक्षरों को जोड़ कर एक नया लफ़्ज़ बना लिया जिसकी वजह से मुझे उन नामों को याद करने में दस मिनट से भी कम समय लगा। मेरे दूसरे साथियों को इसमें पूरा एक घण्टा लगा।

उन लोगों ने यह सारा समय बड़ी एकाग्रता से नामों को याद करने में लगाया, जब कि मैं बेचैनी के साथ उनके इस कार्य को पूरा करने का इन्तिज़ार करता रहा और मिथ्याभिमान और गुरूर का शिकार हो गया।

औरों से अपनी तेज़ अक़्ल और अच्छी याददाश्त का घमण्ड मेरे मन पर छा गया। इसका नतीजा यह हुआ कि एक घण्टे बाद जब हुज़ूर लौटे और उन्होंने आत्मा को शब्द-धुन के साथ जोड़ने की क्रिया बताई तो मेरे सब साथियों ने अपने अन्तर में उस दिव्य-धुन को सुना, पर मेरे पल्ले कुछ न पड़ा।

जब हुज़ूर महाराजजी को यह बताया गया तो उन्होंने मुझे अपने पास बुलाया और अपने सामने ध्यान के आसन पर बैठाया। अपने दाहिने हाथ की उँगली मेरे माथे के बीच लगाते हुए बोले, "क्या तुम्हें यहाँ कुछ भी सुनाई नहीं दे रहा ?" हुज़ूर के स्पर्श मात्र से ही मानों शब्द-धुन का भण्डार खुल गया। गिरजा-घर के घण्टे जैसे ज़ोर-ज़ोर से साफ़ बजने शुरू हो गये। ऊपर की तरफ़ खिंचाव होने लगा और आत्मा ने शरीर से सिमटना शुरू कर दिया। मालूम नहीं, मैं वहाँ कितनी देर बैठा रहा। मुझे तो सिर्फ़ कुछ मिनट जैसा ही लगा और फिर मैं अनायास अपने आप खिलखिला कर हँस पड़ा और आँखें खोल दीं। हुज़ूर महाराजजी हँस पड़े और पूछा, 'क्या तुमने धुन सुनी ?' 'जी हुज़ूर, आपकी दया से,' मैंने उत्तर दिया। उसके बाद कई महीनों तक हुज़ूर महाराजजी हमेशा अन्तर में मेरे साथ थे और दिन-रात मधुर घण्टे की आवाज़ गूँजती रहती थी।

मेरा ख़याल है कि यह सब पूर्व-नियोजित (पहले से तय) था और हुज़ूर महाराजजी की मौज से एक ख़ास उद्देश्य की पूर्ति के लिये ही ऐसा हुआ। मेरे जैसे नास्तिक झुकाव वाले 20 साल के नौजवान के लिये, जिसका दिमाग़ विदेशी शिक्षा के द्वारा पूरी तरह से धर्म विरोधी बन गया था, ऐसी चोट ज़रूरी थी। मैं नाम लेने या परमात्मा की खोज के लिये डेरे में नहीं आया था। बड़े दिनों की छुट्टियाँ थीं और मैं कुछ दोस्तों के साथ ब्यास नदी में नौका-विहार के लिये आया था। छुट्टी के आनन्द और तमाशे की भावना में मग्न, हम सब कौतूहल के साथ शाम को हुज़ूर महाराजजी के सत्संग में गये। मेरे पल्ले कुछ ख़ास न पड़ा। जैसे ही सत्संग शुरू हुआ, मेरे मन ने इधर-उधर भटकना शुरू कर दिया। मुझे सिर्फ़ इतना ही याद रहा कि सत्संग में इस बात पर ज़ोर दिया गया था कि मनुष्य-जन्म अनमोल है, केवल मनुष्य-जीवन में ही परमात्मा मिल सकता है और वह कहीं बाहर इस दुनिया में नहीं मिल सकता, बल्कि मनुष्य के शरीर के अन्दर ही मिलता है। लेकिन उस

वक़्त परमात्मा की किसे फ़िक्र थी ? अगला दिन नामदान का दिन था और बहुत-से लोगों को नाम दिया जाने वाला था। मेरे एक रिश्तेदार सत्संगी थे, उन्होंने मुझे सुबह के नाश्ते के लिये बुलाया था। नाश्ते के बाद उन्होंने कहा, "तुम नाम क्यों नहीं ले लेते ? यह अमूल्य अवसर है, इसे हाथ से जाने न दो।"

"मैंने मन में सोचा कि यह तमाशा भी क्यों न देखा जाये ? और मैंने नाम लेना मंज़ूर कर लिया। इस भावना के साथ मैं नाम लेने वालों में शरीक हो गया। किन्तु परमात्मा अपना कार्य कई प्रकार से पूरा करता है। मैं नादान था, कुछ-कुछ नास्तिक भी था और क्या न था ? किन्तु हुज़ूर महाराजजी की नज़र केवल मेरी आत्मा पर ही थी — परमात्मा का वह अंश जिसके उद्धार के लिये वे आये थे। नामदान ने मेरा सारा जीवन ही बदल दिया। अगर मैं अपने साथियों की तरह शुरू में ही शब्द-धुन सुन लेता तो मैं उसे एक मामूली, हमेशा होने वाली स्वाभाविक बात समझ बैठता। मुझे सतगुरु की अपार शक्ति का बोध ही न होता। इसलिये यह अनुभव मेरे लिये बहुत ज़रूरी था। इससे मुझे पूरा विश्वास हो गया कि मेरे सामने एक ऐसी हस्ती बैठी है जो देखने में तो साधारण इनसान लगती है पर जिसमें वह अलौकिक सामर्थ्य है जो पापी जीवों को उठा कर उन ऊँचे रूहानी मण्डलों में ले जा सकती है जहाँ अनहद नाद की मीठी धुनें गूँज रही हैं।

यह पहला चमत्कार था जिसका मैंने अनुभव किया। क्या यह आज तक सन्तों-महात्माओं द्वारा की गई तमाम करामातों से बढ़ कर नहीं था ? उसके बाद एक दिन भी ऐसा नहीं गुज़रा जब कि मैंने ऐसी ही कोई न कोई अलौकिक दया-मेहर न देखी हो।

मैं कुछ देर चुप रहा। फिर पूछा, "क्या आप और कुछ सुनना चाहेंगे ?"

प्रोफ़ेसर ने कहा, "आप जितना सुना सकते हैं, सुनाइये।"

मैंने कहा, "अच्छी बात है, मैं एक घटना और सुनाता हूँ। मेरा लड़का जालन्धर में वकालत करता था। उसने पंजाब सरकार में पब्लिक प्रोसीक्यूटर (सरकारी वकील) की नौकरी के लिये अर्ज़ी दी। कुल पाँच स्थान ख़ाली थे। लेकिन इनमें से तीन जगह[1] मुसलमान उम्मीदवारों को

---

1. अंग्रेज़ों के शासन-काल में सरकारी नौकरियाँ धर्म व जाति के अनुसार दी जाती थीं और उन दिनों ऊँचे अधिकारियों की सिफ़ारिश बहुत महत्त्व रखती थी।

दी जाने वाली थीं और एक सिक्ख को। इसलिये, हिन्दू वकील के लिये सिर्फ़ एक जगह ही बचती थी। उस एक स्थान के लिये क़रीब 40 उम्मीदवार थे। उनमें से एक के लिये प्रान्त के गवर्नर की सिफ़ारिश थी और दूसरे के पीछे हाईकोर्ट के मुख्य न्यायाधीश का पूरा सहारा था। इसलिये मेरे लड़के को विश्वास हो गया कि उसके चुने जाने की कोई आशा नहीं है। यों भी वह एक नया वकील था और उसे वकालत का केवल दो साल का अनुभव था। उसने तय कर लिया कि वह इन्टरव्यू देने नहीं जायेगा। इन्टरव्यू अम्बाला में बुधवार को होने वाला था और हम लोग हमेशा की तरह, इतवार को सत्संग सुनने डेरा आये हुए थे।

जब हम हुज़ूर महाराजजी से बिदा लेने के लिये गये तो जालन्धर के एडवोकेट सरदार भगतसिंह ने बातों ही बातों में हुज़ूर को यह सब बात बताई। मेरा लड़का उस समय सरदार भगतसिंह के पास वकालत का काम करता था। वह हुज़ूर की दाहिनी ओर बिलकुल पास ही खड़ा था। हुज़ूर ने अपना दाहिना हाथ उसके कन्धे पर रखा और कहा, 'बेटा, इनसान के भाग्य को नियन्त्रित करने वाली इनसान से ऊँची भी कोई ताक़त है। जाओ, अपनी तक़दीर को आज़माओ।' बाहर निकलते ही मैंने लड़के को बधाई दी और कहा कि बेटा, तुम्हारा चुनाव हो गया है। लेकिन लड़के तो लड़के ही होते हैं और हमेशा लड़के ही रहेंगे। उसे विश्वास न हुआ। उसने सोचा कि उसका अम्बाला जाना सिर्फ़ वक़्त और पैसा बरबाद करना है। पर इन्टरव्यू वाले दिन मैंने उसे वहाँ भेज ही दिया।

कोई 125 उम्मीदवार थे जिन्हें चुनाव समिति (सेलेक्शन बोर्ड) ने 25-25 की टोलियों में बुलाया। मेरा लड़का पहली टोली में गया और संयोग से पहली लाइन में पहले नम्बर पर खड़ा हो गया। बोर्ड के अध्यक्ष मिस्टर हैमिल्टन हार्डिंज ने उसकी अर्ज़ी को देखते हुए पूछा, 'तुम अपने कॉलेज में टेनिस के कप्तान रहे हो और लड़कों के छात्रावास के प्रोक्टर (कार्याध्यक्ष) रहे हो, पर ये दोनों बातें पैरोकारी के काम में क्या तुम्हारी कुछ मदद कर सकेंगी ?' यह सवाल एक ऐसे ताने व उपहास भरे स्वर में पूछा गया था कि मेरे लड़के को गुस्सा आ गया। वह समझ नहीं पा रहा था कि इस तीखे व्यंग्य का क्या जवाब दे और वह कुछ रूखा और नादानीपूर्ण जवाब देने ही वाला था कि बोर्ड के एक दूसरे सदस्य बोल उठे कि इससे ज़ाहिर होता है कि विद्यार्थी जीवन में भी इसमें किसी काम को ढंग से करने और मुखिया बनने की योग्यता थी।

इतने में मेरे लड़के ने अपने आप को सँभाल लिया और जवाब दिया, 'श्रीमान, इससे ज़ाहिर होता है कि मुझमें संघर्ष की योग्यता है और मैं आसानी से हार मानने वाला नहीं हूँ। एक वकील में ये दोनों गुण बहुत ज़रूरी हैं।' बोर्ड के प्रेसीडेण्ट ने कहा, 'लेकिन तुम्हारा वकालत का अनुभव बहुत कम है।' और इसके साथ इन्टरव्यू ख़त्म हो गया। वह बाहर आया और घर आने वाली ट्रेन पकड़ने के लिये स्टेशन रवाना होना ही चाहता था कि जिस दोस्त के यहाँ वह ठहरा था, उसने उसे ज़बरदस्ती रोक लिया और कहा कि नतीजा सुन कर जाना। वह ऊब कर इन घड़ियों को ऊँघते-ऊँघते निकाल रहा था कि इतने में एक सज्जन आये और कन्धा थपथपा कर उसे जगाया। ये उस सेलेक्शन बोर्ड के तीसरे सदस्य थे।

'क्या तुम सुरेशरलाल कपूर हो ?' उन्होंने पूछा।

'जी हाँ,' सुरेशर ने उत्तर दिया।

उन्होंने पूछा, 'क्या तुम्हारे पिताजी कपूरथला में सेशन्स जज हैं ?'

'जी हाँ,' सुरेशर ने जवाब दिया।

"वे बोले, 'हम पुराने सहपाठी हैं। उन्हें मेरी तरफ़ से याद करना। उनसे कहना कि हालाँकि हम पिछले 20 साल से नहीं मिले हैं, लेकिन मेरे दिल में उनके लिये वही इज़्ज़त और प्रेम है जो कि कॉलेज के दिनों में था। किसी दिन मैं उनसे मिलने आऊँगा। तुम मेरा नाम जानना चाहोगे। यह लो मेरा परिचय-पत्र (उस पर उनका नाम लिखा हुआ था राय बहादुर...... डी.आई.जी., पुलिस)। सेलेक्शन में तुम प्रथम आये हो। मैं अब जाकर तुम्हारी नियुक्ति का आदेश निकलवाता हूँ। हम तुम्हें रोहतक में नियुक्त कर रहे हैं। अच्छा हो तुरन्त वहाँ जाकर रिपोर्ट करो क्योंकि कभी-कभी कुछ घण्टों की प्राथमिकता भी नौकरी में बड़ा फ़र्क़ कर देती है।' (और बाद में वास्तव में ऐसा हुआ भी)। सतगुरु ने यह सब कैसे करा लिया ? मालूम करने पर सुरेशर को पता चला कि बोर्ड ने इस बार तीन की जगह सिर्फ़ दो मुसलमान उम्मीदवारों को लेने का फ़ैसला किया और बची हुई तीसरी जगह पर गवर्नर के हिन्दू कृपा-पात्र को ले लिया।"

जब प्रोफ़ेसर ने इस वृत्तान्त को बहुत दिलचस्प बताया तो मैं कहता चला गया, "सन्त कभी-कभी दूसरे प्रकार के चमत्कार भी करते हैं किन्तु किन्हीं ख़ास-ख़ास मौकों पर और ख़ास वजह से। साथ ही, इस बात

को गुप्त रखने की पूरी कोशिश की जाती है। मैं आपको एक घटना सुनाता हूँ जो मैंने अपनी आँखों से देखी है :

"एक बार हुज़ूर महाराजजी अपने फ़ार्म को देख कर सिकन्दरपुर से सिरसा लौट रहे थे जहाँ से उन्हें ब्यास के लिये गाड़ी पकड़नी थी। वे ख़ुद घोड़े पर थे और मियाँ शादी (हुज़ूर के एक मुसलमान शिष्य), मैं तथा दो-तीन अन्य सत्संगी हुज़ूर के पीछे-पीछे पैदल चल रहे थे। उस ज़िले में बड़े ज़हरीले साँप होते थे। उन दिनों वहाँ सड़कें नहीं थीं, इसलिये हम लोग खेतों में से निकल रहे थे। एकाएक शादी चिल्लाया कि उसे साँप ने डस लिया है। साँप अभी तक वहीं था और हमने उसे मार डाला। उस इलाक़े में काले नाग का काटा हुआ आदमी पानी भी नहीं माँग पाता था। लोगों में यह कहावत चली आ रही थी कि साँप अपने शिकार से कहता था कि तू मुझ पर न गिर दूसरी तरफ़ जाकर गिर।

"भाई शादी का रंग तुरन्त बदल गया वह चल नहीं पा रहा था। हुज़ूर महाराजजी हमसे कुछ गज़ आगे थे और ज्यों ही मैं उन्हें इस दुर्घटना की ख़बर देने चला तो शादी ने दर्द-भरे स्वर में आवाज़ दी, 'मेहरबानी करके उनसे न कहना।'

'क्यों नहीं ? मुझे कहना ही चाहिये,' मैंने कहा, 'इसमें क्या हरज है ?'

भाई शादी बोला, 'क्या एक यही तोहफ़ा रह गया है अपने मालिक को नज़र करने के लिये ? मैं उन्हें साँप का ज़हर भेंट नहीं करना चाहता।' मुझे उसकी बात बिलकुल न जँची। लेकिन उसने इतनी मिन्नत से गिड़-गिड़ा कर मुझसे कहा कि मैं उसकी इच्छा के ख़िलाफ़ न कर सका। वह बेहोश होकर गिर गया, शायद मर कर।

जब हम लोग काफ़ी पीछे रह गये तो हुज़ूर ने एकाएक पीछे मुड़ कर देखा। हमें घबराये हुए खड़े देख कर उन्होंने अपना घोड़ा वापस मोड़ा और वहाँ आ गये जहाँ हम भाई शादी के शरीर को घेरे हुए खड़े थे।

हुज़ूर महाराजजी को इस दुर्घटना का वृत्तान्त सुन कर बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने हमें हुक्म दिया कि शादी को घोड़े पर लाद लें ताकि उसे सिरसा के अस्पताल में ले जाया जा सके। लेकिन यह मुमकिन नहीं था। दो आदमियों के सहारा देने पर भी शादी का शरीर घोड़े पर ठहरता नहीं था, इसलिये हमने ज़मीन पर एक चादर बिछाई और उस

पर उसे लेटा दिया ? हुज़ूर ने फ़रमाया, 'देखो, यहाँ कहीं कोई नीम का पेड़ है। सुनते हैं उसकी पत्तियाँ साँप के ज़हर को दूर करने में बड़ी कारगर होती हैं।' लेकिन वहाँ किसी तरह का कोई पेड़ ही नज़र नहीं आ रहा था। थोड़ी दूरी पर एक छोटी-सी झाड़ी को देख कर हुज़ूर ने एक आदमी को उसकी डाली तोड़ कर लाने के लिये भेजा। डाली आ जाने पर उसे घाव पर घुमाते हुए हुज़ूर बोले, 'मैंने सुना है कि इस तरह झाड़ी की टहनी घुमाने से ज़हर दूर हो जाता है।'

लेकिन हम सब यह जानते थे कि ज़हर कैसे दूर हो रहा है। कोई दस मिनट के बाद भाई शादी को होश आया। बल्कि यों कहना चाहिये कि उसमें फिर से प्राण आये, क्योंकि वह क़रीब-क़रीब मर ही गया था। उसका शरीर सिर से पैर तक काला पड़ गया था। वहाँ ऐसे साँप से काटा हुआ कभी बचता हुआ नहीं सुना था।

होश में आने के कुछ देर बाद शादी को जब यह सब-कुछ पता चला तो वह फूट-फूट कर रोने लगा और बोला, 'मेरे मालिक ! आपने अपने सिर पर मेरे पापों का भार क्यों लिया ? मेरे जैसा गन्दगी का कीड़ा इस मेहर के क़ाबिल नहीं था।' फिर शादी ने मुझसे पूछा, 'आपने मेरे प्यारे मालिक से क्यों कहा ? आपको ऐसा नहीं करना था। मेरे गुलाब से प्यारे सतगुरु के तकलीफ़ उठाने से तो मेरा मर जाना कहीं बेहतर था।'

मैंने जवाब दिया, 'शादी, मैंने हुज़ूर से नहीं कहा।'

पर शादी झुँझलाया, 'आप मुझे मर जाने देते। मेरे मालिक को यह तकलीफ़ तो न उठानी पड़ती।'

हुज़ूर महाराजजी ने फ़रमाया कि हम लोग इसके बारे में और विवाद न करें।

भाई शादी जन्म से मुसलमान था। पर अपने रिश्तेदारों और जाति वालों के गुस्से और तानों की परवाह न करके उसने साहसपूर्वक एक हिन्दू को गुरु धारण किया, जो शादी के भाई-बन्धुओं की नज़र में एक काफ़िर थे। भाई शादी ने विवाह नहीं किया। उसने अपनी सारी उम्र अपने प्यारे सतगुरु की सेवा में ही गुज़ार दी।

हम चाय पी रहे थे और साथ ही बातें कर रहे थे कि इतने में ख़बर मिली कि हुज़ूर महाराजजी शाम को चार बजे सत्संग करेंगे। पौने चार बजे थे, सो हम दोनों नये सत्संग-घर की ओर चल पड़े। मिशनरी पार्टी ने भी मछली पकड़ने जाने के बजाय सत्संग सुनने का तय किया।

3. एक सत्संग

हुज़ूर महाराजजी ने श्री गुरु ग्रंथ साहिब में से पाँचवीं पातशाही के नीचे लिखे शब्द की व्याख्या करते हुए सत्संग शुरू किया :

गुरु परमेसरु पूजीऐ मनि तनि लाइ पिआरु ॥
सतिगुरु दाता जीअ का सभसै देइ अधारु ॥
सतिगुर बचन कमावणे सचा एहु वीचारु ॥
बिनु साधू संगति रतिआ माइआ मोहु सभु छारु ॥
मेरे साजन हरि हरि नामु समालि ॥
साधू संगति मनि वसै पूरन होवै घाल ॥
गुरु समरथु अपारु गुरु वडभागी दरसनु होइ ॥
गुरु अगोचरु निरमला गुर जेवडु अवरु न कोइ ॥
गुरु करता गुरु करणहारु गुरमुखि सची सोइ ॥
गुर ते बाहरि किछु नही गुर कीता लोड़े सु होइ ॥
गुरु तीरथु गुरु पारजातु गुरु मनसा पूरणहारु ॥
गुरु दाता हरिनामु देह उधरै सभु संसारु ॥
गुरु समरथु गुरु निरंकारु गुरु ऊचा अगम अपारु ॥
गुर की महिमा अगम है किआ कथै कथनहारु ॥
जितड़े फल मनि बाछीअहि तितड़े सतिगुर पासि ॥
पूरबि लिखे पावणे साचु नामु दे रासि ॥
सतिगुर सरणी आइआं बाहुड़ि नही बिनासु ॥
हरि नानक कदे न विसरउ एहु जीउ पिंडु तेरा सासु ॥

(आ.ग्र.म.5, पृ.52)

हुज़ूर महाराजजी ने फ़रमाया, "केवल दो ही चीज़ें हमारी पूजा के योग्य हैं — एक तो गुरु और दूसरा परमात्मा। शायद आप सवाल करें कि मैंने गुरु को पहला दर्जा क्यों दिया है, परमात्मा को क्यों नहीं ? यह सवाल स्वाभाविक है। जितने भी सन्तों, महात्माओं, पैग़म्बरों ने परमार्थ

की खोज की है और जो अन्दर गये हैं उन सबका यही कथन है कि परमात्मा हमारे अन्दर है, लेकिन बिना गुरु की कृपा के उसे कोई पा नहीं सकता। वह हमेशा हमारे साथ रहा है, हमारे अन्दर रहा है, पर अपने अन्दर उसके होते हुए भी आप जानते ही हैं हमारी क्या दुर्दशा हो रही है। जब गुरु मिले तो उन्होंने युक्ति प्रदान की और हमें परमात्मा के प्रत्यक्ष दर्शन करा दिये। अतएव बड़ाई किसकी हुई? गुरु की। इसी बात को कबीर साहिब अपने ही ढंग से कहते हैं :

गुरु गोबिंद दोऊ खड़े, का के लागौं पाँय ।
बलिहारी गुरु आपने, जिन गोबिंद दियो बताय ।।

(कबीर साखी-संग्रह, पृ. 2)

असल में इस सिद्धान्त की पुष्टि में किसी ज़बरदस्त तर्क की ज़रूरत नहीं। परमात्मा के हमारे अन्दर होते हुए भी हम नरकों और स्वर्गों में धकेले जा रहे थे और कीड़े-मकोड़े, पशु-पक्षी के रूप में जन्म और पुनर्जन्म पा रहे थे। कभी घास-फूस या पेड़ों के रूप में जन्म लिया तो कभी कीड़े-मकोड़े, साँप, खरगोश आदि की योनि में। हमारी मदद को कोई न आया। लेकिन जब हमें सतगुरु मिले तो उन्होंने हमें इन यातनाओं से बचा लिया और परमात्मा के महल में ले गये।

मौत के समय हमारा कौन साथ देता है ? उस समय हमें रिश्तेदार, मित्र, माँ-बाप, भाई-बहन, पड़ोसी और पुरोहित सब छोड़ देते हैं। यहाँ तक कि यह शरीर भी, जिसके पालन-पोषण के लिये हम तरह-तरह के पाप करते रहते हैं, धोखा दे जाता है। अगर मौत के समय हमारी कोई मदद करता है और धर्मराज के दरबार में हमारे साथ जाता है तो वह केवल गुरु है। मौत के बाद और कोई मदद नहीं कर सकता। अगर ऊँचे भाग्य से मनुष्य को सतगुरु मिल जाये और वह उनसे नामदान लेकर प्यार और भक्ति के साथ कमाई करे तो निश्चित है कि उसकी मौत के समय सतगुरु प्रकट होंगे और उसको अपने साथ ले जायेंगे। अगर मौत के अपार कष्ट के समय गुरु मदद नहीं करता तो ऐसे गुरु का क्या फ़ायदा? तकलीफ़ के उस नाज़ुक समय में सहारे और मदद के लिये ही गुरु की शरण ली जाती है। अगर गुरु से यह मदद नहीं मिलती तो ऐसे गुरु को हमारा दूर से ही सलाम है। इसलिये गुरु को चुनने में बड़ी सावधानी से काम लेना चाहिये, हमें पूर्ण गुरु को अपनाना चाहिये। मौत के समय प्राण निकलने में बड़ा कष्ट होता है। जिसे

सतगुरु नहीं मिला है उसकी मौत के समय यमदूत आते हैं। लेकिन सत्संगी की मौत के वक़्त सतगुरु आ जाते हैं और उस समय उसे इतनी ख़ुशी होती है जितनी अपनी शादी की भी नहीं होती।"

इस बात पर मिशनरी प्रोफ़ेसर ने पूछा, "अगर शिष्य ने अन्दर कोई प्रगति नहीं की है, तो क्या सतगुरु उसकी मौत के समय भी आयेंगे ?"

हुज़ूर महाराजजी ने फ़रमाया, "बेशक। क्योंकि गुरु का मतलब ही दया-मेहर होता है। शिष्य को नामदान देते समय सतगुरु यह ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ले लेते हैं। शिष्य ने अपना कर्तव्य निभाया है या नहीं इसका ख़याल न करके वे अपना वायदा ज़रूर पूरा करेंगे। इस पर तभी विश्वास होता है जब कि मनुष्य अपने अन्दर जाकर सतगुरु की कार्य-प्रणाली देख ले। मैंने ऐसी कई माताएँ देखी हैं जिनका मौत के दिन अपने नन्हें बच्चों से मोह छूट गया और उन्हें दूध पिलाने से इनकार कर दिया। जब उनकी सास बच्चों को उनके पास लाई तो उन्होंने बच्चों को गोद में लेने से इनकार कर दिया और कहा कि अब तो वे सतगुरु की गोद में हैं[1]।

कल्लू नंगल में एक सोहनसिंह नाम का सत्संगी था। ढलती उम्र में उसके बच्चे हुए थे और बच्चों में उसका इतना ज़्यादा मोह था कि दोस्त उसे चिढ़ाया करते थे कि उसकी मौत के समय उसकी गर्दन उसकी औलाद की बाँहों में होगी और पैर यमदूतों के हाथों में। लेकिन जब उसका संसार से बिदा होने का समय आया तो कुछ दिन पहले से ही उसे अन्तर में इतना रस और आनन्द आने लगा कि उसने अपने बच्चों को डराने के लिये एक नंगी तलवार अपने पास रख ली और कहता रहता कि जो उसके पास आयेगा उसे क़त्ल कर दिया जायेगा।[2] नाम सब सांसारिक मोह को दूर कर देता है और हृदय की सब मलिनताओं को हटा देता है। मौत के समय सतगुरु शिष्य का ध्यान सब तरफ़ से हटा कर अन्तर में लगा देता है।"

प्रोफ़ेसर ने पूछा, "हुज़ूर, गुरु का मिलना भी तो बहुत मुश्किल है।"

---

1. इस प्रकार गुरु मौत की तकलीफ़ को कम कर देते हैं और मरते समय सत्संगी पूरी तरह से अनासक्त होकर जाने में प्रसन्न होता है।

2. वह तलवार का उपयोग तो नहीं करता। उसने सिर्फ़ बच्चों को दूर रखने के लिये तलवार रखी थी ताकि वे उसे अन्तिम समय में परेशान न करें और उनको पिता के जाने का बहुत रंज न हो।

महाराजजी ने जवाब दिया, "हाँ, यह सच है ! गुरु कभी नहीं कहता कि वह गुरु है। वह तो कहता है कि आप मुझे भाई, मित्र, शिक्षक, पुत्र या सेवक कुछ भी समझ लें, पर मेरा कहना मानें और अन्तर में प्रवेश करें। जब आप इसमें कामयाब हो जायेंगे तो आप खुद देख लेंगे कि गुरु का असली रूप और उसका सामर्थ्य क्या है। तब आप उन्हें जो इच्छा हो कह कर पुकार सकते हैं। किसी सन्त ने आज तक दावा नहीं किया कि वह गुरु है। वे हमेशा अपने आप को सेवक और दास कहते हैं। गुरु नानक और कबीर साहिब ने हमेशा अपने आप को दास ही कहा।

गुरु कभी किसी से एक पाई भी नहीं लेता, अगर लेता है तो वह गुरु नहीं, भिखारी होता है। गुरु दाता होता है, मँगता नहीं। वह देने को आता है, लेने को नहीं। सन्त हमेशा अपनी मेहनत की, ईमानदारी की कमाई खाते हैं। वे मज़दूरी करेंगे, दुकानदारी करेंगे या खेती करेंगे, लेकिन दूसरों के दान का आसरा न लेंगे और न दूसरों के सिर पर बोझ बन कर रहेंगे। आप उनके जीवन का इतिहास पढ़ कर देख लीजिए। कबीर साहिब के शिष्यों में राजा, महाराजा और बादशाह भी थे, लेकिन ज़िन्दगी-भर वे एक ग़रीब जुलाहे का काम करते रहे। उनके घर में केवल दो खाट थीं। वे उन्हें अपने घर आये साधुओं को दे दिया करते थे और खुद परिवार सहित ज़मीन पर ही रात काट लिया करते थे। घर में खाने की हमेशा कमी रहती थी। जो भी होता था उसे वे साधुओं को खिला देते थे और खुद मुट्ठी-भर चनों पर दिन गुज़ार लिया करते थे। कबीर साहिब के जीवन की यह तस्वीर हमें उनकी पत्नी माई लोई के एक गीत में मिलती है।

रविदास जी बड़े ऊँचे सन्त थे। वे रानी मीराबाई और राजा पीपा के गुरु थे। लेकिन ज़िन्दगी-भर मोची का काम करते रहे और लोगों की जूतियाँ गाँठ-गाँठ कर रोज़ी कमाते रहे। सन्त नामदेव ने कपड़ों की छपाई करके अपना गुज़ारा किया। गुरु नानक ने खेती की। मेरे सतगुरु बाबा जैमलसिंह जी फ़ौज में सिपाही थे और अपनी मामूली-सी पेन्शन पर उन्होंने अपनी बाक़ी ज़िन्दगी बिताई और संगत की सेवा की। मालिक का भक्त हमेशा अपनी सच्ची मेहनत का खाना खायेगा। ग़लत तरीक़ों से कमाया हुआ खाना मन को अपवित्र बनाता है और अभ्यास में बड़ी रुकावटें डालता है।

वह मनुष्य कितना भाग्यशाली है जिसे क़िस्मत किसी ऐसे सन्त से मिला देती है। गुरु हमारी सँभाल करता है, हमारी ज़िन्दगी की बागडोर अपने हाथ में ले लेता है। हमारा उससे ज़्यादा नज़दीकी और प्यारा रिश्तेदार या मित्र और कौन हो सकता है? इसीलिये गुरु अर्जनदेव पूजा और प्यार के लिये पहला स्थान गुरु को देते हैं। लेकिन गुरु अपनी पूजा नहीं कराते और न उन्हें हमारे प्रेम की ज़रूरत है। उनका अपना प्यार मालिक के साथ लगा हुआ है। वे कहते हैं कि तुम भी मालिक के साथ प्यार करो। तो फिर गुरु से प्यार करना आवश्यक क्यों है ? केवल इसलिये कि हमारा ख़याल सब ओर से हट कर परमार्थ की ओर लग जाये।

जब एक पानी की टंकी के पानी को, जो कई टोंटियों या नलों में से बह रहा है, सब नल बन्द करके केवल एक नल में से निकाला जाता है तो उसका बहाव कितना तेज़ हो जाता है? इसी तरह हमारी आत्मा की धारा आँख, कान, नाक और दूसरे द्वारों के ज़रिये निकल कर स्त्री, पुत्र, पुत्री, माँ-बाप, दूसरे रिश्तेदारों, दोस्तों तथा संसार के अन्य सजीव-निर्जीव पदार्थों में लिप्त हो रही है। जब अपने प्यार को इन सबसे हटा कर केवल एक सतगुरु की ओर लगा दिया जाये तो उसमें कितनी ताक़त और शक्ति पैदा हो जाती है और वह क्या-कुछ नहीं कर सकता इसका आप अन्दाज़ा भी नहीं लगा सकते।

प्रोफ़ेसर ने पूछा, "हुज़ूर, गुरु के लिये यह प्यार कैसे पैदा किया जाता है ?"

हुज़ूर ने फ़रमाया, "मुझे ख़ुशी है कि आपने यह सवाल पूछा। सच्चा प्यार और भक्ति क्या है ? गुरु अर्जनदेव जी इसी शब्द में इसका जवाब देते हैं, 'सतगुरु बचन कमावणे सचा एहु वीचारु' यानी सतगुरु जो भी हुक्म देते हैं, उसका अटूट विश्वास के साथ पालन करना ही सतगुरु से सच्चा प्यार करना है। सतगुरु हुक्म देते हैं कि शराब-कबाब से दूर रहो, एक सच्चा और नेक जीवन बिताओ, किसी की सम्पत्ति न चुराओ, काम-क्रोध को त्यागो और विषय-विकारों से मन को हटा कर अन्दर रूहानी मण्डलों पर चढ़ो। यही आपकी ज़िन्दगी का असली उद्देश्य है। गुरु से प्यार करना परमात्मा से प्यार करना है। सतगुरु के प्यार को मुकम्मल करो। सतगुरु परमात्मा के प्यार से परिपूर्ण है इसलिये जब हम सतगुरु से प्यार करेंगे तो परमात्मा का प्यार हमारे अन्दर अपने आप आ

जायेगा। परमात्मा में लीन होने का एक यही रास्ता है। सतगुरु का प्रेम परमात्मा की प्राप्ति की पहली पौड़ी है।

ग्रन्थों-पोथियों के पाठ, तीर्थ-यात्रा या गंगा-स्नान से आज तक किसी को परमात्मा नहीं मिला। रावण केवल चारों वेदों का विद्वान ही नहीं था बल्कि उनका टीकाकार पण्डित भी था। वेदों पर की गई उसकी टीका सर्वश्रेष्ठ टीका मानी जाती थी। किन्तु उसका चरित्र कैसा था ? आप सब जानते हैं कि भारत के हर गाँव, हर शहर में हर वर्ष उसका पुतला क्यों जलाया जाता है ? परमात्मा ग्रन्थों-पोथियों में नहीं है वह तो अपने अन्दर है। ग्रन्थ तो केवल उसकी महिमा करते हैं। केवल एक देह-स्वरूप गुरु ही उसे प्राप्त करने का रास्ता बता सकता है। किसी कामिल मुर्शिद या पूर्ण गुरु को ढूँढ़ो और उससे अन्दर जाने का भेद प्राप्त करो। जब आप आँखों के पीछे तीसरे तिल पर पहुँचेंगे तो वहाँ सतगुरु आपके इन्तिज़ार में खड़ा मिलेगा। उसके बाद वह आपका साथ कभी नहीं छोड़ेगा।

हुज़ूर महाराजजी फ़रमाते चले गये, "आप चाहे यूरोप, अमेरिका, अफ़्रीका या और किसी देश में चले जायें, सतगुरु हर समय और हर स्थान पर आपके साथ हैं। आप अपने कमरे में बैठे हैं, दरवाज़े बन्द हैं, पर आप सतगुरु को याद करते हैं तो वे आपके सामने आ जाते हैं। आप उनसे कोई बात पूछें, वे जवाब देंगे। वे हर मुसीबत में आपकी मदद करेंगे, हर कष्ट और कठिनाई में आप को रास्ता दिखायेंगे। नदियों-पहाड़ों में, जंगलों और समुद्रों में वे आपकी रक्षा और हिफ़ाज़त करेंगे। भक्ति का यही सच्चा मार्ग है। बाक़ी सब मायाजाल है। ज़रा शान्तिपूर्वक विचार करो, इस संसार में ऐसी कौन-सी पूँजी है जो हमारे बटोरने लायक़ है? केवल नाम की पूँजी ही इस दुनिया में और इसके बाद हमारे काम आयेगी।"

प्रोफ़ेसर ने पूछा, "नाम से आपका क्या मतलब है?"

हुज़ूर महाराजजी ने जवाब दिया, "नाम का लफ़्ज़ी मतलब है परमात्मा का कोई पवित्र नाम। परन्तु सन्तों का 'नाम' कोई लिखा, पढ़ा या बोला जा सकने वाला लफ़्ज़ या नाम नहीं है। उनका नाम अंग्रेज़ी, फ़ारसी, संस्कृत या किसी भी भाषा में न लिखा जा सकता है, न बोला जा सकता है। उसका भाषाओं से कोई सम्बन्ध ही नहीं है। उसे लफ़्ज़ों के द्वारा प्रगट नहीं किया जा सकता, न ज़बान से बोला जा सकता है।

अगर परमात्मा का नाम किसी एक देश की भाषा में होता तो यह तो दूसरे देशों के साथ बड़ा भारी अन्याय होता। उसका नाम तो सबके लिये एक है और समान है। वह न लिखा जा सकता है न बोला जा सकता है।

इस नाम को ऋषि-मुनियों ने आकाशवाणी, वेदों ने नाद और उपनिषदों ने उद्गीत कहा है। मुसलमान सन्तों ने इसे निदा-ए-आसमानी या सुलतान-उल-अज़कार (नामों का बादशाह) और गुरु नानक ने 'शब्द', 'हुकम' या 'कीर्तन' कहा है। बाइबिल में इस नाम को 'वर्ड' या 'लोगॉस' कहा गया है।

इसी नाम ने शुरू में संसार की रचना की और यही इसकी सँभाल और इसका पालन कर रहा है। गुरु नानक कहते हैं, 'पृथ्वी, आकाश, सूर्य और प्रकाश सब इसी शब्द ने बनाये हैं।' क्या कोई लफ़्ज़ संसार की रचना कर सकते हैं? गुरु नानक फ़रमाते हैं, 'तनु मनु खोजे ता नाउ पाए।' इस नाम का भेद तभी मिल सकता है जब कि मनुष्य अपने शरीर के अन्दर प्रवेश करे और अपने मन में इसे खोजे। प्रसिद्ध मुसलमान सन्त शम्स तब्रेज़ इस नाम के बारे में कहते हैं, 'हर वक़्त मेरे कानों में एक निराली मधुर धुन आसमान से आ रही है। इसे किसी बिरले भाग्यशाली के सिवाय और कोई नहीं सुन सकता।'

यह सही है कि कोई बड़ा भाग्यशाली ही इस नाम को सुन सकता है। यह नाम है सबके अन्दर; चोरों, ठगों और डाकुओं के अन्दर भी है। पर आँखों के पीछे पर्दा लगा कर हमारी चेतन-धारा को बाहर निकाला हुआ है। इसलिये मनुष्य प्रभु की इस पुकार को नहीं सुन सकता। अगर ख़ुशक़िस्मती से मनुष्य को पूरा गुरु मिल जाये, उनसे नाम का भेद मिल जाये और वे कृपा करें तो उसके आन्तरिक आँख-कान खुल जाते हैं और वह ख़ुदा की आवाज़ (शब्द-धुन) को सुनने लग जाता है। अगर संसार के सब आलिम फ़ाज़िल या विद्वान उस 'नाम' का अध्ययन कर लें जो सब धर्मों की तह में है, तो कोई झगड़ा-फ़साद ही न रहे।

ये मज़हबी झगड़े, ये धार्मिक विवाद क्यों हैं? विचार न करने के कारण, ना-वाक़फ़ियत के कारण, अज्ञानता के कारण। जब कोई सन्त या पैग़म्बर आते हैं तो वे सीधी-सादी भाषा में सनातन-सत्य की ओर हमारा ध्यान खींचते हैं। वे कोई नया मज़हब चलाने नहीं आते, लेकिन उनके जाने के बाद लोग अपने आप को मज़हबों व जातियों में बाँट लेते

हैं। पैग़म्बर मुहम्मद साहिब एक थे और क़ुरान शरीफ़ भी एक ही है, पर आज उनके मानने वालों के 72 फ़िरक़े बन हुए हैं। गुरु नानक का विचार कभी धर्म बनाने का नहीं था, किन्तु आज सिक्खों के 22 पंथ चल रहे हैं। सन्त कहते हैं, 'इन बाहर की निरर्थक बातों की चिन्ता न करो। सच्चा नाम ही एक ऐसी वस्तु है जिसकी चिन्ता करनी चाहिये। वह कहीं बाहर नहीं, तुम्हारे अन्दर ही मौजूद है। उस नाम या शब्द को पकड़ कर उसके द्वारा चुपचाप अपने असली घर पहुँच जाओ। पर इसके लिये तुम्हें किसी कामिल मुर्शिद या पूर्ण गुरु की तलाश करनी पड़ेगी।"

हुज़ूर महाराजजी फ़रमाते चले गये, "मुश्किल तो यह है कि दुनिया में सैकड़ों तरह के गुरु हैं। योगी, वेदान्ती, संन्यासी, उदासी, वैरागी, निर्मल-पंथी, निहंग, नक़्शबन्दी, पास-अन-फ़ास, बहाई तथा कई और। पूर्ण गुरु की पहचान कैसे हो और इसका फ़ैसला कैसे किया जाये कि कौन-सा गुरु पूरा है? इसका जवाब यही है कि परमात्मा ख़ुद ही सच्चे खोजी को पूरे गुरु से मिलाने में मदद करता है। यह सब उसी के हाथ में है। हमारा आदर्श तो उस सबसे ऊँचे आत्मिक मण्डल में पहुँचने का होना चाहिये जो प्रलय-महाप्रलय की पहुँच से परे है। हमें ऐसे गुरु को ढूँढ़ना चाहिये जो हमें वहाँ पहुँचा सके। संसार में पूर्ण गुरु बहुत कम हैं, लेकिन सच्चे खोजी को अवश्य मिलते हैं। वे हिन्दुओं में भी हैं और मुसलमानों में भी, पर हैं बहुत कम। सच्चे साधु का मिलाप बड़े ही सौभाग्य की बात है।"

इस जगह राय रोशनलाल ने पूछा कि गुरु नानक ने साधुओं की इतनी ज़्यादा प्रशंसा क्यों की है? वे तो यहाँ तक फ़रमा गये हैं कि हमें साधु के ऊपर अपने जीवन व प्राण ही न्योछावर कर देना चाहिये और उसके चरणों की धूल में स्नान करना चाहिये, उसके चरणों को धोकर पीना चाहिये, वग़ैरह-वग़ैरह।

हुज़ूर ने उत्तर दिया, "यह सच है। लेकिन आप साधु किसे कहेंगे? गेरुआ वस्त्र धारण कर भीख माँगने वाले फ़क़ीर साधु नहीं होते। पिछली जनगणना के अनुसार हिन्दुस्तान में पचास लाख साधु हैं। पर जो असली साधु हैं, जो अन्दर जाते हैं, जो रूहानी मंज़िलों की रसाई प्राप्त कर चुके हैं, वे बहुत कम हैं। मैं हिन्दुस्तान के हर समाज में गया हूँ, किन्तु मुझे पहुँची हुई आत्माएँ बहुत कम मिली हैं।"

हुज़ूर ने आगे समझाया, "असली साधु वह है जिसने पाँचों वासनाओं — काम, क्रोध, मोह, लोभ व अहंकार को जीत लिया है, जिसने मन को वश में करके सहस्रार-चक्र, ब्रह्म और पारब्रह्म को पार कर लिया है और जो सतलोक के मण्डल में पहुँच गया है। जिस प्रकार बूँद समुद्र में मिल कर बूँद नहीं रहती, समुद्र ही बन जाती है, इसी प्रकार मालिक रूपी समुद्र में मिल कर गुरु की आत्मा भी अपना अलग अस्तित्व नहीं रखती। परमात्मा से मिल कर वह परमात्मा हो जाती है। बाहर से सतगुरु साधारण इनसान दिखाई देता है, किन्तु उसके आन्तरिक पद और सामर्थ्य का कोई अन्दाज़ ही नहीं लगा सकता। जो अन्दर जाते हैं केवल वे ही जानते हैं। ऐसे पूर्ण पुरुषों के लिये मौलाना रूम फ़रमाते हैं, 'वे परमात्मा के प्यारे पुत्र होते हैं और उन्हें परमात्मा से इतनी शक्ति प्राप्त है कि वे भाग्य के चले हुए तीर तक को मार्ग में से लौटा सकते हैं।' गुरु अर्जनदेव कहते हैं, 'कोई भी चीज़ उनकी ताक़त से बाहर नहीं है। वे जो चाहे कर सकते हैं।' उन सन्तों की महिमा का कोई क्या बखान कर सकता है जो कि सबसे ऊँचे मण्डलों में जाते हैं या जो असल में सर्वोच्च मण्डल से आते हैं।"

नौजवान पादरी ने सवाल किया, "क्या 'सन्त' और अंग्रेज़ी के 'सेण्ट' का एक ही अर्थ है?"

महाराजजी ने पूछा, "आप 'सेण्ट' किसे कहते हैं?"

मिशनरी ने जवाब दिया, "जिन्होंने अभ्यास के द्वारा या ईश्वर की कृपा से अलौकिक शक्तियाँ प्राप्त कीं, जिन्होंने चमत्कार दिखाये तथा जिन्हें ईसा तथा मेरी के दिव्य दर्शन हुए, ऐसे लोगों को क्रिश्चियन चर्च ने सेण्ट घोषित किया है।"

हुज़ूर महाराजजी ने फ़रमाया, "सन्त, साधु, ज्ञानी और सिख ये सब दरअसल में सन्तमत रूपी यूनिवर्सिटी की डिग्रियाँ होती हैं — जैसे बी.ए., एम.ए., पी-एच.डी. वग़ैरह होती हैं। या आप यह भी कह सकते हैं कि ये आध्यात्मिक चढ़ाई के दर्जे हैं। जैसा मैं पहले कह चुका हूँ, शरीर में निचले छः चक्र होते हैं और तीसरे तिल से ऊपर छः कँवल होते हैं। जो नीचे के छः चक्रों को पार कर लेते हैं वे पूर्ण योगी कहलाते हैं और जो ऊपर के पहले मण्डल — सहस्रार — पर पहुँच जाते हैं वे सिख या सच्चे शिष्य कहलाते हैं। जो ब्रह्म देश में पहुँच जाते हैं वे ब्रह्म-ज्ञानी या योगीश्वर कहलाते हैं। जो पारब्रह्म या दसवें द्वार तक पहुँच जाते हैं, वे

साधु कहलाते हैं और जो धुर-धाम, सतलोक पहुँच जाते हैं, सन्त कहलाते हैं और इसके भी ऊपर की दो मंज़िलों को पार करके जो सबसे ऊँची मंज़िल अनामी देश में पहुँच जाते हैं, वे परम सन्त कहलाते हैं। जीवों को वापस अपने निज घर ले जाने के लिये सन्त इसी देश से आते हैं।"

नौजवान बैरिस्टर ने पूछा, "परमात्मा ने इतने जटिल मण्डलों और चक्रों को बनाने की तकलीफ़ क्यों की? और दरअसल में उसने यह दुनिया ही क्यों बनाई जो इतने दुःख-दर्द व शोक-सन्ताप से भरी हुई है?"

हुज़ूर महाराजजी मुसकराये और बोले, "इसका सबसे अच्छा जवाब मैं एक पुराने महात्मा के वचनों में दूँगा, 'उसी से पूछो जिसने यह दुनिया बनाई है। जिस वक़्त उसने सृष्टि की, मैं उसके साथ नहीं था'।"

बैरिस्टर, "तो क्या मैं यह समझूँ कि कोई इसका जवाब जानता ही नहीं?"

महाराजजी ने जवाब दिया, "नहीं, इस सबमें कोई न कोई उद्देश्य ज़रूर था। लेकिन कुछ चीज़ें स्वयं देख कर, अनुभव के द्वारा ही जानी जा सकती हैं, बहस व तर्क के द्वारा नहीं। इसमें मनुष्य की बुद्धि और ज्ञान ज़्यादा मदद नहीं कर सकते, उनका दायरा बहुत सीमित है। इनको छोड़ हमें आन्तरिक दृष्टि का सहारा लेना पड़ेगा, आत्मा की उस आँख को खोलना पड़ेगा जो सूक्ष्म व चेतन को देख सके और इस आँख को खोलने के लिये हमें पूर्ण गुरु की मदद की ज़रूरत है।"

"तब परमात्मा ने हमें बुद्धि क्यों प्रदान की?" बैरिस्टर ने सवाल किया।

उत्तर में हुज़ूर ने फ़रमाया, "उसने हमें संसार का काम-काज करने के लिये बुद्धि दी। पर उसके आगे हमारी बुद्धि काम नहीं देती। और असल में हमारी बुद्धि है ही क्या? यह तो इस जड़ संसार में जड़ इन्द्रियों के द्वारा प्राप्त हमारे अनुभवों का सार या फल है। बुद्धि अलग-अलग मनुष्यों में अलग-अलग होती है। मनुष्य का वातावरण, उसकी ज़िन्दगी के हालात, उसकी शिक्षा-दीक्षा आदि का उसकी बुद्धि को बनाने में बड़ा हाथ होता है। और इसीलिये हर मनुष्य के ज्ञान का फल भिन्न होता है। अमेरिका-निवासी के सोचने का ढंग एक अफ़्रीका के हब्शी के सोचने के ढंग से अलग होगा। एक अंग्रेज़ और एक जर्मन के विचार उन्हें अलग-अलग नतीजों पर पहुँचाते हैं, तो एक जापानी की

दलीलें एक रूसी की दलीलों से भिन्न होंगीं। काम या क्रोध में हमारे विचार वैसे नहीं हो सकते जैसे कि शान्त वातावरण में होते हैं। बुद्धि हमेशा मनुष्य की आयु और उसकी मनोवृत्तियों के अनुसार बदलती रहती है। बचपन में बुद्धि कुछ और होती है तो जवानी में कुछ और, ग़रीबी में कुछ तो अमीरी में कुछ और ही। जब बुद्धि का यह पैमाना या माप-दण्ड हमेशा बदलता रहता है तो इसके माप पर क्या विश्वास किया जा सकता है?"

नौजवान बैरिस्टर ने पूछा, "क्या तर्क-वितर्क करना आत्मा का काम नहीं है ?"

महाराजजी ने कहा, "नहीं, यह हमारे दिमाग़ का काम है। हमारा दिमाग़ केवल उन्हीं चीज़ों को समझ सकता है जिन्हें कि इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण किया जा सकता है। उस अगम को समझना इसके बूते के बाहर है। परमात्मा और उसकी लीला को तो केवल आत्मा ही समझ सकती है। आत्मा तो बिलकुल साफ़-साफ़ देखती है, और बिना तर्क के सहारे समझती है।"

"ये सब बड़ी अजीब बातें हैं", बैरिस्टर बोल उठा।

हुज़ूर ने कहा, "हमारी बुद्धि की पहुँच से परे और भी बहुत-सी अनोखी बातें हैं। यह केवल सिद्धान्त और विश्वास का मामला नहीं है, यह तो ऐसा ठोस सत्य है जिसे अन्दर की आँखों से देखा और परखा जा सकता है। परमात्मा ने इस तरह की रचना क्यों की, यह तो मैं नहीं बतला सकता, लेकिन यदि किसी को अन्दर जाकर स्वयं देखने व अनुभव करने वाले सन्तों-महात्माओं की शहादत या साक्षी पर भरोसा नहीं है तो वह ख़ुद अन्दर जाकर इन बातों की सच्चाई मालूम कर सकता है।"

इस सिलसिले में उपस्थित लोगों में से किसी ने कहा कि संस्कृत वर्णमाला के 48 अक्षर निचले छः चक्रों के कमलों की 48 पंखुड़ियों से निकले हैं। मालूम पड़ता है कि भारत के ऋषियों ने ये अक्षर वहीं से ग्रहण किये हैं और इसीलिये लोग संस्कृत को देववाणी कहते हैं। इन चक्रों पर पहुँचे हुए महात्माओं ने भी इस बात की ताईद की है। यह बात 'तज़करात-उल-गौसिया' से मालूम की जा सकती है जिसमें एक प्रसिद्ध मुसलमान महात्मा अपने अनुभवों का वर्णन करते हैं। यह ऐसा क्यों है, यह तो केवल इनका विधाता ही जानता है।

मिशनरी प्रोफ़ेसर बोल उठा, "ख़ूब, यह तो अजीब बात है।"

हुज़ूर महाराजजी बोले, "परमात्मा की सृष्टि में बहुत-सी अद्भुत चीज़ें हैं।"

नौजवान बैरिस्टर ने पूछा, "लेकिन क्या यह सब भ्रम-जाल, आत्म-सम्मोहन या ख़याली बातें नहीं हैं? इनसान अपने अन्दर वही नज़ारे देख लेता है जो कि उससे कह दिये जाते हैं कि अन्दर हैं।"

हुज़ूर महाराजजी ने कहा, "बेशक यह हो सकता था अगर ये अनुभव एक या दो व्यक्तियों के ही होते। लेकिन अन्दर जाने वाले अलग-अलग देशों व धर्मों के लोगों ने अलग-अलग युगों में भी अन्तर में एक ही अनुभव किया है। फ़ारस के मुसलमान सन्तों ने और चीन के महात्माओं ने आन्तरिक अनुभवों का समान वर्णन किया है जब कि उन्हें न तो हिन्दू शास्त्रों का ज्ञान था और न ही उन्होंने कभी हिन्दू महात्माओं के दर्शन किये थे। दीक्षा या नामदान के समय सतगुरु आन्तरिक रूहानी सफ़र की ख़ास-ख़ास बातें थोड़े में समझा देते हैं। किन्तु आन्तरिक सफ़र तय करने वाले सब शिष्य अपने-अपने गुरुओं को अन्दर की छोटी से छोटी बात का विस्तृत ब्यौरा देते हैं, और शिष्यों का यह वर्णन बिलकुल समान होता है। पर ये अन्दर की बातें शिष्य औरों से गुप्त रखते हैं। अन्दर के आत्मिक अनुभव उतने ही सच्चे और वास्तविक हैं जितनी कि इस बाहरी जड़ दुनिया की वास्तविकताएँ।"

बैरिस्टर ने पूछा, "लेकिन हुज़ूर, क्या सचमुच परमात्मा है? या यह भोले-भाले मनुष्यों के साथ एक अच्छा ख़ासा मज़ाक़ ही है? परमात्मा की ज़रूरत ही क्या है? क्या उसके बिना हमारा काम नहीं चल सकता?"

हुज़ूर महाराजजी ने उत्तर दिया, "जैसा कि मैं पहले बता चुका हूँ, कुछ चीज़ें ऐसी हैं जो बुद्धि से परे हैं और हम उन्हें तर्क-वितर्क के द्वारा सिद्ध नहीं कर सकते। इसी तरह परमात्मा हमारी बुद्धि, मन और इन्द्रियों की पहुँच से परे है। वेदों के ज्ञाता ऋषियों ने, ग्रीस और रोम के पुराने दार्शनिकों ने, चीन के महात्माओं ने, अरब और फ़ारस के मध्य-कालीन सन्तों ने आत्मा और परमात्मा के बारे में वैज्ञानिक खोज और आध्यात्मिक छानबीन की है और उन सबने एक आवाज़ से यही एलान किया है कि परमात्मा है और इस सृष्टि का वही सिरजनहार है। यह संसार बेसहारा नहीं है। किन्तु वह मालिक अगम (मन, बुद्धि की

समझ से परे), अपार (इन्द्रियातीत), अगाध (इतना गहरा कि जिसे नापा न जा सके) अनन्त, अपरम्पार और अभेद है, उसे हम जान नहीं सकते।

आपकी बुद्धि व तर्क-शक्ति केवल शारीरिक इन्द्रियों द्वारा प्राप्त आपके अनुभवों का नतीजा अथवा सार है। या आप कह सकते हैं कि ये आपकी समझने की शक्ति और आपकी क्रियाओं के नतीजे हैं। यह बुद्धि व तर्क-शक्ति हमारे दुनियादारी के कामों में रास्ता दिखाने के लिये है और इसका दायरा सीमित है। यह उस मण्डल में कैसे काम दे सकती है जिसका इसे कभी कोई अनुभव ही नहीं हुआ हो और जहाँ के क़ायदे-क़ानून व कार्य-प्रणाली का इसे कोई ज्ञान ही नहीं।

इस सीमित बुद्धि से हम प्रत्यक्ष संसार की कई बातों को समझ नहीं पाते, फिर इन्द्रियों से परे के संसार की तो बात ही क्या है? मान लीजिए एक बच्चा अपनी माँ से पूछता है, 'माँ, मैं कैसे पैदा हुआ?' माँ जवाब जानती है लेकिन क्या बच्चा उसे समझ सकेगा? इसलिये वह हँस कर जवाब देती है, 'मैंने एक ख़ानाबदोश लड़की से तुझे एक पैसे में मोल लिया है'।"

नौजवान बैरिस्टर ने कहा, "लेकिन विज्ञान और मनुष्य की बुद्धि ने तो बहुत बड़े-बड़े काम कर दिखाये हैं।"

हुज़ूर ने फ़रमाया, "हाँ, मैं इससे इनकार नहीं करता। लेकिन उन्होंने केवल अपने दायरे में ही काम किये हैं। विज्ञान, बुद्धि और तर्क ज़्यादा से ज़्यादा अनुमान मात्र ही हैं, जो कभी सही हो सकते हैं तो कभी ग़लत। जब भी हम संसार को चलाने वाली सत्ता के गूढ़ भेदों को बुद्धि व तर्क के द्वारा प्रकट करने की कोशिश करते हैं तो हमारे नतीजों के ग़लत होने की बड़ी सम्भावना है। संसार के आदि और अन्त का निर्णय वैज्ञानिक नहीं कर सकते, न वे यह बता सकते हैं कि यह कैसे बनाया गया, क्यों बनाया गया, संसार में बुराइयाँ क्यों हैं और कहाँ से आईं। अगर आप केवल अपने बुद्धि-बल पर निर्भर रहेंगे तो आप परमात्मा का सच्चा ज्ञान प्राप्त करने में सफल नहीं हो सकेंगे। बुद्धि, विचार और तर्क से परे एक ऐसा भी मार्ग है जिस पर चल कर हम ऊँची मंज़िलें तय करके मालिक का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

सृष्टि, आत्मा, परमात्मा, कर्मों का क़ानून, चौरासी का चक्र, जन्म-मरण के बाद का जीवन आदि ऐसी गूढ़ बातें हैं जिन पर एक बार तो मनुष्य को सन्तों-महात्माओं की शहादत के अनुसार विश्वास करना

ही पड़ेगा। बाल की खाल निकालते रहने से हम कहीं नहीं पहुँच सकते। मनुष्य को खुद अपने आप इसका अनुभव व ज्ञान प्राप्त करना चाहिये और इस अनुभव को प्राप्त करने का मार्ग भी है। आप अपनी आन्तरिक आँख, आत्मा की आँख खोलें। हमारे अन्दर ऐसी आँख है और वह खोली जा सकती है। गुरु अर्जनदेव फ़रमाते हैं, 'वे आँखें भिन्न हैं जिनसे मालिक को देखा जा सकता है।'[1]

सब सन्त यही एलान करते हैं कि उन्होंने अपनी आँखों से मालिक को देखा है। सन्त दादू जी कहते हैं कि दादू ने उसे आँखों से देखा है, और सब तो केवल सुनी-सुनाई बात कहते हैं। जब काम, क्रोध, लोभ, लालच आदि जीत लिये गये तो मेरा मन क़ाबू में आ गया। मेरे अन्तर में अनहद शब्द गूँज उठा और मैंने अन्दर उस अमृत-रस का पान किया। तीसरे तिल में पहुँचने पर मुझे पूरा यक़ीन आ गया। अष्ट-दल-कमल में पहुँच कर मैंने वहाँ के मालिक का दर्शन किया। जैसे दूध में से घी तभी पाया जा सकता है जब कि दूध को जमा कर दही बनाया जाये और दही को मथ कर घी निकाला जाये। उसी प्रकार मैंने सही साधन के द्वारा प्यारे परमात्मा के हाथों आन्तरिक रस का प्याला पिया। यह अवस्था योग, ज्ञान या मुद्राओं की साधना से नहीं प्राप्त होती। यह गति तो कुछ और ही है। जब मैंने तन, मन तथा आत्मा को पूरे गुरु पर न्योछावर कर दिया तब मैंने अपने प्रीतम को आमने-सामने देखा। जिसने इस मार्ग को पहचान लिया, इस पर चल कर अन्दर आत्मिक अनुभव प्राप्त कर लिया, उसने अपना कार्य पूरा कर लिया, जन्म सफल कर लिया।"[2]

---

1. नानक से अखड़ीआ बिअंनि जिनी डिसंदो मा पिरी। (आ.ग्र.म. 1, पृ.1100)
2. दादू देखा दीदा सब कोई कहत शुनीदा ।
   हवा हिरस अंदर बस कीदा, तब यह दिल भया सीधा ।
   अनहद नाद गगन गढ़ गरजा, तब रस खाया अमीदा ॥
   सुखमन सुन्न सुरत महलन में, आया अजर अक़ीदा ।
   अष्ट कँवल दल दृग में दर्शन, पाया खुद खुदीदा ॥
   जैसे दूध दूध दधि माखन, बिन मथे भेद न घीदा ।
   ऐसे तत्त मत्त सत साधन, तब टुक नशा पिया पीदा ॥
   नहिं वह जोग ज्ञान मुद्रा तत्त, यह गत और पदीदा ।
   जो कोइ चीन्ह लीन्ह यह मारग, कारज हो गया जीदा ॥
   मुरशिद सत्त गगन गुरु लखिया, तन मन कीन उसीदा ।
   आशिक़ यार अधर लख पाया, हो गया दीदम दीदा ॥
   (सन्तों की बानी, पृ. 299-300)

हुज़ूर महाराजजी ने आगे फ़रमाया, "सच तो यह है कि जो परमात्मा के अस्तित्व में शंका करते हैं, उन्होंने कभी सही ढंग से और सही जगह पर उसकी खोज ही नहीं की। कबीर साहिब कहते हैं :

बस्तु कहीं ढूँढ़ै कहीं, केहि बिधि आवै हाथ ।
कहै कबीर तब पाइये, जब भेदी लीजे साथ ॥

(कबीर साखी-संग्रह, पृ.5)

इस जड़ संसार में इन स्थूल आँखों से हम केवल स्थूल चीज़ों व जड़ जगत को ही देख सकते हैं। इन आँखों से परमात्मा तथा रूहानी चीज़ें दिखाई नहीं दे सकतीं। सबसे पहले उस आँख को प्राप्त करो जो परमात्मा को देख सके। परमात्मा मन-बुद्धि का मज़मून नहीं। किसी न किसी वक़्त हम सबने अनुभव किया है कि संसार की गुत्थियों व उलझनों को समझने अथवा सुलझाने में बुद्धि की मदद पर भरोसा नहीं किया जा सकता। हम कई बार कह उठते हैं, 'भगवान जाने, हमारी समझ को क्या हो गया है ?' आत्मा और परमात्मा का विषय ही इतना बारीक और जटिल है कि मनुष्य की बुद्धि इस विषय को समझने में अपने आप को बिलकुल असमर्थ पाती है।

लेकिन एक बात मामूली से मामूली आदमी की समझ में भी आ सकती है कि यह सब विशाल रचना, सूर्य, चन्द्र, तारे, पृथ्वी, पर्वत, समुद्र और यह सम्पूर्ण संसार अपने आप नहीं बना है। कारण-कार्य के उसूल पर चलने वाले इस संसार में बिना किसी कारण के कोई कार्य नहीं हो सकता। हर कार्य का कोई न कोई कर्त्ता होता है। सृष्टि के इस अद्‌भुत कारख़ाने को देखिये तो सही। कितनी नियमपूर्वक इसकी लाखों मशीनें सही ढंग से अपना काम कर रही हैं। हर चीज़ इस कारख़ाने के बुद्धिमान मैनेजर द्वारा बनाये गये क़ायदे व क़ानून के अनुसार चल रही है। कभी किसी नियम का उल्लंघन नहीं होता। संसार को चलाने वाले उस दिव्य-शब्द के हुक्म के अनुसार सब काम हो रहा है। हर रोज़ सूर्य अपने नियत समय पर पूर्व में उगता है और दिन-भर दुनिया को रोशनी देता हुआ शाम को अपना कार्यभार चन्द्रमा को सौंप कर पश्चिम में छिप जाता है। उसके बाद झिलमिल तारों की ज्योति से नीला आकाश जगमगा उठता है। किस तरह पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती रहती है ताकि सूर्य का प्रकाश उसके हर हिस्से में पहुँच जाये। देखिये, असंख्य तारे और ग्रह किस प्रकार अपने-अपने मार्ग पर चल रहे हैं, वे अपने

मार्ग से इंच-भर भी इधर-उधर नहीं होते, न कभी आपस में टकराते हैं। आप कई बार सुनते हैं कि आपकी रेलगाड़ियाँ और जहाज़, जिन्हें आपके कुशल इंजीनियर बड़ी योग्यता से चला रहे हैं, आपस में टकरा जाते हैं। पर क्या कभी कोई तारा किसी अन्य तारे से टकराया है?

देखिये, धरती को उपजाऊ बनाने के लिये आकाश किस तरह ऊपर से पानी बरसाता है। किस तरह बादल दूर के समुद्रों से पानी लाते हैं और मौसमी हवाएँ उन्हें चारों ओर ले जाती हैं। नदी और झरने किस तरह ज़मीन को सींचते हैं। कैसे साग-सब्ज़ी और मधुर फल पैदा होते हैं। धरती कैसे अपने अन्दर से सुन्दर और महकते हुए फूल पैदा करती है। यह सब मनुष्य की बुद्धि को चक्कर में डाल देते हैं। यह संसार का विशाल कारख़ाना कितना सुन्दर और भव्य है और इसकी हर मशीन किस तरह नियमानुसार और सही ढंग से अपना काम कर रही है। क्या आप यह कहना चाहते हैं कि यह सारी मशीनरी बिना किसी इंजीनियर के चल रही है? नहीं, बेटा! ऐसा नहीं है। इसका एक इंजीनियर है, व्यवस्थापक है। लेकिन आप इस महान इंजीनियर की व्यवस्था को तभी देख व समझ पायेंगे जब आप सही मार्गदर्शक और सही पार-पत्र लेकर उसके ऑफ़िस में, उसके धाम में पहुँचेंगे।"

नौजवान बैरिस्टर ने प्रश्न किया, "क्या यह सब कुदरती क़ानून के अनुसार अपने आप नहीं हो रहा है?"

महाराजजी ने पूछा, "आप 'कुदरत' किसे कहते हैं और उसके क़ानून क्या हैं?"

बैरिस्टर ने कहा, "जैसे सूर्य की प्रकृति गर्मी व प्रकाश देना है और चन्द्रमा का स्वभाव है रात में शीतल चाँदनी फैलाना।"

हुज़ूर महाराजजी ने कहा, "ज़रा और आगे सोचिये, इन जड़-तत्त्वों के पुतलों को यह कुदरती ताक़त कहाँ से और कैसे प्राप्त हुई? चाँद और सूरज कैसे बने? सूरज ही गर्म क्यों है, चाँद और धरती क्यों नहीं? सर्दी और गर्मी कहाँ से आती है? सर्दी व गर्मी, प्रकाश व अन्धकार को बनाने का विचार कैसे आया? और कैसे उस विचार ने मूर्त-रूप लिया?"

बैरिस्टर ने स्वीकार किया कि सच ही ये सब चीज़ें दिमाग़ को चकरा देने वाली व उलझन भरी हैं।

महाराजजी ने समझाया, "नहीं, इसमें कोई भ्रम या उलझन नहीं है। उलझन तभी पैदा होती है जब हम चेतन आत्मिक मण्डलों की खोज में जड़ संसार के सिद्धान्तों को काम में लेते हैं। जड़-जगत और चेतन आत्मा दोनों पर एक से क़ानून लागू नहीं होते। आत्मा का भी एक विज्ञान है और उसे भी दूसरे विज्ञानों की तरह सीखना पड़ता है। संसार के मामूली विज्ञानों के ज्ञान की प्राप्ति में हमें 20-30 साल तक लगाने पड़ते हैं, और तब भी हम उनके भिन्न-भिन्न विभागों के अध्ययन को पूरा नहीं कर पाते हैं। हम उनमें पूरी कुशलता प्राप्त नहीं कर सकते। लेकिन आप देखेंगे कि लोग बिना आत्म-विज्ञान के अध्ययन के, आत्मा और परमात्मा को समझने व समझाने का दावा करते हैं, जब कि यह विज्ञान दूसरे विज्ञानों से कहीं अधिक कठिन है।"

"यह सच है", बैरिस्टर ने कहा।

हुज़ूर महाराजजी ने फ़रमाया, "मैं आपके विचार के लिये एक और बात बतलाता हूँ। मनुष्य के शरीर पर दृष्टि डालिये। पाँच तत्त्व — पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश — जो स्वभाव से एक-दूसरे के विरोधी हैं, मनुष्य-शरीर की रचना में कितनी कुशलतापूर्वक एक-दूसरे से मिला दिये गये हैं। पानी पृथ्वी को नष्ट कर देता है, आग पानी को सुखा देती है, आग को हवा ख़त्म कर देती है और हवा को आकाश अपने में समेट लेता है। लेकिन ये पाँचों दुश्मन इस शरीर को चलाने के लिये बड़े प्यार से इकट्ठे हो जाते हैं। क्या हमारा शरीर अपने-आप चलता है ? आप देखेंगे कि मरने के बाद यह शरीर ज़मीन पर जैसा था वैसा ही पड़ा रहता है, लेकिन वह चीज़ इसके अन्दर से निकल जाती है जो इसे चलाती-फिराती थी। वह क्या चीज़ है जो इस शरीर को जीवित रखती है? आप कहेंगे कि प्राण। लेकिन प्राणों को कौन चलाता है? मन। मन को कौन चलायमान रखता है? आत्मा, हाँ आत्मा ही। और आत्मा शक्ति के एक ऐसे भण्डार से प्रकाश और जीवन प्राप्त करती है जिसका अदृश्य हाथ इन सब मशीनों को चलाता है। लेकिन उस भेद को जानने वाले बिरले महात्माओं के सिवाय और किसी को वह दिखाई नहीं देता। सब क्रियाएँ उस कर्त्ता से ही उत्पन्न होती हैं। बिना उसकी मरज़ी के संसार में एक पत्ता भी नहीं हिलता।"

बैरिस्टर बोला, "बहुत-बहुत शुक्रिया। हुज़ूर आप हर चीज़ को कितनी अच्छी तरह से सरल बना कर समझा देते हैं।"

हुज़ूर महाराजजी ने कहा, "पेड़ का एक-एक पत्ता तक परमात्मा के अस्तित्व की ओर इशारा करता है। क़ुदरत में आप को कितनी ख़ूबसूरती, कारीगरी, कला और चतुराई देखने को मिलती है। संसार में हर चीज़ कितनी व्यवस्था, नियम और कुशलता के साथ जमाई गई है। अगर कोई व्यवस्थापक नहीं है, तो यह सब व्यवस्था, सजावट और पूरी सावधानी से किया गया नियन्त्रण, यह सारी योजना कहाँ से आती है? ज़र्रा-ज़र्रा अपने सिरजनहार की ख़ूबसूरती प्रकट कर रहा है। लेकिन, जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ, परमात्मा की प्राप्ति के मार्ग में हमारी बुद्धि एक बहुत सीमित और तुच्छ साथी है, एक बिलकुल ही गया-बीता मार्गदर्शक है। इस मार्ग में हमें अपनी आन्तरिक दृष्टि का सहारा लेना पड़ता है। रूहानी अभ्यास के द्वारा हमें अपनी अन्दर की आँख को खोलना पड़ता है। जब परमात्मा अन्तर में दिखाई देने लगता है, तब वह बाहर कण-कण और पत्ते-पत्ते में नज़र आने लगता है। सन्त उसे हर वक़्त हर जगह देखते हैं। क्या यह आश्चर्य की बात नहीं कि दुनिया डॉक्टरों, वैज्ञानिकों, इंजीनियरों तथा उनकी खोज के नतीजों पर तो बिना किसी हिचकिचाहट के फ़ौरन विश्वास कर लेती है पर सन्तों पर विश्वास नहीं करती जो कि अपने निज अनुभवों के आधार पर कह रहे हैं कि हमने परमात्मा को अपने अन्तर में देखा है।"

राय रोशनलाल बीच में ही बोल पड़े, "महाराजजी, मुझसे यह कहे बिना रहा नहीं जाता कि आपका समझाने का तरीक़ा इतना बढ़िया है कि आप मुश्किल से मुश्किल विषय को भी बहुत सरल बना देते हैं।"

इसके बाद नौजवान बैरिस्टर ने पूछा, "हुज़ूर, आपके मार्ग की श्रेष्ठता या ख़ूबी क्या है? यानी दूसरे मतों की तुलना में आपके मार्ग की क्या विशेषताएँ हैं?"

महाराजजी ने फ़रमाया, "सिर्फ़ यही कि हम 'बाहर' से 'अन्दर' जाते हैं और अपने असली घर लौट जाते हैं, जब कि और लोग अन्दर से बाहर आते हैं जहाँ दुःख-दर्द और परेशानी के सिवाय और कुछ नहीं है। सन्त कहते हैं कि मालिक तुम्हारे अन्दर है। जीते-जी अन्दर जाकर उसे देखो। मरने के बाद की मुक्ति के वायदों पर भरोसा न करो। जीते-जी उसे पा लो। जो इनसान जीते-जी अनपढ़ है, वह मरने के बाद बी.ए., एम.ए. तो नहीं हो सकता। जो ज़िन्दगी-भर चोर रहा है,

वह मर कर महात्मा बनने की आशा कैसे कर सकता है ? मरने के बाद की मुक्ति की बातें निरर्थक हैं।"

बुज़ुर्ग पादरी ने पूछा, "क्या मैं कुछ सवाल पूछ सकता हूँ ?"

हुज़ूर ने कहा, "बड़ी खुशी के साथ।"

पादरी ने पूछा, "ईसा मसीह के बारे में आपकी क्या राय है ?"

हुज़ूर महाराजजी, "ईसा मसीह के बारे में मेरी राय ? 'मेरी राय' से आपका क्या मतलब है ?"

पादरी ने कहा, "उनके व्यक्तित्व, उनके धर्म के बारे में।"

हुज़ूर महाराजजी ने उत्तर दिया, "वे एक बहुत बड़े सिद्ध पुरुष थे। संसार में उनके धर्म ने कई बहुत बड़े आदमी पैदा किये हैं।"

पादरी ने कहा, "मेरा मतलब है, धार्मिक नेता के रूप में उनकी हैसियत क्या थी ?"

हुज़ूर ने कहा, "माफ़ कीजिये, हमें किसी के व्यक्तित्व के बारे में चर्चा नहीं करनी चाहिये, ख़ासकर धार्मिक नेताओं के व्यक्तित्व के बारे में। इससे कोई फ़ायदा नहीं। धार्मिक नेताओं को अधिक ऊँचा मानना, उनके शिष्यों की भावनाओं को चोट पहुँचाने से कहीं अच्छा है।"

पादरी ने पूछा, "क्या आपकी धारणा के अनुसार वे एक सन्त थे ?"

हुज़ूर ने उनसे कहा, "मुझे माफ़ ही करें। ऐसी चर्चाओं से कोई फ़ायदा नहीं। आप मुझे ग़लत न समझें।"

पादरी ने ज़िद की, "अगर कोई सच्चाई जानना चाहे तो..."

हुज़ूर ने कहा, "तो उसे यह छानबीन खुद करनी चाहिये। आपके देशवासी डॉ. जॉनसन ने सन्तमत पर बड़ी अच्छी किताब लिखी है — 'द पाथ ऑफ़ द मास्टर्ज़'। मैं उसकी एक प्रति आपको दूँगा। यह एक बड़ी विचारपूर्ण पुस्तक है और इसमें परमार्थ की जानकारी भी बहुत है। आप इसे सावधानी से और तर्क-पूर्ण दृष्टि से पढ़ें और फिर खुद सन्तमत की शिक्षाओं से ईसाई धर्म की तुलना कर लें। इसमें आपको अपने सब सवालों का जवाब मिल जायेगा।"

इस पर नौजवान पादरी प्रोफ़ेसर ने पूछा, "ईसा मसीह की ये शिक्षाएँ आज के युग में कहाँ तक व्यावहारिक हैं कि अगर कोई एक गाल पर चपत मारे तो दूसरा भी उसके सामने कर दो और अगर कोई

कमीज़ ले भागता है तो कोट भी उसे दे दो। असल में वे इन वचनों से हमें क्या समझाना चाहते थे?"

हुज़ूर ने जवाब दिया, "प्रभु ईसा मसीह इन शब्दों से वही समझाना चाहते थे जो इनका साफ़-साफ़ मतलब होता है। ये बातें चाहे आज के भौतिकवादी संसार को अजीब और अव्यावहारिक लगें, पर सत्य के सच्चे जिज्ञासु और मालिक के दीन भक्त को तो ये शब्द व्यावहारिक और हर समय, हर युग में सही सलाह मालूम देते हैं। सवाल तो यह है कि मनुष्य किसे अधिक महत्त्व देता है, इस दुनिया के सुखों को या उस लोक के आनन्द को।"

पादरी प्रोफ़ेसर ने कहा, "एक सवाल और। मनुष्य अपने मन के अन्दर आने वाले गन्दे विचारों को कैसे रोके?"

हुज़ूर ने जवाब में फ़रमाया, "यह बहुत अच्छा सवाल है, लेकिन इसके जवाब के लिये काफ़ी लम्बे सत्संगों की ज़रूरत है। संक्षेप में, अगर किसी को कोई गन्दा विचार सताता है तो उसे चाहिये कि उसको रोकने के लिये वह उसके विपरीत अच्छे विचार का ध्यान करे। अच्छी पुस्तकों का पढ़ना भी काफ़ी मदद देता है। हमारे भोजन का हमारे मन पर काफ़ी प्रभाव पड़ता है। हमारा भोजन सात्विक होना चाहिये न कि तामसिक व उत्तेजक। नवयुवकों को अपने खाने में ज़्यादा सावधानी बरतनी चाहिये। शराब और पाशविक भोजन जैसे मांस, मछली, अण्डे आदि को एक महीने के लिये ही छोड़ कर देखिये कि इसका क्या असर होता है। किन्तु सबसे बड़ी मदद सतगुरु से मिलती है। वे शैतान की कपटता-पूर्ण चालाकियों से अपने शिष्य को बचाने की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर लेते हैं।"

प्रोफ़ेसर बोला, "शुक्रिया। भोजन के बारे में आपका सुझाव दरअसल बहुत अच्छा है। मैं भी इसकी आज़माइश करके देखूँगा। हुज़ूर, सात्विक भोजन क्या होता है?"

हुज़ूर ने जवाब दिया, "सात्विक भोजन वह होता है जिससे मन को शान्ति, सन्तोष व शीतलता मिले। एक साधक परमार्थ के रास्ते पर चलते-चलते खान-पान का इतना जल्दी असर ग्रहण करने लगता है कि भूल से ज़रा से असात्विक भोजन के मिल जाने पर उसमें राजसिक (बेचैनी आदि) व तामसिक (आलस्य, भारीपन आदि) वृत्तियाँ आ जाती हैं।"

प्रोफ़ेसर ने पूछा, "क्या आप हमें इन भिन्न-भिन्न प्रकार के भोजनों के कुछ नाम बतायेंगे ?"

"हाँ, मैं आपको इसे खोल कर समझाता हूँ। सृष्टि की रचना में तीन गुण होते हैं — सत, रज और तम। सतोगुण सृष्टि (निर्माण) करता है, रजोगुण पालन-पोषण करता है और तमोगुण संहार या नाश करता है। आप सारे संसार में पग-पग पर इन गुणों को काम करते हुए पायेंगे। हिन्दू पुराणों में इन शक्तियों को ब्रह्मा, विष्णु और महेश कहा गया है। ब्रह्मा विधाता है। विष्णु पालक है — वह संसार का पोषण करते हैं। शिव संहारक हैं, प्रलय और नाश करने वाले हैं। यह त्रिमूर्ति ही सारे संसार का काम चलाती है। कण-कण में तीनों काम करते नज़र आयेंगे।

इन तीनों के मिश्रण में कमी-बेशी से पदार्थों के भाँति-भाँति के आकार और रूप बन जाते हैं। ये (तीन गुण) ही पदार्थों में रद्दोबदल करते रहते हैं। साधारणतया, इन तीनों में से कोई एक गुण हर पदार्थ में अधिक होता है और वही उस पदार्थ की विशेषता या ख़ासियत का कारण होता है। बाक़ी के दो गुण उस प्रधान गुण से दबे हुए रहते हैं और उनका प्रभाव ज़्यादा नहीं होता। इनकी विशेषताएँ हैं: (1) शान्ति, (2) गतिशीलता या चंचलता (3) शिथिलता। जिन मनुष्यों में सतोगुण अधिक होता है वे प्रसन्नचित्त, बुद्धिमान और शान्तिप्रिय होते हैं। राजसी स्वभाव के मनुष्य चंचल, मेहनती व अशान्त होते हैं। तामसी जीव आलसी, सुस्त और कम-अक़्ल होते हैं। जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ, हम जैसा अन्न खाते हैं, वैसी ही हमारे मन की प्रवृत्तियाँ हो जाती हैं। जो मांस आदि खायेंगे उनका स्वभाव खूँख़्वार और हिंसक बन जायेगा। सात्विक भोजन शीतलता, शान्ति और प्यार पैदा करता है। कुछ सात्विक पदार्थ हैं — गेहूँ, जौ, चावल, मूँग की दाल, मक्खन, शाक-सब्ज़ियाँ और आसानी से पचने वाले फल। सात्विक पदार्थ भी जब ज़रूरत से ज़्यादा खा लिये जाते हैं तो तामसिक असर करते हैं। भोजन की मात्रा न बहुत अधिक होनी चाहिये, न बहुत कम। भोजन क़ब्ज़ करने वाला नहीं होना चाहिये और न भारीपन या बेचैनी पैदा करने वाला। हर मनुष्य को खुद ध्यान रखना चाहिये कि उसे कौन-सा भोजन कितनी मात्रा में सधेगा। यूरोप निवासियों और अमेरिका वालों के लिये इतना ही बहुत है कि वे मांस, मछली, अण्डे आदि सामिष भोजन और शराब से दूर रहें।

परमार्थ के साधक को राजसिक और तामसिक भोजन से बचना चाहिये। इसकी वजह स्पष्ट है। मांस खाने से निर्दयता और क्रोध उत्पन्न होता है। बासी खाना मनुष्य को आलसी व सुस्त बनाता है। सीमित मात्रा में लिया गया सादा भोजन मनुष्य को निर्मल बुद्धि, शान्त, चुस्त व फुर्तीला रखता है। साधक (जिसने परमात्मा की प्राप्ति को अपना मुख्य उद्देश्य बना लिया है) को दिन में दो बार से अधिक भोजन नहीं करना चाहिये — एक बार ही करे तो ज़्यादा अच्छा है। पेट का ख़ूब भरा रहना आत्मिक अभ्यास में बहुत बड़ी बाधा है। यह एक ग़लत ख़याल है कि ज़्यादा खाने से ज़्यादा ताक़त आती है। सच्चाई तो यह है कि हम ज़रूरत से ज़्यादा खा लेते हैं। जिसमें जिह्वा के स्वाद की कमज़ोरी है, वह अच्छा अभ्यासी नहीं बन सकता।"

इस समय 6 बज चुके थे और सूर्य अस्त हो चुका था। हुज़ूर ने पादरियों की तरफ़ मुड़ कर पूछा, "आप लोगों का क्या प्रोग्राम है ? आप लाहौर कब लौटना चाहते हैं ?"

बुज़ुर्ग पादरी ने उत्तर दिया, "वैसे तो हम आज शाम को ही लौटना चाहते थे, लेकिन मैं 'गुरु' के बारे में कुछ और जानना चाहूँगा। यह विषय अभी मुझे अच्छी तरह समझ में नहीं आया है। लेकिन मुझे मालूम नहीं हम यहाँ कैसे ठहर सकेंगे, क्योंकि हमें कल सुबह 10 बजे तक लाहौर पहुँच जाना चाहिये।"

हुज़ूर महाराजजी ने फ़रमाया, "चिन्ता न करें, इसका इन्तिज़ाम हो सकेगा। अब आप जाकर एक-दो घण्टे आराम कर सकते हैं और खाने के बाद रात को 8 बजे मेरे पास बड़ी खुशी से आ सकते हैं।"

नौजवान बैरिस्टर ने कहा, "यह बड़ा अच्छा रहेगा। यह आपकी बड़ी दया है, गुरु जी।"

उसके बाद हुज़ूर महाराजजी ने राय बहादुर मुन्नालाल व उनके साथियों से फ़रमाया, "चाहें तो आप लोग भी आ सकते हैं।"

4. सतगुरु

शाम को ठीक 8 बजे सब हुज़ूर महाराजजी के कमरे में पहुँच गये।

हुज़ूर ने पादरी पार्टी के मुखिया से पूछा, "अब बतलाइये, आप गुरु के बारे में क्या जानना चाहते हैं ?"

नौजवान प्रोफ़ेसर बीच में ही बोल उठा, "हुज़ूर, सब-कुछ बतलाइये। इस बारे में हमारे विचार बहुत अस्पष्ट हैं।"

हुज़ूर ने कहा, "अच्छा, खुद सन्तों के शब्दों में आपको बतलाऊँगा कि इस बारे में उनके क्या विचार हैं और वे क्या कहते हैं।"

हुज़ूर महाराजजी ने मुझे भेज कर अपनी किताबों की अलमारी में से स्वामीजी महाराज का 'सारबचन' मँगवाया और उसे खोल कर उसमें से यह पद पढ़ने का हुक्म दिया, 'राधास्वामी धरा नर रूप जगत में गुरु होये जीव चिताये।' (सा.ब., पृ. 6)।

इसके बाद हुज़ूर ने पादरियों से कहा, "मैं पहले स्वामीजी महाराज के वचन से शुरू करता हूँ और बाद में उनके वचनों की ताईद में दूसरे सन्तों का हवाला दूँगा। स्वामीजी महाराज कहते हैं कि परमात्मा ने नर रूप धारण किया है और जीवों को चेताने के लिये गुरु के रूप में जगत में आये हैं। वे अपने शिष्यों को याद दिलाते हैं कि वे कुल-मालिक के अंश हैं। जो उनमें विश्वास करते हैं उन्हें वे वापस अपने असली घर ले जाते हैं।

पादरियों की तरफ़ मुड़ कर हुज़ूर बोले, "शायद इस पर विश्वास करना आप लोगों के लिये बहुत मुश्किल होगा। लेकिन बाइबिल में भी इसी प्रकार के कथन हैं, 'शब्द ने शरीर धारण किया', 'वर्ड' (शब्द) या 'लोगॉस' परमात्मा है, सबका बनाने वाला है। जॉन (गाथा 1) में आप खुद यह पढ़ कर देख सकते हैं। आप सब यह जानते ही हैं। यह कुछ इस तरह लिखा हुआ है, 'शुरू में शब्द था। शब्द परमात्मा के साथ था और शब्द ही परमात्मा था। सब-कुछ उसी के द्वारा बनाया गया और कोई भी

वस्तु ऐसी नहीं बनी जो उसके बिना बनी हो।' उस शब्द ने ही शरीर धारण किया और ईसा के रूप में मसीहा या उद्धारक बन कर संसार में आया। मेरा ख़याल है, यहाँ तक तो हम सब सहमत हैं।"

महाराजजी फ़रमाते चले गये, "पंजाब के एक मुसलमान सन्त बुल्लेशाह कहते हैं, 'मौला आदमी बन आया।' गुरु अर्जनदेव एलान करते हैं, हरि (परमात्मा) खुद आज रामदास (गुरु अर्जनदेव के गुरु) नाम धारण करके प्रकट हुआ है।[1]

मौलाना रूम तो और भी आगे बढ़ गये हैं। वे कहते हैं कि मुर्शिद में खुदा और पैग़म्बर दोनों ही समाये हुए हैं।

शम्स तब्रेज़ कहते हैं, 'उस शहंशाह ने अपने महल का दरवाज़ा बड़ी सख़्ती से बन्द कर दिया है और फिर वह खुद इनसान के जर्जर कपड़े (मनुष्य चोला) पहन कर उस दरवाज़े को खोलने नीचे चला आया।'

गुरु अर्जनदेव कहते हैं, 'गुरु कर्त्ता है, गुरु ही सब-कुछ करने वाला है, कोई भी बात गुरु के सामर्थ्य से परे नहीं, वह जो कुछ चाहता है, वही होता है।' आगे कहते हैं, 'गुरु सर्वशक्तिमान है, सर्वव्यापी है, निराकार है, कुल-मालिक है, अगम है, अनन्त है, अकथ है, उसका कोई वर्णन नहीं कर सकता। गुरु रामदास जी कहते हैं :

समुंदु विरोलि सरीरु हम देखिआ इकु वसतु अनूप दिखाई ॥
गुर गोविंदु गोविंदु गुरू है नानक भेदु न भाई ॥
(आ.ग्र.म. 4, पृ. 442)

अर्थात्, इस शरीर रूपी समुद्र को मथ कर मैंने एक अनुपम बात देखी कि गुरु परमात्मा है और परमात्मा ही गुरु है, दोनों में कोई अन्तर नहीं है।

फ़ारस के एक दूसरे सन्त कहते हैं, 'नूरे हक़ ज़ाहिर बवद अंदर वली।' सन्त के अन्दर परमात्मा का प्रकाश साफ़-साफ़ दिखाई देता है और जो अन्दर की आँख खोल लेते हैं वे ही उसे देख सकते हैं। कबीर, दादू, पलटू और अन्य सब सन्त भी यही कहते हैं।

---

1. हरि जीउ नामु परिओ रामदासु ॥ (आ.ग्र.म. 5, पृ. 612)

पादरी प्रोफ़ेसर ने कहा, "ईसा मसीह भी कहते हैं, 'मैं और मेरे पिता एक हैं' और 'मेरे कहे मुताबिक़ चलो, तुम ख़ुदा की बादशाहत में पहुँच जाओगे'।"

हुज़ूर महाराजजी बोले, "अब इस बात को एक दूसरी तरह से सोचिये। मान लीजिये आपका छः साल का बच्चा एक दिन सुबह अपने कुछ दोस्तों के साथ आपके घर से कुछ दूर मेला देखने जाता है। शाम को एक तेज़ आँधी उन्हें घेर लेती है। और सब बच्चे तो लौट आते हैं, पर आपका बच्चा नहीं आता। रात हो जाती है और आपके बच्चे के वापस आने की कोई ख़बर नहीं मिलती। आपकी स्त्री रोती-चिल्लाती आपके पास दफ़्तर, क्लब या जहाँ भी आप हों, आती है और कहती है कि बच्चा नहीं आया है। क्या आप फ़ौरन बिना टोप या छड़ी लिये, ज्यों के त्यों, बच्चे की तलाश में नहीं दौड़ पड़ेंगे ? आप ज़रूर दौड़ेंगे। तो क्या वह परमपिता जो दया, मेहर, प्यार और हमदर्दी का सागर है, अपने बच्चों को दुःख, दर्द, कष्ट और चिन्ता के इस भयानक समुद्र से उबारने के लिये यहाँ दौड़ा नहीं आयेगा ?

यह संसार एक बहुत बड़ा जेलख़ाना है, जिसमें आत्माएँ क़ैद हैं। इस दुःखों और मुसीबतों की दुनिया में अपना भी कोई जीवन है ? मृत्यु हर वक़्त मुँह बाये खड़ी है। हमारे बीवी, बच्चे, कुटुम्बी, कोई भी सुरक्षित नहीं है। उनके एकाएक छीन लिये जाने का डर हमेशा बना रहता है। सब लोग बीमारी और मृत्यु के शिकार होते हैं। आप यहाँ किसी को भी सुखी नहीं पायेंगे। कोई अपनी पत्नी की मृत्यु पर रो रहा है तो कोई अपनी पत्नी के कर्कशापन से दुःखी है। कोई लड़का पाने के लिये दुआएँ माँगता है तो कोई अपने बाप के मर जाने के लिये प्रार्थना कर रहा है।

अस्पतालों में जाकर देखें, अदालतों और जेलों में देखें, हर जगह दुःख-दर्द का बेखटके राज है। किसी से भी पूछ लें कि क्या वह सुखी है ? वह अपने दुःखों की कहानी शुरू कर देगा। किसी का पुत्र मर गया है तो किसी को अपनी पुत्री के विधवा होने का दुःख है। कोई बीमारी के हाथों तंग आया बैठा है तो कोई ग़रीबी का मारा परेशान है। बेकारी अपना अलग ही जाल फैला रही है। यहाँ राजा दुःखी है तो प्रजा आफ़तों की मारी। राजा, रानियाँ, राजकुमार, धनवान, उद्योगपति व बड़े-बड़े व्यापारी सब अपनी-अपनी चिन्ताओं की चक्की में पिसे जा रहे

हैं। जब धनवानों का यह हाल है तो बेचारे ग़रीबों की बात ही क्या है ? घोर असन्तोष, दरिद्रता, बीमारी और मुसीबत ही उनकी पूँजी है। गिरफ़्तारी के वारण्ट, सामान की कुर्की, क़र्ज़ा न चुकाने पर जेल, अनादर, अपमान ही उनकी रोज़ की क़िस्मत है।

शायद आप कहेंगे कि अमुक आदमी के पास वह सब-कुछ है जो दुनिया में होना चाहिये और ज़रूर वह बहुत सुखी होगा। उसके पास अपार धन है, सुन्दर स्त्री है, आज्ञाकारी सन्तान है, शहर में विशाल महल है और शहर के बाहर सुन्दर बँगला है, सैर के लिये मोटरे हैं और वर्दी पहने नौकर-चाकर सेवा में हाज़िर हैं। उसे और क्या चाहिये ? हाँ, आपका कहना ठीक है, पर ज़रा उसके पास जाकर तो पूछिये कि क्या वह सुखी है और देखिये कि वह क्या जवाब देता है। एक ऐसे ही अवसर पर गुरु नानक बोल उठे थे, 'ओह, इस संसार में हर आदमी दुःखी है, केवल मालिक के भक्त ही सुखी हैं।'[1]

राजस्थान की मशहूर सन्त सहजोबाई कहती हैं, 'सब धनवानों और अमीरों को मैंने दुःखी और पीड़ा में कराहते हुए पाया है और ग़रीब तो ख़ुद पीड़ा और दुःखों के रूप ही हैं। सुखी तो केवल ईश्वर भक्त ही हैं जिन्होंने सुख पाने के लिये परमात्मा से नाता जोड़ लिया है।'[2] धन-दौलत से कभी सुख शान्ति नहीं मिलती। अगर ऐसा होता तो करोड़ों-अरबों की दौलत का स्वामी रौकफ़ेलर अपने कारख़ाने के एक मज़दूर को जो पीठ पर वज़न लादे जा रहा था, देख कर यह न कहता कि कोई मेरी सब धन-दौलत ले ले और इस ग़रीब आदमी की तन्दुरुस्ती मुझे दिलवा दे।

धन-दौलत दुनिया की सब मुसीबतों का कारण न भी हो, लेकिन यह कोई सुख देने वाली चीज़ भी तो नहीं है। यह अस्थिर है, आज किसी के पास है तो कल किसी और के पास। यह मनुष्य को लालची, घमण्डी, सख़्तदिल और निर्दयी बनाती है। एक सन्त कहते हैं, 'दौलत को इकट्ठी करने के लिये मनुष्य को अनेक तरह के पाप करने पड़ते हैं, लेकिन संसार से बिदा होते समय यह न तो उसके साथ जाती है और न उसकी कोई मदद करती है। चैन व आराम की चीज़ों की

---

1. नानक दुखीआ सभु संसारु ॥ (आ.ग्र.म. 1, पृ. 954)
2. धनवन्ते दुखिया सभी, निरधन दुख का रूप ।
साध सुखी सहजो कहे, पा[illegible] अनूप ॥ (सन्तों की बानी, पृ. 350)

मिल्कियत और संसार के भोगों में सच्चा सुख नहीं है। इन भोगों का नतीजा दुःख होता है। गुरु नानक कहते हैं, 'ऐशो आराम की ज़िन्दगी दुःख से भरी हुई है। इन्द्रियों के सुख अपने साथ बीमारियाँ लाते हैं और अन्त समय को दुःखदायी बना देते हैं।'[1] वह सुख किस काम का जो अन्त में दुःख दे? एक अक़्लमन्द मनुष्य हमेशा नतीजे की ओर ज़्यादा ध्यान देता है।

स्वामीजी महाराज ने अपने एक पद[2] में जन्म से मरण तक की मनुष्य की दुःखपूर्ण अवस्था का वर्णन किया है। वे कहते हैं कि मनुष्य रोते हुए जन्म लेता है और उसका बचपन बड़ी मुसीबतों में गुज़रता है। वह पालने में गूँगे और बहरे की तरह पड़ा रहता है और अपना दुःख-दर्द तक किसी को बता नहीं सकता। उसको दर्द तो सिर में है लेकिन माँ-बाप दवा पेट दर्द की देते हैं और इस तरह उसके दर्द को और भी बढ़ा देते हैं। वह बुरी तरह से चीखता-चिल्लाता है पर यह कह नहीं सकता कि उसे कहाँ दर्द है। उसके माँ-बाप भी नहीं समझ पाते कि उसका क्या इलाज करें। मजबूर होकर माँ बच्चे को उसकी चिड़चिड़ाहट से तंग आकर पीटने लगती है। बचपन ज़्यादातर बीमारियों में ही बीता। वह थोड़ा और बड़ा हुआ तो दूसरी मुसीबतों ने आ घेरा। वह खेल-कूद का शौक़ीन है, पर माँ-बाप उसे स्कूल भेजना चाहते हैं। उससे बचने के लिये वह बहुत-से बहाने करता है पर इससे कोई छुटकारा नहीं मिलता। घर में उसे माता-पिता की डाँट-फटकार मिलती है तो स्कूल में मास्टर जी का डण्डा। ये ग़फ़लत के दिन भी दुःख व परेशानी में ही गुज़र जाते हैं।

इसके बाद ज़वानी आती है जो नादानियों और पछतावों से भरी होती है। बिना चाहे भी क़ुदरती जज़्बात और उनके वेग उस पर हावी हो जाते हैं और उससे ऐसे काम करवा लेते हैं जिनका नतीजा शर्म और अफ़सोस होता है। उसके चित्त में वासना छा जाती है। उसके हृदय से विनय और संयम ग़ायब हो जाते हैं। वह ख़ूबसूरत चेहरों के पीछे दौड़ता रहता है। आप सब जानते हैं कि जवानी में आदमी क्या-क्या करता है। जब उसका विवाह हो जाता है तो वह अपने माता-पिता और भाइयों के प्रति अपने सब कर्त्तव्य भूल जाता है।

---

1. बहु सादहु दूखु परापति होवै॥ भोगहु रोग सु अंति विगोवै ॥ (आ.ग्र.म.1, पृ.1034)
2. सा. ब, पृ. 333-334

जब वासनाओं का पहला दौर ख़त्म हो जाता है तो उसे कमाने और गुज़ारे की चिन्ता होती है। इसके लिये वह दर-दर भटकता है और नौकरी की तलाश में चक्कर लगाता है। हर जगह उसे लताड़ और फटकार मिलती है। उसे हर जगह लिखा मिलता है — 'यहाँ जगह ख़ाली नहीं है।' उसके बीवी-बच्चे कहते हैं, 'जाओ, चाहे भीख माँगो, क़र्ज़ लो या चोरी करो, लेकिन कहीं न कहीं से पैसा लाओ। हम पत्थर खाकर नहीं जी सकते।' रात-दिन वह इसी चिन्ता में घुले जाता है। वह एक पागल कुत्ते की तरह इधर-उधर भागता फिरता है। हर वक़्त उसके सिर पर एक भारी बोझ रहता है जो उसके परिवार में कलह और झगड़ा पैदा कर देता है और इस तरह उसके विवाहित जीवन का आनन्द ग़ायब हो जाता है।

घर-गृहस्थी के काम, बच्चों की पढ़ाई-लिखाई, विवाहों के रीति-रिवाज उसे क़र्ज़ लेने पर मजबूर करते हैं, जिसे बढ़ते हुए ब्याज के साथ चुकाना उसके लिये कठिन हो जाता है। बेचारा न्यायालयों में घसीटा जाता है। वह अपनी पिछली नादानियों पर अफ़सोस करता है, पर अब पछताने से क्या होता है? मुसीबतें उस पर मूसलाधार वर्षा की तरह बरस पड़ती हैं। वह बिना जल की मछली के समान तड़पता है। समय से पहले ही बुढ़ापा आ जाता है और उसकी इन्द्रियाँ भी जवाब दे देती हैं। उसे चारों ओर अँधेरा ही अँधेरा नज़र आता है। किसी ओर से भी उसे सहायता नहीं मिलती।

उसकी बुद्धि और काम करने की शक्ति कमज़ोर हो चुकी है पर लालच और वासना बुढ़ापे में बढ़ जाती है। उसका शरीर मुरझा गया है और सेहत बरबाद हो चुकी है। अब लोग उससे नफ़रत करते हैं। वह ला-इलाज बीमारियों का शिकार बन जाता है। वह अपनी इच्छाओं को पूरी नहीं कर सकता, लेकिन भोगों की अतृप्त वासना और ज़्यादा बढ़ जाती है जो उसके दिल को जलाती रहती है। वह ऐसी ग़लतियाँ करता है जिन्हें क्षमा नहीं किया जा सकता और जिनके कारण उसे न केवल लोगों के ताने सुनने पड़ते हैं बल्कि उसके बीवी-बच्चे भी उसे खरी-खोटी सुनाते हैं। वह मरना चाहता है किन्तु मौत आती नहीं। कभी-कभी वह इन दुःखों से छुटकारा पाने के लिये आत्महत्या करने का विचार करता है।

सो, ऐसा है मनुष्य का जीवन, जिसके पीछे हम दौड़ते-फिरते हैं। और ऐसे पापी मनुष्यों को जो अपने पापों का पछतावा किये बिना मर जाते हैं, हज़ारों वर्ष नरकों के दुःख भोगने पड़ते हैं। थोड़े-से दिनों के इस मनुष्य-जीवन के दुरुपयोग की कितनी बड़ी सज़ा भुगतनी पड़ती है।

नरकों के दुःखों और यातनाओं का तो आप अन्दाज़ा भी नहीं लगा सकते। आत्माएँ वहाँ चिल्लाती और बिलखती हैं पर उनके विलाप को कोई नहीं सुनता। त्रिलोकी का मालिक काल रत्ती-भर भी दया नहीं करता। क्या अपने बच्चों की दुर्दशा देख कर परमपिता को दया नहीं आयेगी और वह मनुष्य-रूप धारण करके उनके दुःखों को दूर करने के लिये मजबूर नहीं हो जायेगा ?"

जैसे ही हुज़ूर महाराजजी रुके, राय रोशनलाल बोल उठे, "परन्तु मेरी समझ में नहीं आता कि वह परमात्मा जो अनन्त, असीम और सर्वव्यापी है, सीमित होकर मनुष्य के शरीर में कैसे समा सकता है ?"

हुज़ूर महाराजजी ने फ़रमाया, "राय साहिब, इसकी वजह यह है कि लोगों का ख़याल है कि परमात्मा स्वर्ग में किसी ख़ास जगह बैठा हुआ है और वहीं से संसार का सारा काम-काज चला रहा है। वे उस असीम को सीमा में बाँध देते हैं। वह तो अनन्त और सर्वव्यापी है। गणित का कोई विद्यार्थी आपको बता सकता है कि यदि पूर्ण में से पूर्ण को घटा दिया जाता है तो पूर्ण ही बाक़ी बचता है। असीम में से असीम को घटाने पर असीम ही शेष रह जाता है। ईशवास्योपनिषद के शान्तिपाठ में लिखा है, 'ओम पूर्णमिदः पूर्णमिदम् पूर्णात् पूर्णाभिदमुच्यते'। यहाँ पूर्ण का अर्थ है कामिल, असीम, बेहद। कहते हैं, 'परमात्मा असीम है, पूर्ण है और पूर्ण में से पूर्ण को घटाया जायेगा तो पूर्ण ही बाक़ी बचेगा।' जब हम उसके मनुष्य-रूप में आने की क्षमता में शक करने लगते हैं तो हम 'पूर्ण' और 'असीम' के महत्त्व को भूल जाते हैं। क्या सब रूप उसी के रूप नहीं हैं ? मैं इसे आपको दूसरी तरह समझाता हूँ।"

लेकिन राय रोशनलाल बीच में ही बोल पड़े, "महाराज़जी, यह सब साफ़-साफ़ समझ में आ गया है। ऐसा लगता है कि आप किसी बात को वाणी के द्वारा ही नहीं समझाते बल्कि जैसे ही आप किसी सवाल का जवाब देना शुरू करते हैं, दिमाग़ में अचानक प्रकाश चमक उठता है।"

महाराजजी ने आगे फ़रमाया, "इससे कोई इनकार नहीं कर सकता कि हमारी आत्मा आध्यात्मिकता के अपार समुद्र की एक बूँद है, या हम

कह सकते हैं कि हम सबके अन्दर परमात्मा का ही एक अंश है और जितना कोई परमात्मा के निकट पहुँचता है वह अंश उतना ही अधिक प्रकट होने लगता है। एक कवि, दार्शनिक, वैज्ञानिक, योगी या इससे भी अधिक पहुँची हुई आत्मा के अन्दर एक मामूली मनुष्य के बनिस्बत परमात्मा का अंश अधिक प्रकट होता है। जितने हमारे स्थूल पर्दे हटते हैं, उतना ही यह प्रकाश या 'हमारे अन्दर का परमात्मा' चमकने लगता है और आख़िर यह अवस्था आती है कि वह अपने पूर्ण रूप में हमारे अन्दर प्रकट हो जाता है। जब यह अवस्था आ जाती है तो हमारी आत्मा पर कोई सीमाएँ या रुकावट नहीं रहती। हम अपनी इच्छानुसार ऊँचे मण्डलों में जा सकते हैं। उन मण्डलों के रहस्य हमारे अपने रहस्य हो जाते हैं और वहाँ की शक्तियाँ हमारी शक्तियाँ बन जाती हैं। आत्मा उस असीम के साथ एकाकार हो जाती है। बूँद समुद्र में मिल कर समुद्र बन जाती है। हरएक आत्मा यहाँ स्थूल पर्दों से ढकी हुई है, पर वास्तव में उसमें परमात्मा बनने का सामर्थ्य है। बादलों से ऊपर तो निर्मल आकाश है जहाँ सूर्य पूरे तेज़ में चमकता है। ये बादल ही तो अन्धकार का कारण हैं। जब तेज़ हवा बादलों को तितर-बितर कर देती है तो सूर्य पूरे प्रकाश में प्रकट हो जाता है। पर जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ, यह सही नहीं है कि जो चीज़ें हमारी समझ में नहीं आतीं उनका अस्तित्व ही नहीं है। दार्शनिक सुकरात तक को भी मानना पड़ा था कि ज्ञान का एक ऐसा भी मण्डल हो सकता है जहाँ तर्क शास्त्रियों की पहुँच नहीं है। हम कई बार नवयुवकों को उन विषयों पर दावे के साथ बातें करते देखते हैं जिनके बारे में वे कुछ जानते ही नहीं। यह बड़ा हास्यास्पद मालूम देता है। उन्होंने इस रूहानी विषय का न कभी अध्ययन किया और न कभी इस बारे में कोई खोज ही की, फिर भी आप उन्हें आत्मा, परमात्मा, स्वर्ग, नरक और वहाँ के तौर-तरीक़ों के बारे में अर्थ-हीन दावे करते पायेंगे।"

इसी बीच पादरी प्रोफ़ेसर ने कहा, "ईसा मसीह ने भी कहा है कि मैं और मेरे पिता एक ही हैं।"

हुज़ूर बोले, "हाँ, उन्हें बाइबिल में ईश्वर-पुत्र भी कहा गया है।"

एक अन्य पादरी ने कहा, "वे खुद भी ऐसा ही कहते हैं।"

हुज़ूर महाराजजी ने फ़रमाया, "आप ऐसे लोगों को ईश्वर का पुत्र कह सकते हैं, 'ख़लील अल्लाह' (ईश्वर का मित्र) कह सकते हैं, जैसा

कि हज़रत इब्राहीम को कहा जाता था, या उन्हें 'रसूले अल्लाह' (प्रभु का दूत) कह सकते हैं, जैसा कि पैग़म्बर मोहम्मद साहिब के लिये कहा जाता था, या साक्षात् ईश्वर कह सकते हैं जैसा कि राम और कृष्ण के लिये कहा गया है। वे रक्षक, उद्धारक या मध्यस्थ के रूप में आते हैं अथवा यों कहें कि परमात्मा द्वारा भेजे जाते हैं; वे परमात्मा के रूप में मनुष्य और मनुष्य के रूप में परमात्मा होते हैं, जो संसार को दया का सन्देश देने तथा प्रकाश और नव-जीवन प्रदान करने के लिये आते हैं। वे परमात्मा के मिलाप का मार्ग बतलाने और उनकी बादशाहत में जाने का द्वार खोलने आते हैं।"

एक पादरी ने बताया कि ईसा मसीह को भी 'द्वार', 'मार्ग', 'संसार की ज्योति' और एक 'सज्जन गड़रिया' कहा जाता है।

पादरी प्रोफ़ेसर ने कहा, "ईसा को 'शब्द', 'लोगॉस', 'देहधारी शब्द' और 'अवतार ' भी कहा जाता है।"

इस पर हुज़ूर ने कहा, 'कृष्ण भगवान, जिनको हिन्दू ईश्वर का अवतार मानते हैं, गीता में कहते हैं कि जब-जब धर्म की हानि होती है और इस संसार में पाप छा जाता है तब-तब मैं खुद धर्म की स्थापना के लिये युग-युग में अवतार लेता हूँ।' (गीता 4, 7-8)

पादरी प्रोफ़ेसर बोला, "उन्हें कोई किसी भी नाम से पुकारे, वे परमात्मा के यहाँ से आते हैं और परमात्मा की ताक़त लेकर आते हैं।"

हुज़ूर ने कहा, "लोग नामों को लेकर फ़ुज़ूल लड़ते हैं। अगर कोई निष्पक्ष व साफ़ दिल से खोज करे तो उसे सब धर्मों की तह में एक ही सच्चाई मिलेगी। जब भी धर्म बेकार के रीति-रिवाजों और बेजान कर्मकाण्डों के जाल में उलझ कर भ्रष्ट और बदनाम हो जाता है तब उसे फिर से चेतना प्रदान करने के लिये परमात्मा के बन्दे समय-समय पर आते हैं। इस प्रकार दिव्य प्रकाश की यह मशाल हर युग में हर समय जाग्रत रखी जाती है।"

पादरी प्रोफ़ेसर ने पूछा, "यह भ्रष्टाचार और पतन हमेशा क्यों आ जाता है?"

हुज़ूर ने जवाब दिया, "यह भी क़ुदरत का क़ानून है। ज़मीन जब बंजर हो जाती है और फ़सल पैदा नहीं करती तो उसमें से ताज़े फल-फूल पैदा करने के लिये खाद की ज़रूरत पड़ती है।"

नौजवान बैरिस्टर ने फिर पूछा, "परमात्मा इतनी अच्छी और उज्ज्वल चीज़ों के चारों ओर इस सब गन्दगी और मैल को क्यों जमने देता है ?"

हुज़ूर महाराजजी ने उत्तर दिया, "ठीक है, अगर वह ऐसा होने देता है तो उन्हें फिर से उज्ज्वल और साफ़ करने के लिये उसे ख़ुद ही संसार में आना भी तो पड़ता है।" इस पर सब लोग हँस पड़े।

हुज़ूर ने आगे फ़रमाया, "इस बात को कभी नहीं भूलना चाहिये कि इस संसार की व्यवस्था करने वाला परमपिता जो कुछ भी कर रहा है, उत्तम प्रकार से कर रहा है। यह अनैतिकता, पाप, पतन और दुःख शायद इसलिये ज़रूरी है कि परमात्मा की दया का सागर उमड़ पड़े और इनसान के पापों को धोने के लिये संसार में उसकी रूहानी लहरें आने लगें।"

फिर हुज़ूर ने पादरियों के दल से पूछा, "गुरु के बारे में आप कुछ और पूछना चाहते हैं ?"

उनके जवाब के पहले ही नौजवान बैरिस्टर ने पूछा, "सन्त मरते क्यों हैं ?" इस सवाल पर सब हँस पड़े। बैरिस्टर ने आगे कहा, "उन्हें मरना नहीं चाहिये, क्योंकि वे तो परमात्मा ही होते हैं।"

हुज़ूर महाराजजी ने जवाब दिया, "सन्त जन्म-मरण के स्वामी होते हैं। वे जब तक चाहें जी सकते हैं। उनकी मौज में कोई दख़ल नहीं दे सकता । उन्हें मौत दूसरे साधारण लोगों की तरह नहीं आती। जब सन्त या सतगुरु शरीर छोड़ना चाहते हैं तो वे उसे इस तरह छोड़ देते हैं जैसे लोग पुराने कपड़े उतार कर फेंक देते हैं। जब वे अपने अभ्यास में आत्मा को ऊँचे मण्डलों में ले जाते हैं तो हर रोज़ मृत्यु का अनुभव करते हैं। उन्हें ज़िन्दगी और इस दुनिया से कोई मोह नहीं होता और न वे मृत्यु से डरते हैं। वे इस संसार में रहने में कोई सुख महसूस नहीं करते और इस संसार को बहुत बड़ा जेलख़ाना समझते हैं। उनका यहाँ का कार्य पूरा होते ही वे संसार को छोड़ जाते हैं। अगर वे चाहें तो शरीर में सदियों तक या अनेक वर्षों तक रह सकते हैं। पर उन्हें ऐसा करने में कोई ख़ुशी नहीं होती। जब तक वे इस दुनिया में रहते हैं इसके क़ायदे-क़ानूनों का कठोरतापूर्वक पालन करते हैं।"

राय बहादुर मुन्नालाल बीच में ही बोल पड़े, "सन्तों की तो बात छोड़िये, हम मामूली सत्संगियों को भी इस संसार में रहने में कोई ख़ुशी नहीं है और जल्दी से जल्दी इस जेल से छुटकारा पाना चाहते हैं।"

इस विषय पर बोलते हुए हुज़ूर ने कहा, कबीर साहिब कहते हैं :

कबीर जिसु मरने ते जगु डरै मेरे मन आनंदु ॥
मरने ही ते पाईऐ पूरनु परमानंदु ॥

(आ.ग्र., पृ. 1365)

इस जगह पादरी प्रोफ़ेसर बोला, "सेण्ट पॉल ने भी कहा है, 'मैं रोज़ मरता हूँ', लेकिन मैं आज तक नहीं समझ पाया था कि इन शब्दों से उनका क्या मतलब था।"

हुज़ूर महाराजजी ने समझाया, "सुरत-शब्द का हरएक अभ्यासी रोज़ अपने अभ्यास में मौत के द्वार में से गुज़रने का अनुभव करता है। मौत के वक़्त क्या होता है! आत्मा सबसे पहले शरीर के अंगों से सिमटती है, हाथों, पैरों, टाँगों और भुजाओं से सिमट कर पहले चक्र (गुदा-चक्र) में आ जाती है और वहाँ से वह धीरे-धीरे कण्ठ-चक्र में आती है। उस समय हाथ, पैर और सारा शरीर ठण्डा पड़ जाता है। नब्ज़ भी रुक जाती है। आँखों की पुतलियाँ ऊपर की तरफ़ पलट जाती हैं और आत्मा तीसरे तिल में से निकल जाती है। इस प्रकार मृत्यु हो जाती है। पर एक अभ्यासी हर रोज़ इस रास्ते से गुज़रता है। इसी को 'जीवित मरना' कहा जाता है।"

मुसलमान डॉ. ने कहा, "हज़रत मुहम्मद साहिब ने भी कहा है कि 'मौत से पहले मरो।' आज मैं समझ पाया हूँ कि उनकी इस बात का क्या मतलब था।"

नौजवाब बैरिस्टर ने पूछा कि अगर एक अभ्यासी की आत्मा शरीर को छोड़ने के बाद वापस न लौटे तो क्या होगा?

हुज़ूर ने फ़रमाया, "ऐसा कभी नहीं होता। आत्मा अपनी इच्छानुसार आ और जा सकती है। यह बात अभ्यासी के अपने वश में होती है। हरएक अभ्यासी को मृत्यु के द्वार को रोज़ पार करना पड़ता है। शरीर के बाहरी हिस्सों से सिमट कर चेतना के अन्दर जाने की क्रिया में यह पहला क़दम है। अन्दर की लीला शुरू होने से पहले मृत्यु की हालत में पहुँच जाना यानी चेतनता का शरीर से बिलकुल सिमट जाना लाज़मी है। पुराने ग्रीक दार्शनिक प्लूटार्क का भी यही अनुभव है। वह कहता है,

'मृत्यु के समय आत्मा को वे ही अनुभव होते हैं जो अभ्यासी आत्मा, जिसे रूहानी दीक्षा मिली है, ऊपर के मण्डलों में प्रवेश करते समय करती हैं'।"

नौजवान बैरिस्टर ने कहा, "यह 'जीते-जी मरने' की क्रिया तो बहुत कष्ट-प्रद होती होगी?"

हुज़ूर ने जवाब दिया, "नहीं, पूर्ण गुरु के मार्ग-दर्शन में एक छः बरस का बच्चा भी यह अभ्यास कर सकता है।"

नौजवान बैरिस्टर, "तब सारा संसार ही यह क्यों नहीं कर लेता ?"

हुज़ूर महाराजजी ने उत्तर दिया, "क्योंकि न तो उन्हें गुरु मिला है और न उन्हें इस मार्ग का ही कुछ पता है।"

बैरिस्टर ने पूछा, "क्या मैं इस रास्ते को जान सकता हूँ ? क्या इसके लिये कुछ शर्तें हैं या किसी तरह की तैयारी करनी पड़ती है ?"

"हाँ, इसके लिये शराब आदि तमाम नशीले पदार्थों का और मांस, अण्डे, मछली, मुर्गी आदि और उनसे बनी हुई केक, पेस्ट्री वग़ैरह सब चीज़ों का त्याग करना पड़ता है और पवित्र व नेक जीवन बिताना पड़ता है।"

"क्या केक और पेस्ट्री तक भी छोड़नी पड़ती है ? यह तो ज़रा टेढ़ी खीर है।" बैरिस्टर बोला।

हुज़ूर मुसकराये और बोले, "यह तो इस बात पर निर्भर है कि मनुष्य किस चीज़ को ज़्यादा महत्त्व देता है, नाशवान सांसारिक सुखों को या अविनाशी रूहानी दौलत को।"

"मांस खाना क्यों मना है ?"

"क्योंकि जीवों की जान लेने से दिल बेरहम व कठोर बनता है और कर्मों का भार बहुत बढ़ जाता है। मांस खाने से रूहानी तरक़्क़ी में रुकावट आती है।"

बैरिस्टर ने फिर पूछा, "क्या परमात्मा ने इन सब पशु-पक्षियों को हमारे खाने के लिये नहीं बनाया है ?"

महाराजजी हँसे और बोले, "अगर शेर और चीते यही सवाल आदमी के बारे में करें तो आपका क्या जवाब होगा ?"

बैरिस्टर ने आपत्ति उठायी, "पर यह नहीं कहा जा सकता कि मनुष्य इन जानवरों की ख़ुराक के लिये पैदा किया गया है।"

हुज़ूर महाराजजी, "पर जानवरों के विचार तो आपके विचारों से भिन्न हो सकते हैं।"

नौजवान बैरिस्टर, "सब मुसलमान और ईसाई तो मांस खाते हैं।"

इस पर हुज़ूर महाराजजी ने फ़रमाया, "किसी भी सन्त ने, चाहे वह किसी भी देश, धर्म और युग में रहा हो, अपने शिष्यों को मांस खाने की इजाज़त नहीं दी। समय बीतने पर, जब लोग उनकी असली शिक्षाओं को भूल जाते हैं तब उनके शिष्य, जो कोरे नाम के शिष्य रह जाते हैं, इन निषिद्ध अथवा मना की हुई चीज़ों को खाना शुरू कर देते हैं। हज़रत मुहम्मद साहिब के जीवन पर लिखी एक पुस्तक में मैंने पढ़ा है कि उन्होंने सारी ज़िन्दगी में सिर्फ़ चार बार ही मांस खाया था। मौलाना रूम कहते हैं :

लहन के गुफ़्त अस्त सुलतान-ए-ज़माँ,
लहने-ख़ुद गुफ़्ता न लहने दीगराँ।

बड़े सुलतान (मुहम्मद साहिब) ने जिस मांस को खाने का ज़िक्र किया है, वह तेरा ख़ुद का मांस है न कि दूसरों का। (यहाँ अपना मांस खाने का अर्थ है ध्यान और तपस्या के द्वारा शरीर का दुबला-पतला हो जाना)।"

मुसलमान डॉक्टर ने कहा, "हाँ, हज़रत मुहम्मद साहिब ने अपनी ज़िन्दगी में सिर्फ़ चार बार ही मांस खाया था। कुरान शरीफ़ की एक आयत में लिखा है कि कुर्बान किये गये जानवरों का मांस और ख़ून ख़ुदा को मंज़ूर नहीं है, उसे तो सिर्फ़ भक्ति और नेक ज़िन्दगी ही मंज़ूर है।"

यहाँ बावा हरनामसिंह बोल उठे, "लेकिन गुरु नानक ने तो मांस का खाना कभी मना नहीं किया।"

हुज़ूर महाराजजी ने कहा, "उन्होंने बेशक मना किया है।" और फिर हुज़ूर ने मुझसे कहा, "ऊपर जाओ, मेरे सोने के कमरे में छोटी मेज़ पर अख़बारों में लिपटी, एक हस्तलिखित फ़ारसी की पुस्तक 'दबिस्तान-ए-मज़ाहिब' रखी हुई है, जिसे प्रोफ़ेसर जगमोहनलाल महाराजा कपूरथला के पुस्तकालय से लाये हैं।"

मैंने पुस्तक लाकर हुज़ूर महाराजजी को दे दी, उन्होंने उसे कई जगह से खोला और उस अंश को खोज निकाला जिसे वे बताना चाहते थे। कुछ देर बाद उन्होंने वह हस्तलिखित पुस्तक बावा हरनामसिंह के हाथ में देते हुए कहा, 'यह पुस्तक एक बहुत विद्वान मुसलमान लेखक मोहसिन फ़ानी ने लिखी है, जो गुरु अर्जनदेव के समकालीन और उनके मित्र थे। उस समय का सिर्फ़ एक यही दस्तावेज़ मिला है और यह बहुत ही विश्वसनीय है।'

हुज़ूर ने फिर पृष्ठ 248 (भाग 2) दिखाया जिसे बावा हरनामसिंह ने पढ़ा। वह इस प्रकार था, "गुरु नानक ने अपने शिष्यों को मांस खाने और शराब पीने की सख़्त मनाही की थी। उन्होंने खुद भी कभी किसी तरह का मांस नहीं खाया और उनका अपने शिष्यों को हुक्म था कि वे किसी जीव की हिंसा न करें। गुरु अर्जनदेव को जब यह बताया गया कि कुछ सत्संगी बड़े हुज़ूर (नानकदेव) के उपदेशों का सख़्ती से पालन नहीं कर रहे हैं तो उन्होंने फिर उस हुक्म को दोहराया और कहा कि गुरु नानक ने कभी मांस खाने की इजाज़त नहीं दी।"

हुज़ूर ने कहा, "इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि वे जानवर और पक्षी, जिन्हें हम मारते हैं, मरना नहीं चाहते। वे हमारे हाथों से बचने की कोशिश करते हैं और हमारी ही तरह ज़िन्दा रहना चाहते हैं। जब हम उन्हें पकड़ कर हलाल करना चाहते हैं तब क्या वे हमारे हाथों से छूटने की कोशिश नहीं करते ? क्या वे सहायता के लिये नहीं पुकारते ? क्या वे दर्द महसूस नहीं करते ? क्या वे परमात्मा के वैसे ही बच्चे नहीं हैं जैसे कि हम हैं ? क्या वह दयालु परमात्मा उन्हें बे-रहमी से क़त्ल करने के लिये हमसे जवाब तलब नहीं करेगा ?"

पादरी प्रोफ़ेसर ने मंज़ूर किया, "हाँ, यह सच है कि जब हम मुर्गियों व दूसरी चिड़ियों को मारते हैं तब वे बड़े दर्दनाक ढंग से चिल्लाती हैं।"

"अगर वे सुख-दुःख महसूस करते हैं तो उन्हें मारना पाप है और विधाता हमें इसके लिये कभी माफ़ नहीं करेगा", हुज़ूर ने कहा।

प्रोफ़ेसर ने दोहराया, "दर्द तो वे ज़रूर महसूस करते हैं।"

हुज़ूर महाराजजी ने फ़रमाया, "जो परमात्मा को प्यार करता है और उससे मिलना चाहता है वह किसी जीव की हत्या नहीं करेगा।

जानवरों का मांस खाने से इनसान जानवरों की श्रेणी में आ जाता है और वह जानवर-सा ही बन जाता है।"

"हम कई पीढ़ियों से जानवरों का मांस खाते आ रहे हैं, हमारे लिये उसे छोड़ना बहुत मुश्किल होगा", प्रोफ़ेसर ने कहा।

"जहाँ चाह वहाँ राह", हुज़ूर ने कहा, "और जो नेकी और दया के मार्ग पर चलना चाहते हैं उनकी परमात्मा भी मदद करता है। सैकड़ों अमेरिकन और यूरोपियन सत्संगियों ने मांस को छोड़ कर शाकाहारी भोजन अपना लिया है और यह बात अब उनके लिये कोई समस्या नहीं है।"

पादरी प्रोफ़ेसर ने कहा, "परमात्मा के प्रेम के लिये हमें कुछ त्याग तो करना ही पड़ेगा।"

नौजवान बैरिस्टर बोला, "परन्तु महात्माओं का कहना है कि पेड़ों, पौधों व शाक-सब्ज़ी में भी जान और चेतनता होती है।"

हुज़ूर ने कहा, "यह सही है। गेहूँ के दाने-दाने तक में जान होती है। गुरु नानक कहते हैं कि हर दाने में जिसे हम खाते हैं, आत्मा होती है।[1] मौलाना रूम कहते हैं, 'हरी घास की तरह मैं कई बार पैदा हो चुका हूँ और सात सौ सत्तर जन्म देख चुका हूँ।' मगर जीवों की चेतनता के दर्जे में, महसूस करने की हद में और विकास की श्रेणी में अवश्य अन्तर होता है। जिस जीव को खाया जाता है उसमें पीड़ा व दर्द महसूस करने की मात्रा जितनी कम या ज़्यादा होती है उसी के अनुसार खाने वाले को भी कम या ज़्यादा पाप लगता है। इसे कुछ और स्पष्ट करूँ ? देखिये, जीवों को हम पाँच श्रेणियों में बाँट सकते हैं। तत्त्वों की कम या ज़्यादा मात्रा के अनुसार संसार में पाँच प्रकार के जीव होते हैं :

1. पहली श्रेणी के जीवों में केवल एक तत्त्व मुख्य होता है, बाक़ी के चार तत्त्व बहुत कम मात्रा में और दबे हुए होते हैं। इस श्रेणी में शाक-सब्ज़ी, पेड़-पौधे, वृक्ष आदि आते हैं जिनमें जल का तत्त्व मुख्य होता है। कुछ ऐसी सब्ज़ियाँ भी होती हैं, सूखने पर जिनके वज़न का दसवाँ भाग ही शेष रह जाता है।

2. दूसरी श्रेणी में वे जीव आते हैं जिनमें दो तत्त्व प्रधान हैं, जैसे कीड़े-मकोड़े (अग्नि और वायु), साँप-चूहे वग़ैरह (पृथ्वी और अग्नि)।

---

1. जेते दाणे अंन के जीआ बाझु न कोइ ॥ (आ.ग्र.म.1, पृ. 472)

3. तीसरी श्रेणी में पक्षी आते हैं जिनमें तीन तत्त्व — जल, अग्नि और वायु — होते हैं।

4. चौथी श्रेणी में पशु और चौपाये आते हैं, जैसे, गाय, घोड़े आदि। इनमें आकाश तत्त्व को छोड़ कर और सब तत्त्व मौजूद हैं और यही कारण है कि इनमें बुद्धि की कमी होती है।

5. पाँचवीं श्रेणी में मनुष्य आता है जिसके शरीर में पाँचों तत्त्व पूरी मात्रा में मौजूद हैं।

अगर मनुष्य को मारने की सज़ा मौत होती है, तो घोड़े या कुत्ते को मार डालने के लिये फाँसी नहीं दी जाती। आप उसके मालिक को उसका मूल्य देकर शान्त कर सकते हैं। अगर आप एक पक्षी को मारते हैं तो उसके पाप की मात्रा कुत्ते को मारने के पाप से कम है। जो पाप एक चूहे या खरगोश को मारने में है, वह फल तोड़ने या गाजर खाने में नहीं है। इसलिये जब पुराने ऋषियों ने देखा कि काल ने ऐसा इन्तिज़ाम किया है कि एक जीव दूसरे जीव के आहार पर ही ज़िन्दा रह सकता है और साथ ही जीव-हिंसा एक बड़ा भारी पाप भी है, तो उन्होंने तय किया कि ऐसी चीज़ें खाई जायें जिन्हें कम से कम दर्द महसूस होता हो और जिनको खाने में कम से कम पाप लगे। इसलिये उन्होंने शाकाहारी भोजन अपनाया। शाक-सब्ज़ी और फलों में दर्द महसूस करने का माद्दा क़रीब-क़रीब होता ही नहीं है। वे दूसरे प्रकार के जीवों की तरह चीखते या चिल्लाते नहीं हैं। सन्त कहते हैं कि आप खाना खाये बिना तो रह नहीं सकते इसलिये ऐसा भोजन कीजिये जिससे आपको कर्मों का कम से कम बोझ उठाना पड़े, और इस संसार को छोड़ने की भी कोशिश करो जहाँ कि जीव-हिंसा के बिना नहीं रहा जा सकता और जो आपका असली घर भी नहीं है।"

नौजवान बैरिस्टर ने पूछा, "काल ने ऐसी व्यवस्था क्यों की ?"

हुज़ूर ने समझाया, "काल नहीं चाहता कि कोई भी आत्मा उसके जेलख़ाने से, इस संसार से, जिसका वह स्वामी है, निकल कर चली जाये। वह हरएक आत्मा के लिये पूरी लड़ाई करता है।"

पादरी प्रोफ़ेसर ने पूछा, "आप कहते हैं कि शिकार खेलना, मछली मारना या हिंसा बुरी है, तो क्या चीते और बाघ मारना भी बुरा है ?"

हुज़ूर ने कहा, "यह सब परिस्थिति पर निर्भर है। जानवरों को मारना और उन पर ज़ुल्म करना बुरा है, पर कभी ऐसा मौक़ा भी आ

सकता है जब कि उन्हें मारना पड़ जाये। मान लीजिये, एक चीता आपके गाँव के लिये ख़तरा बन जाता है, वह आपके जानवरों को उठा ले जाता है और कई गाँव वालों को मार डालता है। ऐसी हालत में उसको मार डालना मुनासिब हो सकता है। पर केवल अपने शौक़ या मनोरंजन के लिये जानवरों को मारने का ज़रूर हिसाब चुकाना पड़ेगा।"

पादरी ने पूछा, "फ़सल को बर्बाद करने वाले चूहे, खरगोश, टिड्डी और ऐसे कीड़ों-मकोड़ों का क्या किया जाये ?"

हुज़ूर ने उत्तर दिया, "आप उन्हें मार सकते हैं। जहाँ दो बुराइयों में से एक को चुनने का सवाल आता है वहाँ बड़ी बुराई को छोड़ देना चाहिये। आत्म-रक्षा में साँप, शेर-चीते आदि ख़तरनाक जानवर को मारने में पाप नहीं है।"

पादरी, "मांसाहार भी तो कभी-कभी ज़रूरी हो सकता है।"

हुज़ूर महाराजजी, "मांसाहार मनुष्य के दिल को सख़्त और जीवों के प्रति क्रूर व निर्दय बनाता है। वह दया और करुणा की भावना को नष्ट कर देता है और रूहानी चढ़ाई में बाधा डालता है।

"जिन जानवरों का मांस हम खाते हैं क्या उन्हें ऊँची योनियों में पहुँचाने में हम सहायक नहीं होते ?" बैरिस्टर ने पूछा।

हुज़ूर महाराजजी हँसे और बोले, "किसी जानवर को मारने और उसको खाने में आपका ताल्लुक़ सिर्फ़ उसके शरीर तक ही तो है। उसकी आत्मा पर तो आपका कोई अधिकार नहीं है। तरक़्क़ी व मुक्ति आत्मा की होती है न कि शरीर की। क्या उस आत्मा के भाग्य का फ़ैसला आपके हाथ में है जिसके शरीर को आप खा चुके हैं? उसका भाग्य तो किसी बड़ी ताक़त के हाथ में है और वही उसे जहाँ भेजना है, भेजेगा।"

बैरिस्टर ने पूछा, "जब आप मांस खाना मना करते हैं तो चमड़े के जूते या चमड़े की दूसरी चीज़ों का इस्तेमाल क्यों करने देते हैं?"

महाराजजी ने कहा, "मैं नहीं समझता कि जानवरों को चमड़े के लालच से मारा जाता है। कम से कम हिन्दुस्तान में तो ऐसा नहीं होता। यहाँ उन जानवरों की खाल ही काफ़ी होती है जो अपनी मौत मरते हैं। फिर भी, हमें जब इस संसार में रहना है तो कहीं तो लकीर खींचनी ही पड़ेगी। पर यहाँ कुछ ऐसे भी लोग हैं जो चमड़े के जूते नहीं पहनते।"

पादरी प्रोफ़ेसर ने कहा, "बहुत-बहुत शुक्रिया, गुरुजी।"

हुज़ूर महाराजजी ने पादरी-दल से कहा, "मैंने आप लोगों को काफ़ी देर तक जगाये रखा। अब सोने का वक़्त हो गया है।"

"हमने कल तक ठहरने का निश्चय कर लिया है। हममें से एक हमारे प्रमुख को यह ख़बर देने के लिये लाहौर चला जायेगा।" पादरी प्रोफ़ेसर बोला।

"बहुत अच्छा", हुज़ूर ने कहा, "हम कल सुबह नौ बजे मिलेंगे।"

5. सन्तमत के रूहानी अभ्यास

दूसरे दिन सुबह 9 बजे सब हुज़ूर महाराजजी की बैठक में पहुँच गये। उस दिन बहुत ठण्ड थी। हुज़ूर ने अँगीठी जलाने का हुक्म दिया। उन्होंने पादरियों से पूछा कि वे रात को आराम से तो सोये? उन सबने हुज़ूर को अच्छे प्रबन्ध और स्वादिष्ट हिन्दुस्तानी भोजन के लिये धन्यवाद दिया। गेस्ट हाउस (अतिथि-घर) के सामने नदी का दृश्य तथा वहाँ से दिखाई देने वाली दूर हिमालय की बर्फ़ से ढकी चोटियों के नज़ारे उन्हें मोहित कर रहे थे।

पादरी-दल के मुखिया ने कहा, "यहाँ के शान्त और सुखद वातावरण से मन को बड़ी शान्ति प्राप्त होती है।"

इसके बाद बातचीत शुरू हुई।

पादरी प्रोफ़ेसर ने पूछा, "अगर उचित समझें तो क्या आप उन रूहानी अभ्यासों या यौगिक क्रियाओं के बारे में कुछ बतायेंगे जिन्हें सन्तमत के अनुयायी परमात्मा की प्राप्ति के लिये करते हैं?"

"मेरे ख़याल से इन अभ्यासों को गुप्त रखा जाता है। क्या यह सच है?" नौजवान बैरिस्टर ने पूछा।

हुज़ूर महाराजजी ने जवाब दिया, "मैं सारी विधि आपको समझाता हूँ और तब आप खुद निर्णय कर सकते हैं कि हम कुछ गुप्त रखते हैं या नहीं।"

हुज़ूर ने आगे फ़रमाया, "पहली चीज़ जो साफ़ समझ लेनी चाहिये, वह यह है कि नाम प्राप्त करने के लिये किसी ख़ास रीति-रिवाज के पालन की या किसी शास्त्रोक्त विधि को अपनाने या बड़े-बड़े मन्त्रों को याद करने की या धार्मिक पुस्तकों या ग्रन्थों के पाठ की ज़रूरत नहीं। किसी प्रकार के कर्मकाण्ड की आवश्यकता नहीं। नामदान के समय जिज्ञासु को यह याद दिलाया जाता है कि ये रूहानी अभ्यास केवल

परमात्मा को पाने के लिये ही किये जाने चाहियें न कि सांसारिक सुखों की प्राप्ति के लिये।"

बैरिस्टर ने पूछा, "हुज़ूर, क्या इनका कोई सांसारिक इच्छाओं की पूर्ति के लिये भी उपयोग करते हैं? इनसे कौन-से सांसारिक उद्देश्य पूरे हो सकते हैं?"

हुज़ूर ने कहा, "संसार में बहुत-से लोग दौलत, शक्ति, सिद्धि आदि पाने के लिये कई प्रकार के मन्त्रों और साधनाओं को अपनाते हैं। लेकिन परमात्मा के सच्चे खोजी को परमात्मा की प्राप्ति ही अपना ध्येय रखना चाहिये। मालिक ने यह अनमोल मनुष्य-जन्म हमें केवल इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिये दिया है।"

बैरिस्टर ने पूछा, "परन्तु क्या इन साधनों से कोई धन-दौलत या पद प्राप्त कर सकता है ?"

"हाँ, संसार की हर प्रकार की इच्छाओं की पूर्ति के लिये आपको अलग-अलग प्रकार के मन्त्रों व अन्य साधनों का विधान मिलेगा।"

बैरिस्टर, "क्या कोई भी वस्तु पाई जा सकती है! सुन्दर स्त्री हो या दौलत ?"

"हाँ", हुज़ूर महाराजजी ने फ़रमाया, "ये चीज़ें मिल सकती हैं, लेकिन इनकी बड़ी क़ीमत चुकानी पड़ेगी और आपके कर्मों का बोझ बहुत बढ़ जायेगा। इच्छाएँ ही हमारे जन्म-मरण, बन्धन और दुःख का कारण हैं। एक सच्चे खोजी को कभी सांसारिक पदार्थों की इच्छा नहीं करनी चाहिये। ये रूहानी अभ्यास में बहुत बड़ी रुकावट साबित होती हैं। उसे अपनी नज़र मनुष्य-जन्म के असली उद्देश्य — परमात्मा की प्राप्ति — पर ही रखना चाहिये। जो कुछ उसके भाग्य में लिखा है, वह उसे अवश्य मिलेगा और अपने भाग्य पर उसे सन्तोष करना चाहिये। अमीरी-ग़रीबी, सुख-दुःख, मान-अपमान, बीमारी-तन्दुरुस्ती, जो कुछ भी मनुष्य को भुगतना है, सब अपने भाग्य में वह जन्म से ही लिखा कर लाया है।"

राय रोशनलाल ने याद दिलाया कि हुज़ूर सन्तमत के अभ्यासों के बारे में कुछ बताने वाले थे।

"हाँ, थोड़ा-सा विषय बदल गया था। अपने मन से सब इच्छाओं को दूर करके साधक को किसी एकान्त स्थान में या शोर-गुल से दूर

किसी कमरे में बैठना चाहिये। सूर्योदय से 2 या 3 घण्टे पहले के समय को हिन्दू शास्त्रों ने 'ब्रह्ममुहूर्त' कहा है। रूहानी अभ्यास के लिये यह सबसे अच्छा समय है । वैसे तो सब समय ही परमात्मा का है और किसी भी समय, जब भी अभ्यासी को सुविधा हो, परमात्मा को याद किया जा सकता है, लेकिन सुबह के इस समय में कुछ विशेष लाभ हैं जो दूसरे समय में नहीं मिलते।

सुबह के वक़्त हमारा शरीर और मन, रात के आराम के बाद ताज़ा होता है। पिछले दिन की चिन्ताओं और कर्मों को हम भूल जाते हैं। नये दिन के काम का बोझ उस समय तक मन पर हावी नहीं होता। सब तरफ़ शान्ति और मौन छाया रहता है। बाहर यातायात का शोर-गुल शुरू नहीं होता, बाल-बच्चे भी उस समय तक नहीं जागते। किसी मिलने वाले के एकाएक आ जाने की भी कोई सम्भावना नहीं होती। यह शान्त वातावरण भजन के लिये बहुत अच्छा होता है और इस समय हमारे मन की तवज्जह को आसानी से अन्दर की ओर ले जाया जा सकता है। ऐसे शान्त वातावरण में अभ्यासी को चाहिये कि वह अपने मन को स्थिर करके अपने ध्यान को तीसरे तिल पर एकाग्र करे।"

महाराजजी फ़रमाते चले गये, "अब ज़रा ध्यान से सुनिये, हमारे मन और आत्मा का केन्द्र, शरीर के अन्दर दोनों आँखों के पीछे है, इसे तीसरा तिल, तीसरा नेत्र, शिव-नेत्र, अष्टदल-कमल या नुक़्ता-ए-सुवैदा कहते हैं। इसी स्थान से हमारा मन और हमारी आत्मा शरीर के नौ दरवाज़ों से बाहर निकल कर सारे संसार में फैल गये हैं। शरीर के नौ दरवाज़े हैं — दो आँखें, दो कान, दो नाक के छिद्र, एक मुँह और दो नीचे के द्वार। हमें अपनी इस बिखरी व फैली हुई तवज्जह को सब तरफ़ से समेट कर वापस उसी केन्द्र पर लाना है जहाँ से यह निकली थी। मन को इस जगह लाकर स्थिर और पूर्णतया अचल बना लेना है।

महात्माओं ने इसमें सफलता पाने के लिये, मन की आदत का ख़ूब अध्ययन किया है। उन्होंने देखा कि मन हर वक़्त सांसारिक पदार्थों का सिमरन और ध्यान करता रहता है। आप सबने देखा होगा कि जब आप बिलकुल शान्त और ख़ामोश बैठे हों तब भी आपका मन हमेशा कुछ न कुछ अन्दर ही अन्दर सोचता रहता है, मनन करता रहता है या किसी न किसी ख़याल में बराबर लगा रहता है। यह कभी स्थिर नहीं बैठता। हर मिनट यह एक वस्तु से दूसरी वस्तु पर दौड़ता रहता है। सन्त मन

की इस आदत का फ़ायदा उठाते हैं। वे इसे सांसारिक पदार्थों के सिमरन के स्थान पर परमात्मा के नाम के सिमरन में लगाते हैं। सन्तमत के अभ्यास में सबसे पहली और ज़रूरी बात है, परमात्मा के नाम का सिमरन। यह सिमरन लगातार, बिना रुके, बिना टूटे होते रहना चाहिये ताकि मन को इधर-उधर भटकने का मौक़ा ही न मिले। सिमरन के समय हमारी तवज्जह दोनों आँखों के बीच में रहनी चाहिये। यह अभ्यास कभी भी और कहीं भी चुपचाप किया जा सकता है। इसमें कोई कठिनाई नहीं आती। इस सम्बन्ध में पूरी हिदायतें नामदान के समय दी जाती हैं।

आपने यह भी देखा होगा कि जब मन किसी चीज़ का ख़याल करता है तो उस चीज़ का आकार और रूप भी उसके सामने आ जाता है। इसे ध्यान कहते हैं। सन्त सांसारिक वस्तुओं के ध्यान के स्थान पर सतगुरु का ध्यान बतलाते हैं। गुरु अर्जनदेव ने कहा है :

अकाल मूरति है साध संतन की ठाहर नीकी धिआन कउ ॥

(आ.ग्र.म. 5, पृ.1208)

अर्थात्, सन्तों का दिव्य स्वरूप ध्यान के लिये उत्तम आधार है। ध्यान के बाद अनहद शब्द या दिव्य-धुन को सुना जाता है। संक्षेप में रूहानी अभ्यास का यही सार है। पहले सिमरन, फिर ध्यान, फिर धुन (आत्मा को उस दिव्य-धुन से जोड़ना)। सिमरन के द्वारा हम बाहरी वस्तुओं से तवज्जह को समेट कर अन्तर में तीसरे तिल पर एकाग्र करते हैं। ध्यान के द्वारा हमारी तवज्जह वहाँ ठहरती है और दिव्य-धुन की सहायता से आत्मा ऊपर के मण्डलों पर चढ़ती है।"

पादरी प्रोफ़ेसर बोला, "यह बात उचित और तर्कपूर्ण मालूम होती है।"

"सन्त अंध-विश्वास करने के लिये नहीं कहते। वे दावे के साथ कहते हैं कि मनुष्य इस मार्ग पर चल कर यह सब ख़ुद अपनी आँखों से देख सकता है", हुज़ूर ने फ़रमाया।

नौजवान बैरिस्टर ने पूछा, "क्या इन अभ्यासों के लिये कोई ख़ास आसन होते हैं?"

हुज़ूर ने जवाब दिया, "शब्द को सुनने के लिये एक ख़ास आसन अधिक सुविधापूर्ण और उपयुक्त है, परन्तु आसन का यहाँ कोई ख़ास महत्त्व नहीं है। मनुष्य किसी भी सरल और आराम-देह आसन में बैठ सकता है। मन की एकाग्रता महत्त्वपूर्ण है, आसन नहीं।"

एक पादरी ने पूछा, "मैं एक सवाल पूछ सकता हूँ? हिन्दुओं का पुनर्जन्म और आवागमन का सिद्धान्त मुझे बड़ा उलझनपूर्ण लगता है। आदमी नीचे गिर कर जानवर का जन्म ले सकता है और जानवर मनुष्य का जन्म धारण कर सकता है, इसी तरह जूनें बदलता रहता है। यह सब-कुछ मेरी समझ में नहीं आता।"

हुज़ूर ने फ़रमाया, "लेकिन वास्तव में संसार में रोज़ जो हम उलझन भरी और समझ में न आने वाली बातें देखते हैं, उनका एकमात्र तर्कपूर्ण जवाब यही है। हम हर रोज़ विचित्र बातें देखते हैं कि एक बच्चा तो धनी परिवार में सोने के पालने में पैदा होता है, तो दूसरा ऐसे घर में जहाँ न उसके नीचे बिछाने को चादर है और न उसे ढकने के लिये कपड़ा! कुछ लोग जन्म से ही अन्धे, लंगड़े या मूर्ख होते हैं, कुछ जन्म से ही अपराधी वृत्ति के होते हैं और कुछ बच्चे बेहद ग़रीबी के कारण उनके माँ-बाप द्वारा सड़क पर फेंक दिये जाते हैं। कुछ लोग सुन्दर रूप-रंग और दिमाग़ लेकर आते हैं और धन-दौलत में पलते हैं। यह भी देखने को मिलेगा कि कहीं-कहीं आदमियों के बच्चों की बनिस्बत कुत्ते और बिल्ली के बच्चे ज़्यादा अच्छी तरह पाले जाते हैं।

कहीं-कहीं हम देखते हैं कि ग़रीब परिवार का अकेला रोटी कमाने वाला भी दुनिया से उठा लिया जाता है और उसके बाल-बच्चे अनाथ व बेसहारा हो जाते हैं, जबकि दूसरी ओर एक बूढ़े आदमी के पास अपार धन-दौलत है जिसे भोगने के लिये उसकी कोई सन्तान नहीं है। एक ही मकान में एक नौजवान अपनी सुन्दर पत्नी को विधवा बना कर छोड़ जाता है जो उम्र-भर रोती रहती है, दूसरी ओर उसी मकान में एक बुढ़िया है जिसे कोई नहीं चाहता और जो बरसों से मौत के द्वार पर झूल रही है, पर मरती नहीं। वह इस दुःख-पूर्ण ज़िन्दगी से छुटकारे के लिये प्रार्थना करती है पर उसकी प्रार्थना मंज़ूर नहीं होती। एक बालक जन्म से ही कोढ़ी पैदा होता है तो दूसरा गूँगा और बहरा।"

हुज़ूर महाराजजी ने पूछा, "यह सब क्यों होता है? इन गुत्थियों का क्या जवाब है? क्या परमात्मा मनमानी करता है ? या वह एक के साथ पक्षपात करता है और दूसरे के साथ बेरहमी? या क्या परमात्मा ग़लती कर बैठता है और बाद में खुद ही अफ़सोस करता है? केवल कर्म-सिद्धान्त या पुनर्जन्म का सिद्धान्त ही इसका सन्तोषजनक उत्तर देता है। हमारा यह मौजूदा जीवन तो उस एक बड़े लम्बे अनन्त जीवन

का छोटा-सा हिस्सा है जिसमें आत्मा को अनेक जूनों में से गुज़रना पड़ता है और तरह-तरह के अनुभव करने पड़ते हैं। ये अनुभव आत्मा की उन्नति या विकास के लिये ज़रूरी होते हैं। मृत्यु तो आत्मा के द्वारा अपना लिबास बदलने का नाम है। उसे एक नई देह मिलती है, जिसमें उसे अपने कर्मों के अनुसार वे अनुभव होते हैं जो उसकी असली उन्नति के लिये ज़रूरी हैं।

जब मनुष्य मरता है तो वह केवल एक कार्य-क्षेत्र से दूसरे में भेज दिया जाता है। पर उसके पिछले कर्मों का हिसाब उसके साथ जाता है। जहाँ भी वह जायेगा, यह कर्मों का हिसाब उसे चुकाते रहना पड़ेगा। क़ुदरत बड़ा सख़्त साहूकार है। जो क़र्ज़ आपने उठाये हैं, उनके भुगतान से आप बच नहीं सकते। दुनिया के सब ही धर्मों ने इस सिद्धान्त को माना है कि जैसा बोओगे वैसा काटोगे। मनुष्य अपने कर्मों के फल पाता ही है। वह अपने किये कर्मों के फल का ख़ुद ज़िम्मेदार होता है। यही कर्मों का क़ानून या कर्म-सिद्धान्त है और पुनर्जन्म का सिद्धान्त इसके साथ जुड़ा हुआ है। पुनर्जन्म के बिना यह अधूरा रह जाता है। हम सब लगातार कर्म करते जा रहे हैं और इस तरह नया क़र्ज़ लेकर अपना बोझ बढ़ा रहे हैं। ये सब क़र्ज़े चुकाने होंगे। इससे बचने का कोई रास्ता नहीं है। एक जन्म में हम कर्मों का इतना क़र्ज़ लाद लेते हैं जिसे उसी जन्म में या केवल एक ही जन्म में चुकाना असम्भव है।"

नौजवान बैरिस्टर ने पूछा, "हुज़ूर, यह असम्भव क्यों है ?"

हुज़ूर ने कहा, "मान लीजिये कि एक मनुष्य शिकार खेलने का शौक़ीन है और वह अपने जीवन में सौ जानवरों को मारता है। यह भारी क़र्ज़ केवल तब ही चुकेगा जब कि वे सब जानवर अपनी-अपनी बारी से उस शिकारी की जान ले लेंगे। सो केवल एक बुरी आदत की वजह से जमा किये कर्मों का हिसाब चुकाने में उसे सौ जन्म लगेंगे। क़ुदरत ने अपना यह पुराना क़ानून बदला नहीं है कि ज़िन्दगी के बदले ज़िन्दगी और आँख के बदले आँख देनी पड़ती है। वह क़ानून अब भी पूरी तरह से लागू है। इसलिये, कर्मों का हिसाब चुकाना ही पड़ेगा। अगर वह मृत्यु से पहले नहीं चुक पाया तो क़र्ज़दार को इसे चुकाने के लिये दोबारा जन्म लेना ही पड़ेगा। केवल चोले के बदलने से क़र्ज़दार को माफ़ी नहीं मिलती। उसके कर्मों का सारा लेखा, उसका लेना-देना सब

उसके अन्तःकरण पर अमिट रूप से लिखा जाता है। कर्मों के इस खाते को न तो झूठा साबित किया जा सकता है, न बदला जा सकता है और न ही नष्ट किया जा सकता है। इसमें दर्ज की हुई पाई-पाई चुकानी पड़ेगी। हर अच्छे काम का इनाम या बुरे काम की सज़ा उठानी ही पड़ेगी।"

बैरिस्टर ने पूछा, "हमें सज़ा क्यों मिलती है?"

हुज़ूर ने जवाब दिया, "हमारी भलाई के लिये, हमारे सुधार के लिये, हमारे पापों की सफ़ाई के लिये।"

बैरिस्टर ने पूछा, "हमें याद नहीं कि हमने पिछले जन्मों में क्या कर्म किये और हमें किस बात की सज़ा दी जाती है। उस सज़ा का क्या फ़ायदा जब कि सज़ा पाने वाले को अपना क़ुसूर ही याद न हो?"

हुज़ूर महाराजजी ने बताया, "सज़ा का असर ऐसा होता है कि अन्तःकरण में उसकी अमिट छाप पड़ जाती है। आगे के जन्मों में आत्मा उन कर्मों से वैसे ही डरती है जैसे कोई ज़हरीले साँप से डरता है। वह मनुष्य अपने आप उन कर्मों से बचता रहता है और उसके दिल में उन कर्मों के प्रति क़ुदरती नफ़रत पैदा हो जाती है।"

"यह तो कोरे विश्वास की बात लगती है। क्या यह साबित की जा सकती है?" बैरिस्टर ने पूछा।

हुज़ूर ने उत्तर दिया, "हाँ, उन लोगों के ज़बानी और लिखित प्रमाणों से सिद्ध किया जा सकता है जिन्हें सूक्ष्म जगत के कारोबार को देखने वाली आन्तरिक आँख मिल गयी है।"

"क्या यहाँ कोई ऐसा शिष्य है जिसे यह आन्तरिक आँख मिल गयी है और जो हमें अपना ऐसा कोई अनुभव सुना सके?" बैरिस्टर ने फिर पूछा।

महाराजजी ने फ़रमाया, "यहाँ ऐसे बहुत-से लोग हैं, पर वे अपने आपको रोशनी में लाना नहीं चाहेंगे।"

बैरिस्टर ने कहा, "इसमें उनके मशहूर होने का तो कोई सवाल नहीं है। इससे केवल इस बारे में मेरी जिज्ञासा शान्त हो जायेगी।"

महाराजजी ने पूछा, "वे लोग तो सिर्फ़ अपना अनुभव बतायेंगे और जो कुछ देखा है, कह देंगे। लेकिन इससे आपको यह तसल्ली कैसे होगी कि वे सच कह रहे हैं?"

"मुझे उनके कथन से ही सन्तोष हो जायेगा, बैरिस्टर बोला।

"तब आप मेरे कहने पर क्यों नहीं विश्वास कर लेते?" हुज़ूर ने मुसकराते हुए पूछा।

इस पर सब हँस पड़े।

हुज़ूर ने कहा, "अच्छी बात है, दरियाईलाल आपको एक बीबी के पास ले जायेंगे जिसे हाल ही में कुछ ऐसे अनुभव हुए हैं।"

वहाँ मौजूद दूसरे लोगों ने और ख़ासकर अमेरिकन पादरियों ने भी उस महिला को देखने की इच्छा ज़ाहिर की। इस पर हुज़ूर महाराजजी ने मुझे हुक्म दिया कि जाकर बीबी रक्खी को कुछ देर के लिये बुला लाऊँ।

उसके बाद, बीबी रक्खी ने अपने अनुभव सुनाये और मैंने उसका अंग्रेज़ी में अनुवाद करके सुनाया, क्योंकि उनमें कुछ लोग बीबी रक्खी की बोली नहीं समझते थे। इस मुलाक़ात के बाद वे सब सन्तुष्ट हो गये।

बैरिस्टर ने आगे पूछा, "क्या स्वर्ग और नरक में भी आत्मा कोई देह धारण किये रहती है?"

हुज़ूर महाराजजी ने जवाब दिया, "हाँ! लेकिन वहाँ ऐसी स्थूल देह नहीं होती, सूक्ष्म शरीर होते हैं, जो सुख-दुःख का अनुभव भी करते हैं।"

बैरिस्टर ने प्रश्न किया, "क्या सूक्ष्म शरीर मृत्यु के बाद बदल जाता है? मान लीजिये कि एक मनुष्य मृत्यु के बाद कुत्ते के रूप में जन्म लेता है, तो क्या उसका सूक्ष्म शरीर भी उसके अनुसार बदल जायेगा?"

हुज़ूर ने उत्तर दिया, "सूक्ष्म शरीर मन की सूक्ष्म प्रवृत्तियों, कामनाओं और संस्कारों से बनता है, जो आसानी से नहीं बदलते। पानी को चाहे जिस पात्र में डाला जाये, वह उसी का आकार ले लेता है। इसी प्रकार सूक्ष्म शरीर हर तरह के स्थूल शरीर में ठीक बैठता है, चाहे उस स्थूल शरीर का रूप या आकार कुछ भी हो।"

बैरिस्टर ने पूछा, "क्या कभी यमदूत ग़लती से सत्संगियों को भी नरक में ले जाते हैं?"

हुज़ूर ने उत्तर दिया, "नहीं, जिसे पूरे गुरु से नाम मिल चुका है, यमदूत उसके पास आने की भी हिम्मत नहीं करते। यहाँ तक कि उनका स्वामी यम भी सतगुरु के शब्द से डरता है। अगर वे किसी सत्संगी को

ले जायें तो ख़ुद सतगुरु को उन्हें छुड़ाने के लिये वहाँ जाना पड़ेगा और उसका नतीजा होगा कि तमाम नरकवासियों को वहाँ से फ़ौरन रिहाई मिल जायेगी और नरक ख़ाली हो जायेगा। यमराज नहीं चाहता कि ऐसा हो।"

"आख़िर यह दुःखदायी यम और यमदूत बनाये ही क्यों गये?" बैरिस्टर ने सवाल किया।

हुज़ूर ने जवाब दिया, "अगर आपको किसी बदमाश या डाकू को गिरफ़्तार करना है तो उसके लिये पुलिस की सेवाएँ चाहियें। क़ानून तोड़ने वालों को सज़ा देने के लिये पुलिस का महकमा उतना ही ज़रूरी है जितने कि दूसरे लोक-कल्याण के महकमे। क्या यह सही नहीं है?"

एक पादरी ने कहा, "संसार में अच्छे और बुरे दोनों तरह के इनसान होते हैं और परमात्मा का दोनों से वास्ता पड़ता है।"

बैरिस्टर बोला, "मुझे तो ऐसा लगता है कि स्वर्ग और नरक के क़िस्से किसी कल्पनाशील मनुष्य ने शरारती बच्चों को डरा कर भलाई के रास्ते पर लाने के लिये घड़े हैं।" इस पर सब लोग हँस पड़े।

हुज़ूर महाराजजी ने फ़रमाया, "नहीं, ऐसा नहीं है। सब धर्मों के सन्तों-महात्माओं ने इस सच्चाई का वर्णन किया है। और सन्त कभी मनघड़ंत बातें नहीं किया करते। वे वही कहते हैं जो अपनी आँखों से देखते हैं।"

एक पादरी ने कहा, "जब किसी गुज़रे हुए महात्मा द्वारा कही गई बात को हर देश व काल के महात्मा सही बतलाते हैं तो वह बात अवश्य ही महत्त्वपूर्ण और प्रामाणिक मान ली जानी चाहिये।"

हुज़ूर ने आगे फ़रमाया, "ताज्जुब तो इस बात का है कि लोग यह सोचते हैं कि कुछ भी उनकी बुद्धि की पहुँच से परे नहीं है। वे नहीं जानते कि ऐसे भी लोक और मण्डल हैं जो उनकी बुद्धि की पहुँच और समझ के बाहर हैं।"

इस पर मुसलमान डॉक्टर ने टिप्पणी की, "इनसान की इस छोटी व महदूद अक़्ल ने एक ही क़ुरान शरीफ़ के मानने वालों को 72 फ़िरक़ों में बाँट दिया और ईसा मसीह के मानने वालों में अनेक पंथ चला दिये।"

पादरियों में से एक ने हुज़ूर महाराजजी को याद दिलाया कि आप पुनर्जन्म के बारे में कुछ फ़रमा रहे थे।

हुज़ूर महाराजजी ने कहा, "हाँ, आप जानना चाहते थे कि इनसान को नीची और ऊँची योनियों में जन्म क्यों मिलता है। क़ुदरत कोई भी काम बग़ैर मतलब के नहीं करती। जब वह देखती है कि एक आदमी पर शिकार और जीव-हत्या करने का भूत सवार है, तो वह उसे तुरन्त वह चोला दे देती है (जैसे शेर व बाघ का) जिसमें वह आसानी से अपनी इस भूख को जी-भर कर मिटा सके। अगर किसी मनुष्य में पाशविक या हैवानी वृत्तियाँ बहुत ज़्यादा होती हैं और वह दुर्लभ मनुष्य-जन्म की कोई क़द्र नहीं करता और जानवरों की तरह काम करता है तो फिर क़ुदरत उसे उन नीच योनियों में क्यों न भेजेगी जिनके लायक़ उसका चाल-चलन है ? उस जून में उसके अनुभव उसकी उन्नति में सहायक होंगे। आपने ऐसे कुत्तों, बिल्लियों या दूसरे जानवरों को देखा होगा जिनका व्यवहार कई आदमियों के व्यवहार से कहीं अच्छा होता है। क्या ऐसी योग्य आत्माओं को परमात्मा मनुष्य-जन्म देने की दया नहीं करेगा ? क़ुदरत उन्हें जो सबक़ सिखाना चाहती थी, उसे वे अच्छी तरह सीख चुके हैं कि मनुष्य-जन्म में आकर जानवरों जैसा क्रूर व हिंसक बरताव करना अच्छा नहीं। असल में ये बातें अनुभव के द्वारा जानने की हैं, केवल बुद्धि और तर्क के द्वारा इन्हें नहीं समझा जा सकता।"

"यह बात सही है", पादरी प्रोफ़ेसर ने स्वीकार किया।

बैरिस्टर ने कहा, "अगर हमारी मुसीबतें, बीमारियाँ और तकलीफ़ें हमारे पिछले कर्मों की वजह से ही हैं तो हमारी ओर से उनको दूर करने के लिये कोई कोशिश और उपाय करने का सवाल ही पैदा नहीं होता ?"

"नहीं, ऐसा नहीं है", हुज़ूर महाराजजी ने कहा, "अगर ये पिछले कर्मों की वजह से हैं, तो भी इसका यह अर्थ नहीं है कि हम इनसे छुटकारा पाने का कोई प्रयत्न ही न करें। उनमें से कुछ हमारी इस जन्म की ग़लती या किसी कर्म के कारण हो सकते हैं और हो सकता है कि उनका आसानी से उपाय किया जा सके। अगर हम अपनी तकलीफ़ और मुसीबत को दूर करने के लिये कुछ कोशिश करते हैं तो हमारे मन को कुछ सन्तोष मिलता है और इन्हें हम धीरज के साथ सहन कर लेते हैं।"

पादरी प्रोफ़ेसर ने कहा, "गुरुजी, हमने आपका बहुत समय लिया है और आपने बहुत शान्ति के साथ हमारे सवालों का जवाब दिया है। क्या मैं केवल एक और सवाल पूछ सकता हूँ ?"

हुज़ूर महाराजजी ने उत्तर दिया, "हाँ, बड़ी ख़ुशी के साथ। यह तो मेरा कर्तव्य है और सच्चे जिज्ञासु के सवालों के जवाब देने में मुझे बड़ी ख़ुशी होती है।"

तब पादरी ने पूछा, "हुज़ूर, क्या आप वेदान्त पर कुछ प्रकाश डालेंगे ? यह योग और सन्तमत से कितना भिन्न है ?"

हुज़ूर ने फ़रमाया, "भारतीय दर्शन के छः अंग हैं। इन्हें 'षट् दर्शन' कहा जाता है और वेदान्त उनमें से एक है। योग भी 'षट् दर्शनों' में से एक है, पर यह वेदान्त से बिलकुल भिन्न है। इन षट् दर्शनों में से किसी को भी सन्तमत का पता नहीं। सन्तमत की गति इन सबसे ऊँची है। सन्तमत इससे कहीं आगे निकल जाता है। मूल रूप में वेदान्त-सूत्र ऋषि बादरायण व्यास का लिखा हुआ है। लेकिन बाद में शंकराचार्य ने वेदान्त में अद्वैतवाद की स्थापना की जिसके अनुसार परमात्मा ही सत्य है और बाक़ी सब-कुछ नश्वर और अस्थिर माया है।

"यह रामानुजाचार्य (1017-1137 ई) के विशिष्टाद्वैत से अलग है, जो परमात्मा के गुणों को भी सत्य और स्थायी मानता है। द्वैतवादी विश्वास करते हैं कि आत्मा और परमात्मा अलग-अलग हैं जब कि अद्वैतवादी इन्हें एक ही मानते हैं। उनकी मान्यता है कि सिवाय परमात्मा के और कोई नहीं है। 'एको ब्रह्मः द्वितीयो नास्ति' — केवल एक ब्रह्म ही है, दूसरा कोई भी नहीं। चारों ओर का यह पसारा केवल माया है, भ्रम है, सपना है। इस माया की उत्पत्ति अज्ञान से है और यह उस परम ज्योति को उसी तरह ढक देती है जिस तरह धुआँ आग से ही निकलता है पर आग की लौ या ज्योति को ढक देता है।"

महाराजजी फ़रमाते चले गये, "हमारी आत्मा पर्दों या आवरणों से ढकी हुई है। मनुष्य-जन्म का असली उद्देश्य आत्मा पर से इन पर्दों को हटा कर उसे परमात्मा में मिला देना है। फ़र्क़ केवल तरह-तरह के मतों की उन विधियों और तरीक़ों का है जिन्हें वे अज्ञान के इन पर्दों को हटाने के लिये काम में लाते हैं। वेदान्त ज्ञान-मार्ग अथवा बुद्धि और तर्क के मार्ग को ग्रहण करता है। लेकिन परमात्मा तो चाहता है कि हम

तर्क-वितर्क के रास्ते को छोड़ कर तीव्र प्रेम व भक्ति के पंखों के सहारे उसकी ओर उड़ चलें। बुद्धि तो हमें केवल इस संसार के काम-काज करने के लिये दी गई थी। यह उस असीम और अगम को समझने के लिये बहुत सीमित और कमज़ोर है।

वेदान्ती 'नेति-नेति' का मार्ग अपनाता है। वह अपने आप को समझने की कोशिश करता है और खुद को शरीर, मन, प्राण आदि से अलग करने का प्रयास करता है। वह तर्क के द्वारा अपने आप को यह विश्वास दिलाने की कोशिश करता है कि वह शरीर नहीं है, न शरीर को चलाने वाला प्राण है और न प्राणों को गति देने वाला मन है। वह आत्मा है, शरीर, प्राण और मन को जीवन और स्फूर्ति देने वाली सच्ची चेतन सत्ता है। यह चेतन सत्ता ही परम आत्मा है, ब्रह्म है, सम्पूर्ण सृष्टि का कर्त्ता है। वेदान्ती कहते हैं, 'एक आत्मा की अलग हस्ती मिथ्या या झूठ है। मैं ही संसार और संसार का कर्त्ता हूँ। मैं परम चेतनता का समुद्र हूँ और यह संसार इसकी लहरें, ज्वार-भाटा तथा फेन है।' अज्ञान से उत्पन्न हुई माया के कारण ही मनुष्य स्वयं ब्रह्म होते हुए भी अपने आप को तुच्छ और हीन समझता है।

लेकिन यह सब कहना तो आसान है, पर केवल बाल की खाल निकालने वाले तर्क के द्वारा विश्वास करना कठिन है। इसलिये बाद के आचार्यों ने अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिये पातंजल-योग (प्राणायाम) की मदद ली। मध्वाचार्य और उनके कुछ समय बाद ज्ञानेश्वर ने यह घोषणा की कि केवल भक्ति-मार्ग ही मुक्ति दिला सकता है।"

नौजवान बैरिस्टर ने कहा, "अपने आप को ब्रह्म कहने का ख़याल मुझे बहुत अच्छा लगता है। भक्त बनने के बजाय परमात्मा ही क्यों न बना जाये ? पुत्र के बजाय पिता होना हमेशा बेहतर है।"

हुज़ूर महाराजजी मुसकराये और बोले, "यह ज्ञान का मार्ग बहुत मुश्किल और ख़तरनाक है। गोस्वामी तुलसीदास जी भी कहते हैं, 'ज्ञान-पंथ कृपान कै धारा' अर्थात् ज्ञान के मार्ग पर चलना तलवार की धार पर चलना है। करोड़ों में से कोई बिरला ही ज्ञान-मार्ग से अपने उद्देश्य को प्राप्त कर पाता है। यह मार्ग हरएक के लिये नहीं है। व्यास, वशिष्ठ और शंकराचार्य जैसे कोई सिद्ध-पुरुष ही कामयाब हों तो हों।"

"क्या आत्मा परमात्मा का पुत्र नहीं है और क्या वह कुछ सीमित रूप में स्वयं परमात्मा ही नहीं है ?"नौजवान बैरिस्टर ने पूछा।

हुज़ूर ने जवाब दिया, "हाँ, बेशक आत्मा उसी परम तत्त्व का अंश है, पर यह आज़ाद नहीं, ज़ंजीरों में जकड़ी हुई बन्दिनी है जिसे हमेशा मन और इन्द्रियों के इशारों पर नाचना पड़ता है। क्या परमात्मा का ऐसा बन्धनों में जकड़ा और बेबस पुत्र (हमारी आत्मा) दुनिया के प्रलोभनों का सामना कर सकता है या वासना के हमलों का मुक़ाबला कर सकता है? हम सब जानते हैं कि किस प्रकार हम मन और इन्द्रियों के हाथों का खिलौना बन जाते हैं। चाहे हम अपनी कमज़ोरियों और गुनाहों को मंज़ूर न करें, पर अपने दिल में हम जानते हैं कि किस प्रकार हम मामूली से प्रलोभनों के सामने फिसल जाते हैं। फिर हम अपने आप को परमात्मा या उसका पुत्र कहने की हिम्मत कैसे कर सकते हैं? हाँ, कभी आप शहंशाह रहे होंगे, पर आज तो वह शहंशाह दुश्मनों की फ़ौज (काम, क्रोध आदि) के हाथों में क़ैद है। दुश्मनों की क़ैद में पड़े हुए, अपने पुराने वैभव के गीत गाना कौन-सी बुद्धिमानी है। यह तो दुश्मनों से अपनी हँसी और मज़ाक़ उड़वाना है।"

बैरिस्टर ने पूछा, "हुज़ूर, हम इन प्रलोभनों का मुक़ाबला क्यों नहीं कर पाते?"

"क्योंकि हमारी आत्मा इतनी कमज़ोर हो गई है कि वह मन से लड़ने की सारी शक्ति खो चुकी है। जब तक हम एक-एक करके इसकी सब बेड़ियाँ नहीं तोड़ फेंकते, इसे जेल की काल-कोठरी से निकाल कर बाहर साफ़ हवा में नहीं ले आते, उचित प्रकार के कवच और हथियारों से लैस नहीं करते और जब तक इसको अस्त्र-विद्या सिखाने वाले किसी शिक्षक की शरण में नहीं लाते, तब तक यह अपने खोये हुए पुराने वैभव को कैसे प्राप्त कर सकती है?"

"तब हमारा 'सोहं-सोहं' पुकारना बिलकुल बेकार है", बैरिस्टर ने कहा।

महाराजजी ने जवाब दिया, "सोहं का अर्थ है — 'मैं वही हूँ।' पर इसका तात्पर्य उस आत्मा से नहीं है जो यहाँ शरीर में बन्द है और मन के वश में है। 'सोहं' तो रूहानी चढ़ाई में एक निश्चित पड़ाव है। यह 'सोहं' उन लोगों का ज़बानी जमा ख़र्च वाला 'सोहं' नहीं जो ख़ुद अधूरे और बुरी तरह बेड़ियों से जकड़े हुए होने पर भी अपने आप को साक्षात् ब्रह्म पुकारते हैं।

मैं आपको और खोल कर समझाता हूँ। इस समय पहले तो हमारी आत्मा स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों के तीन कोट वाले क़िले में क़ैद है। उसके बाद इसे मन, माया, तीन गुण, पाँच तत्त्व और पच्चीस प्रकृतियों ने बड़ी बुरी तरह अपनी ज़ंजीरों में जकड़ रखा है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार और वासनाओं ने इसे गुलाम बना रखा है। जब तक मनुष्य पूर्ण गुरु की रहनुमाई में अपनी आत्मा को नौ द्वारों से समेट नहीं लेता, आत्मा पर चढ़े तीनों खोलों को नहीं उतार फेंकता, भारी बेड़ियों को दूर नहीं कर देता, मन और माया को परास्त नहीं करता और सतलोक के ऊँचे आध्यात्मिक मण्डलों में पहुँच कर सत्पुरुष से अपनी एकता का अनुभव करके खुशी के साथ नहीं पुकार उठता 'सोहं' अर्थात् मैं वही हूँ, तब तक उसका 'सोहं'-'सोहं' रटते रहना उस बहुरूपिये के समान है जो कि राजा का स्वाँग भरता है। जब मनुष्य उन ऊँचे रूहानी मण्डलों में पहुँचता है जहाँ पहुँच कर वह अनुभव कर लेता है कि वह और परमात्मा दोनों एक ही हैं, भले ही एक समुद्र और दूसरा उसकी बूँद है, तब उसका सोहं कहना ठीक है, उससे पहले नहीं।"

बैरिस्टर ने कहा, "बिलकुल ठीक है, हुज़ूर। मैं बेकार ही खुदा बनने चला था, मैं अपने उस दावे को छोड़ता हूँ।"

"एक योग्य वकील की तरह आप जानते हैं कि कहाँ और कब हार मान लेनी चाहिये", हुज़ूर बोले और इस पर सब लोग ज़ोर से हँस पड़े। "अगर एक हम्माली करने वाला ग़रीब कुली लन्दन की सड़कों पर अपने आप को अंग्रेज़ों का बादशाह पुकारने लगे तो उसे फ़ौरन ही पागलख़ाने भेज दिया जायेगा।"

बैरिस्टर ने कहा, "हमारा मन हमसे अजीब-अजीब बातें करवा लेता है।"

हुज़ूर महाराजजी ने फ़रमाया, "हमें किसी सच्चे गुरु से मार्ग लेकर उन पर्दों को, जो आत्मा को ढके रहते हैं, हटा देना चाहिये। तब आत्मा का प्रकाश प्रकट हो जायेगा और वह अपनी पूरी ज्योति में चमकने लगेगी। केवल यह दावा करने से कि 'हम ईश्वर हैं', हम ईश्वर नहीं बन जाते। हमें अपने खोये हुए ईश्वरत्व को फिर से पाने के लिये उचित उपाय करने चाहियें।"

बैरिस्टर ने कहा, "वेदों के अनुसार तो ब्रह्म से ऊपर कुछ नहीं है।"

"वेद केवल तीन गुणों — सत, रज, तम — (तत्त्वों के गुणों और लक्षणों) की ही बात करते हैं, जिनका काम संसार की उत्पत्ति, पालन और नाश करना है। वेद उस सर्वशक्तिमान के बारे में कुछ नहीं कहते जो ब्रह्म को भी प्रकाश और सत्ता प्रदान कर रहा है। भगवान श्री कृष्ण गीता (अध्याय 2, श्लोक 45) में अर्जुन से कहते हैं कि वेद केवल तीन गुणों के विषय का वर्णन करते हैं। यदि तू सत्य को जानना चाहता है तो इन तीन गुणों से ऊपर उठ।"[1]

"वेदान्त तो काफ़ी कठिन विषय मालूम देता है," बैरिस्टर ने कहा।

हुज़ूर महाराजजी बोले, "वेदान्त के शास्त्रों के अनुसार वेदान्त का अध्ययन करने का अधिकारी वही होता है जो नौ शर्तें पूरी करता है। इसका अर्थ यह हुआ कि वेदान्त का अध्ययन थोड़े ही लोग कर सकते हैं। अधिकारी के अन्दर ये गुण होने चाहियें :

1. विवेक : साफ़-साफ़ सोचने, परखने और अनुभव करने की शक्ति जिससे सत्य, अनन्त और अविनाशी का पता लग जाये और यह भी समझ में आ जाये कि असत्य, नश्वर और मिथ्या क्या है। उसे ज्ञान होना चाहिये कि आत्मा ही सत्य है, बाक़ी सब मिथ्या है।

2. वैराग्य : संसार और उसके सब पदार्थों से अनासक्ति होना; स्त्री, बच्चे, धन, दौलत से उदासीन होना और यह मानना कि ये सब झूठ, चलायमान और भ्रम हैं।

3. षट् सम्पत्ति : छः प्रकार के सद्गुण :

(क) शम — मन का सन्तुलित और स्वभाव का शान्त होना, चित्त में स्थिरता (मन का पूरी तरह से क़ाबू में होना)।

(ख) दम — इन्द्रियों पर क़ाबू रखना।

(ग) उपरति — संसार के कामों में उदासीनता, कर्मों में वैराग्य भाव होना; रीति-रिवाजों के अनुसार किये जाने वाले पूजा-पाठ से छुट्टी पा लेना।

(घ) तितिक्षा — सहन करने की शक्ति, मुसीबतों को धीरज के साथ सहन करना।

(च) श्रद्धा — गुरु के वचनों में पूर्ण विश्वास।

---

1. त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।

(छ) समाधान — मन की सजगता और एकाग्रता।

4. **मुमुक्षा** — मुक्ति अथवा परमात्मा की प्राप्ति की प्रबल इच्छा।

जिसका इन गुणों पर पूर्ण अधिकार है वही मनुष्य वेदान्त पढ़ने का अधिकारी माना गया है। अब बतलाइये, यहाँ बैठे हुए हम सबमें से किसके अन्दर ये सब गुण हैं ? मान लीजिये, बहुत तेज़ बुद्धि वाले कुछ इने-गिने लोग वेदान्त के अध्ययन से फ़ायदा उठा सकते हैं, पर इतने बड़े संसार में विचरने वाले दूसरे करोड़ों-अरबों लोगों के लिये क्या है ? क्या वे परमात्मा की कृपा पाने के अधिकारी नहीं हैं ? मालिक से मिलने का रास्ता तो ऐसा होना चाहिये जिस पर हर आदमी आसानी से चल सके, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, पढ़ा-लिखा हो या अनपढ़, बुद्धिमान हो या मूर्ख। केवल भक्ति-मार्ग ही ऐसा मार्ग है जिस पर छः साल का बालक भी चल सकता है।

"यह बिलकुल सही है", पादरी प्रोफ़ेसर ने कहा।

"महाराजजी, हम तो अपने आप को बादशाह समझे बैठे थे। आपने हमें इस बादशाहत की गद्दी से उतार दिया," बैरिस्टर बोला।

हुज़ूर ने कहा, "नहीं। मैं चाहता हूँ कि आप वास्तव में सच्चे बादशाह बनें, केवल ख़याली या सैद्धान्तिक ही नहीं। सिर्फ़ ज़बानी जमा-ख़र्च करने वालों की तरह कहने भर के लिये ही अनादि, अनन्त, अमर, सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञानी, स्थिर बुद्धि और मन के दायरे से ऊपर रहने वाली आत्मा न बनो, बल्कि वास्तव में ऐसे बनो। आप कहते तो यह हैं कि परमात्मा मन और बुद्धि से परे है और फिर भी उसे मन और बुद्धि से समझना चाहते हैं ?"

बैरिस्टर ने पूछा, "हुज़ूर, क्या वेदान्तियों का यह कहना सही है कि इस संसार का कोई अस्तित्व ही नहीं है ? और यह न कभी था, न है, और न कभी होगा ?"

महाराजजी ने कहा, "हाँ, यह स्वामी शंकराचार्य के समकालीन गौड़पदाचार्य का लिखा हुआ अजातिवाद (संसार का अनादिवाद) है। वे कहते हैं कि इस संसार का तीनों कालों (भूत, भविष्य, वर्तमान) में अस्तित्व नहीं है। योग-वशिष्ठ, जो वेदान्त पर एक अधिकारपूर्ण ग्रन्थ है, दृष्ट-सृष्टिवाद की व्याख्या करता है कि आपका दृष्टि डालना ही संसार को पैदा कर देता है। दृष्ट का अर्थ है — देखना और सृष्टि का अर्थ है — संसार अर्थात् आप उसे देखते हैं इसीलिये संसार है।"

बैरिस्टर ने स्वीकार किया, यह तो मेरी समझ से बाहर है।

हुज़ूर ने कहा, "बहुत कम लोग इसे समझ पायेंगे। इसीलिये मैंने कहा था कि यह रास्ता सबके लिये नहीं है और नादान लोगों के हाथों में तो वैसा ही है जैसा कि एक बच्चे के हाथों में तेज़ चाकू।"

"पर यह कहने में बड़ा आनन्द आता है कि मैं परमात्मा हूँ, सबका स्वामी हूँ।" बैरिस्टर बोला।

हुज़ूर ने कहा, "आनन्द सिर्फ़ कहने में नहीं, बनने में है।"

राय रोशनलाल ने पूछा, "क्या एक वेदान्ती के अहंकारी, हठी, अभिमानी और घमण्डी बनने का ख़तरा नहीं है?"

महाराजजी ने फ़रमाया, "बहुत कम लोग वेदान्त का सही मतलब समझते हैं। नादान और अनुभवहीन लोगों के हाथों में यह ज़रूर हानिकारक होगा। भक्ति तो श्रद्धा, विनय और दीनता का मार्ग है। परमात्मा को ये गुण प्रिय हैं। वे कभी किसी को नुक़सान नहीं पहुँचाते और साथ ही ये रूहानी सफ़र को भी जल्दी तय कराते हैं। परमात्मा के प्यार की वर्षा की कुछ बूँदें हज़ारों पापों को धो देती हैं और मन को निर्मल करती हैं। यह काम हज़ारों दिमाग़ी कसरतों से या ग्रन्थों के पाठ से भी नहीं हो सकता।"

राय रोशनलाल ने कहा, "वेदान्त का उद्देश्य तो जीव और ब्रह्म की एकता सिद्ध करना था। प्राचीन वेदान्तियों ने आध्यात्मिक अभ्यास का सहारा लिया और वे आत्मा की खोज करते हुए परमात्मा तक पहुँच गये।"

एक पादरी बोला, "अभी तक तो मुझे मेरा धर्म ही सबसे अच्छा लगा है।"

"जहाँ तक सत्य और वास्तविकता का सवाल है, वह तो हर धर्म की तह में मिलेंगे," राय रोशनलाल ने कहा।

इस पर उस पादरी ने जवाब दिया, "मैं ईसा मसीह को इतना प्यार करता हूँ कि मैं अपना धर्म बदलना ही नहीं चाहता।

हुज़ूर महाराजजी ने फ़रमाया, "किसी को अपना धर्म बदलने की ज़रूरत नहीं। पर आपको अपने अन्दर ईसा मसीह को देखने की कोशिश ज़रूर करनी चाहिये। उनकी सारी ज़िन्दगी भक्ति, प्यार और सेवा की ज़िन्दगी थी और उनका जीवन हमारे अपनाने के लिये एक उत्तम

उदाहरण है। पर उनके प्रति आपका प्यार ऐसा होना चाहिये कि वह आपको उन्हें अपने अन्दर ढूँढ़ने की प्रेरणा दे। वे कहते हैं कि खोज करो तो तुम पाओगे।"

"क्या हम उन्हें देख सकेंगे और उनसे बात कर सकेंगे?" पादरी ने पूछा।

हुज़ूर ने उन्हें यक़ीन दिलाया, "हाँ, आप उसी तरह उनसे बात कर सकते हैं जिस तरह मुझसे कर रहे हैं।"

बैरिस्टर ने कहा, "लेकिन उनको गुज़रे तो बहुत समय बीत गया है।"

हुज़ूर ने कहा, "मसीहा कभी नहीं मरते। पर उनके दर्शन करने के लिये आपको पहले एक देहधारी मसीहा — जीवित गुरु — को देखना पड़ेगा।"

एक पादरी ने पूछा, "बाइबिल के रूप में ईसा मसीह हमारे लिये जो उपदेश छोड़ गये हैं, क्या हम उन पर चल कर उनके दर्शन नहीं कर सकते?"

हुज़ूर महाराजजी ने इसके जवाब में फ़रमाया, "इस विषय पर हमें सच्चाई और व्यावहारिक ढंग से सोचना चाहिये। खुदा की बादशाहत हमारे अन्दर है और इसी प्रकार ईसा मसीह भी हमारे अन्दर ही हैं। क्या कोई भी पुस्तक हमें अन्दर जाने का तरीक़ा सिखा सकती है? ईसा मसीह और उनके शिष्यों ने अन्दर जाने के लिये जिन रूहानी अभ्यासों को अपनाया, क्या बाइबिल उनका वर्णन करती है? योगाभ्यास के बारे में कई बड़ी-बड़ी पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं पर उन पुस्तकों में सबसे पहले यह चेतावनी दी गई है कि किसी जीवित गुरु की देखभाल व रहनुमाई के बिना योग की क्रियाओं को कभी भी शुरू नहीं करना चाहिये।"

राय रोशनलाल बोले, "अपनी बीमारी के इलाज के लिये हम एक ज़िन्दा डॉक्टर को छोड़ कर किसी गुज़रे हुए डॉक्टर के नुसखों को तो नहीं पढ़ते रहते। लोग आत्मा के बनिस्बत शरीर की हिफ़ाज़त ज़्यादा अच्छी तरह और सही प्रकार से कर लेते हैं।

हुज़ूर ने कहा, "परमात्मा का यही विधान है कि सच्चे खोजियों की मदद और रहनुमाई के लिये उसके पुत्र — सन्त — संसार में हर वक़्त मौजूद रहते हैं।"

बैरिस्टर ने कहा, "शायद आज-कल हम सोचते हैं कि संसार में अपने दूत और मसीहा भेजने की परमात्मा की शक्ति अब ख़त्म हो गयी है।"

हुज़ूर महाराजजी ने ज़ोर देकर फ़रमाया, "नहीं, यह संसार सन्तों से कभी ख़ाली नहीं रहता।"

"शायद लोग चाहते हैं कि हम यह मान लें कि क्योंकि हमारे पितामह अपने जीवन में एक स्त्री से मिले थे और उससे शादी कर ली थी, इसलिये अब हमें पत्नी की तलाश करने की कोई ज़रूरत नहीं।" बैरिस्टर बोले और इस पर सब हँस पड़े।

हुज़ूर महाराजजी ने उस पादरी की ओर, जिसने कहा था कि वह ईसा मसीह को इतना प्यार करता है कि उन्हें छोड़ नहीं सकता, देखते हुए कहा, "यह हमेशा याद रखें कि किसी देहधारी सतगुरु के मार्ग-दर्शन में रूहानी अभ्यास करने का यह मतलब नहीं कि मनुष्य को अपने धर्म के लिये प्रीति और श्रद्धा को छोड़ देना चाहिये, बल्कि उसका प्यार तो और बढ़ेगा। जब उसकी आत्मा शब्द — जिसे बाइबिल में परमात्मा कहा गया है — के साथ जुड़ेगी, तब वह कहीं बेहतर ईसाई बन जायेगा। आज भी वह (शब्द) परमात्मा है और जिसकी आत्मा उससे जुड़ जाती है, वह धन्य है।"

बैरिस्टर ने पूछा, "हुज़ूर, 'क्राइस्ट' शब्द का क्या अर्थ है? मेरे ख़याल से यह उनका नाम तो नहीं था।"

हुज़ूर ने फ़रमाया, "सही-सही तो मुझे पता नहीं, शायद इसका अर्थ रक्षक या उद्धारक है। ये सज्जन (पादरी) आपको बता सकेंगे। पर मान लीजिये, आप अपने स्वप्न में या जाग्रत अवस्था में या ध्यान में एक स्वरूप देखते हैं जो अपने आप को क्राइस्ट बताता है और आप प्यार या भक्ति में आकर उसका हुक्म मानने लगते हैं और उसके अनुसार काम करने लगते हैं, कभी-कभी वह भविष्यवाणियाँ करता है जो सच निकलती हैं और इस तरह उसमें आपका विश्वास और भी जम जाता है। लेकिन अन्त में आपको मालूम होता है कि आप काल के चक्र में फँस गये हैं। सूक्ष्म मण्डलों में ऐसी ताक़तों की कोई कमी नहीं। आप यह कैसे निर्णय

कर सकेंगे कि सचमुच आपको क्राइस्ट मिल गये हैं ? आपने तो क्राइस्ट को कभी देखा नहीं। आपके अन्तर के सफ़र में ऐसी कई ताक़तें आपको क़दम-क़दम पर गुमराह करने की कोशिश करती हैं।"

बैरिस्टर ने कहा, "शायद क्राइस्ट की तस्वीरें और चित्र भी असली नहीं हैं।"

हुज़ूर ने कहा, "ये शक्तियाँ तो देहधारी गुरु के बारे में भी धोखा देने की कोशिश करती हैं। एक बार मुझे टाँग टूटने के कारण अस्पताल जाना पड़ा। डॉक्टरों और मेरे अफ़सरों ने शोरबा और शराब लेने के लिये मुझ पर बहुत ज़ोर डाला। उन्होंने कहा कि मैं सतगुरु से लिख कर इन चीज़ों के इस्तेमाल की इजाज़त माँगू। मेरे सतगुरु ने जवाब दिया कि उनकी हिदायतें हर वक़्त के लिये एक-सी ही हैं और इन नियमों के पालन में किसी भी तरह की रियायत नहीं हो सकती। कुछ समय के बाद, जब मैं बहुत तकलीफ़ में था तो काल मेरे गुरु का रूप धारण करके मेरे सामने आया और कहने लगा कि ज़रूरत पड़ने पर अपनी तन्दुरुस्ती के लिये दवा के रूप में इन चीज़ों के उपयोग में कोई हरज नहीं है। अन्दर के और बाहर के इन अलग-अलग जवाबों को सुन कर मैं आश्चर्य में पड़ गया पर जब मैंने उस भेष बदले हुए गुरु की आँखों और माथे की तरफ़ गौर से देखा तो मालूम हुआ कि वह एक छलिया था और जैसे ही मैंने पाँच नामों का सिमरन किया, वह फ़ौरन ग़ायब हो गया।"

पादरी प्रोफ़ेसर ने पूछा, "क्या ईसा मसीह ने भी इस मार्ग का अभ्यास तथा प्रचार किया था ?"

महाराजजी ने जवाब दिया, "बाइबिल में कई जगह इस बात के साफ़ संकेत हैं।"

एक दूसरे पादरी ने पूछा, "क्या ईसा मसीह की आत्मा ऊपर से आकर हमारी सहायता नहीं कर सकती ?"

हुज़ूर महाराजजी ने उत्तर दिया, "नहीं, यह नियम के विरुद्ध है। उनके जीवन-काल में जो लोग उनके सम्पर्क में आये, उन सबको उन्होंने ईसा मसीह (अपना स्वरूप) बना लिया। लेकिन आज ईसा मसीह की आत्मा नीचे के मण्डलों में काम नहीं कर सकती। जब तक वे शरीर में रहे, उन्होंने अपना काम किया और बाद में शब्द में जाकर मिल गये जहाँ से कि वे आये थे। अगर ईसा मसीह की सर्वव्यापी आत्मा यानी

शब्द — जो परमात्मा के साथ था और खुद परमात्मा था — सीधे ऊपर से ही मनुष्यों की सहायता कर सकता था, तो फिर ईसा मसीह को भी शरीर धारण करके इस दुनिया में आने की कोई ज़रूरत नहीं थी। अगर ईसा मसीह को शरीर धारण करके आने की ज़रूरत पहले थी, तो वही ज़रूरत अब भी है।"

पादरी प्रोफ़ेसर ने कहा, "यह तो वाजिब व उचित मालूम देता है।"

महाराजजी ने आगे कहा, "ईसा मसीह की आत्मा, सर्वव्यापी आत्मा भी जब तक मनुष्य का रूप धारण नहीं करती, मनुष्य को रास्ता नहीं बता सकती। मनुष्य के सामने प्रकट होने के लिये, मनुष्य से बोलने और उसे समझाने के लिये परमात्मा को मनुष्य का चोला धारण करना पड़ता है। और कोई रास्ता ही नहीं है। संसार को बनाने वाला वह अलख, अगोचर परमात्मा हमेशा मनुष्य के साथ रहा है, पर क्या मनुष्य उससे कुछ सीख सका है? संसार की रचना करने के बाद परमात्मा ने मनुष्य को अपना ज्ञान कैसे कराया? मनुष्य किस प्रकार जान सका कि सबका बनाने वाला परमात्मा है और उसका अस्तित्व है? मनुष्य की बुद्धि और तर्क ने भ्रम व उलझनों को और भी मज़बूत कर दिया और कई शक व सवाल पैदा कर दिये। सार-हीन अन्दाज़ों ने हालत और भी ख़राब कर दी। यह ज्ञान केवल मनुष्य ही दे सकता था। हम ईश्वर और फ़रिश्तों को नहीं देख सकते। दूसरे जीव-जन्तु तो खुद ही बेसमझ व अज्ञानी हैं। इसीलिये परमात्मा को ही आना पड़ा और हमें दूसरे लोकों की बातें बताने के लिये, हमारे सिरजनहार की जानकारी देने और उससे मिलने का मार्ग बताने के लिये, उसे हमेशा ही मनुष्य-चोले में आना पड़ता है। इसके बिना न हम उसे सुन सकते हैं, न देख सकते हैं और न उसका ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। केवल मनुष्य ही मनुष्य को सिखा सकता है। इसीलिये परमात्मा जब हमें अपना ज्ञान प्रदान करना चाहता है, तब उसे मनुष्य रूप धारण करके आना पड़ता है।"

पादरी प्रोफ़ेसर ने कहा, "ईसा मसीह ने कहा है कि मैं और परमपिता एक हैं।"

इस पर हुज़ूर ने फ़रमाया, "जो मनुष्य एक पूरे गुरु के मार्ग-दर्शन में अपने अन्दर ईश्वरीय गुणों को जाग्रत कर लेता है, वह अन्त में स्वयं मनुष्य के रूप में परमात्मा बन जाता है, सच्चा परमात्मा का पुत्र बन जाता है। मनुष्य के शरीर में रहने वाली वह परम आत्मा 'पिता' और

'पुत्र' दोनों ही है। ईसा का 'मैं' से मतलब अपने शरीर से नहीं था, उनकी आत्मा परमात्मा के साथ एक हो चुकी थी।"

प्रोफ़ेसर ने कहा, "शरीर भी तो एक ज़रूरी तत्त्व है। हम शरीर के द्वारा ही ईसा मसीह को जान सके थे।"

हुज़ूर महाराजजी ने फिर कहा, "जब तक परमात्मा मनुष्य-चोला धारण नहीं करता हम उससे बातचीत नहीं कर सकते। परमात्मा की भी अपनी कुछ मर्यादा या सीमा है। क्या वह ऊँचे मण्डलों से आपसे बातें कर सकता है? वह सर्वज्ञ, सर्वव्यापी और सर्वशक्तिमान है, पर हम इन बातों का अनुभव तब तक नहीं कर सकते जब तक वे मनुष्य की समझ में आ सकने वाले साधनों (मनुष्य-देह) के द्वारा ही प्रकट न हों। सिर्फ़ एक मनुष्य ही मनुष्य का शिक्षक हो सकता है। मनुष्य से सम्पर्क साधने के लिये परमात्मा को पहले ख़ुद मनुष्य बनना पड़ता है। बच्चे को अपनी बात समझाने के लिये माँ को उसी के समान तोतली बोली अपनानी पड़ती है। वैसे तो सतगुरु मामूली इनसान की तरह ही रहता और बोलता है, लेकिन वास्तव में ख़ुद परमात्मा ही उसके ज़रिये बोलता और काम करता है। मौलाना रूम कहते हैं, 'मुर्शिद के शब्द परमात्मा के ही शब्द हैं, हालाँकि वे इनसान की ज़बान से बोले जाते हैं।' एक दूसरी जगह वे कहते हैं, 'उसके हाथ परमात्मा के ही हाथ हैं। उसकी 'हाँ' परमात्मा की 'हाँ' है।' गुरु नानक कहते हैं, 'गुरु वह करता है जो परमात्मा नहीं कर सकता।' इनसान के साथ रहने और संसार में काम करने के लिये परमात्मा को मनुष्य रूप में आना ही पड़ता है।"

बुज़ुर्ग पादरी बोला, "ज़रा सोचिये, जब वह जन्म लेकर दुनिया में आता है तो हम उसके साथ कैसा बरताव करते हैं! अगर इजाज़त हो तो मैं एक सवाल और पूछूँ? जूडास इस्केरियट[1] की क्या गति हुई होगी जिसने कि ईसा मसीह के साथ विश्वासघात किया था? वह अब कहाँ होगा?"

हुज़ूर ने पूछा, "आपके विचार से वह कहाँ होना चाहिये?"

पादरी ने जवाब दिया, "ज़रूर वह कहीं नरक की घोर यातनाएँ भोग रहा होगा।"

---

1. ईसा मसीह के शिष्यों में से एक जिसने ईसा को गिरफ़्तार करने में यहूदियों की मदद की।

"नहीं," हुज़ूर महाराजजी ने फ़रमाया, "वह ईसा प्रभु के साथ है और उनकी गोद में परम आनन्द का अनुभव कर रहा है।"

सभी पादरियों के मुख से आश्चर्य के साथ निकला, "ओह !" उनके मुखिया बुज़ुर्ग पादरी ने कहा, "ख़ूब ! यह बिलकुल सही है।"

"सन्तों की यही रीति है", हुज़ूर ने उनसे कहा, "वे हमारे गुनाहों पर ध्यान नहीं देते। उनकी दया और प्यार की दुनिया में नरक की यातनाओं के लिये कोई जगह नहीं है।"

एक नौजवान पादरी ने पूछा, "क्या उसे अपने गुनाह की सज़ा नहीं दी गई ?"

हुज़ूर ने उत्तर दिया, "उसका गुनाह ख़ुद सतगुरु के प्रति था और उन्होंने उसे क्षमा कर दिया।"

नौजवान प्रोफ़ेसर ने कहा, "हुज़ूर, एक सवाल और है। जब संसार को बनाने वाला परमात्मा ख़ुद प्यार और अच्छाइयों से भरपूर है, तो संसार में ये बुराइयाँ कैसे आईं ?"

हुज़ूर महाराजजी ने जवाब में फ़रमाया, "बुराइयाँ भी क़ुदरत की व्यवस्था का एक अंग हैं। समय की शुरूआत से ही उनकी व्यवस्था थी। शैतान या काल को किसने बनाया ? क्या वह भी एक फ़रिश्ता नहीं है और क्या मालिक ने ही उसे नहीं बनाया है ? हर चीज़, क्या बुरी क्या अच्छी, सब उसी से उत्पन्न हुई है।"

यहाँ राय रोशनलाल बात बदलते हुए बोले, "हुज़ूर, आप वेदान्त के बारे में फ़रमा रहे थे।"

हुज़ूर महाराजजी ने फ़रमाया, "हाँ, वेदान्त का मार्ग आम लोगों के लिये नहीं है। कुछ बहुत तेज़ अक़्ल वाले ही इससे फ़ायदा उठा सकते हैं। शायद सारे संसार में कुछ ही लोग इस मार्ग से मालिक को प्राप्त कर सकें। और फिर वेदान्त का मंज़िले-मकसूद केवल ब्रह्म है, जो कि सन्तों के मार्ग में दूसरी मंज़िल है। इससे ऊपर तीन मण्डल और हैं। आप मन को मन ही के हथियारों से बस में नहीं कर सकते। बुद्धि, ज्ञान और योग (बौद्धिक अभ्यास) मन के पैदा किये हुए हैं। मन केवल किसी ऐसी वस्तु से ही वश में आ सकता है जो कि उससे ज़्यादा ताक़तवर हो और जो मन के मण्डल से कहीं ऊपर से आ रही हो। वह केवल शब्द ही है।"

नौजवान बेरिस्टर ने पूछा, "हुज़ूर, अहंकार क्या है ?"

हुज़ूर ने कहा, "अहंकार इसके सिवाय कुछ नहीं कि इनसान अपने आप को एक अलग हस्ती (सच्चे मालिक से भिन्न) समझता रहे। इसी को श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में 'हौंमैं' और मुसलमान सन्तों ने 'अनानियत' कहा है। मनुष्य के अन्दर जो 'मैं' और 'मेरी' की भावना है यही अहंकार है। यह भावना ही मनुष्य के सब बन्धनों की जड़ और सब बुराइयों की जननी है। 'मैं' अथवा परमात्मा से अलग अपनी हस्ती की भावना से 'मेरी' अथवा अपने स्वामित्व की भावना उत्पन्न होती है। 'हम' हर वस्तु को 'हमारी' बनाने की कोशिश करते हैं और इसके नतीजे होते हैं — झगड़े-फ़साद, विवाद और होड़ की भावना। फिर जिन चीज़ों को हम अपना कहते हैं, उनका मोह और प्यार हमें अपने बन्धन में बाँध कर हमारे विवेक को नष्ट कर देता है और हम ईर्ष्या, लोभ, क्रोध, घृणा और अज्ञान से उत्पन्न अनेक बुराइयों के जाल में फँस जाते हैं।"

बैरिस्टर ने पूछा, "हुज़ूर, मनुष्य में यह मालिक से अलग अपनी हस्ती मानने की भावना कब पैदा हुई ?"

महाराजजी ने जवाब दिया, "वह उस समय पैदा हुई जब आत्मा रूपी बूँद अपने समुद्र सचखण्ड से अलग हुई। सचखण्ड तो केवल प्रकाश, परमानन्द और चेतनता का निर्मल आत्मिक देश है। जब आत्मा सचखण्ड से अलग हुई तो 'सोहं'-'सोहं' अर्थात्, 'मैं वही हूँ, मैं वही हूँ' का गीत गाने लगी। इससे पहले सचखण्ड में तो न 'मैं' था न 'वह'। वहाँ सब-कुछ एक था। समुद्र में बूँदों की अलग हस्ती नहीं होती, न वे अपने को अलग महसूस ही करती हैं। सोहं के देश में आत्मा के ऊपर पहला पर्दा चढ़ गया। आत्मा की इस सबसे बड़ी जुदाई पर ही मौलाना रूम की मसनवी शुरू होती है। उसकी पहली पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :

"सुनो, बाँसुरी (सोहं देश का राग) कितनी दुःखपूर्ण कहानी सुना रही है। वह अपनी दर्दनाक जुदाई पर रो रही है। वह अपनी दर्दभरी आवाज़ में कह रही है कि जब से वह अपने बाँस के जंगल (असली घर) से बिछुड़ी है, तब से आहें भरने व रोने के अलावा उसने कोई दूसरा काम ही नहीं किया।"

नौजवान बैरिस्टर ने पूछा, "हुज़ूर, आत्मा सचखण्ड से अलग होने पर क्यों रोती है ?"

हुज़ूर महाराजजी ने फ़रमाया, "क्योंकि अलग होने से ही उसे सब दुःख और तकलीफ़ें उठानी पड़ी हैं। यह जुदाई ही अपने साथ सब मुसीबतों को लाई है। जब हम 'हम' नहीं थे, तब परमात्मा थे। इस अलग सत्ता ने ही हमें (मृत्यु, बीमारी और बुराइयों का) ग़ुलाम बनाया। इसने हमारा सारा आनन्द मिट्टी में मिला दिया। इस 'मैं' और 'मेरी' ने ही वे बेड़ियाँ बनाईं जिन्होंने इस स्वाधीन और आज़ाद आत्मा को इस दुनिया और दुनिया के पदार्थों के साथ बाँध दिया है।

फ़ारस के रुस्तम नामक एक बड़े बहादुर योद्धा और उसके लड़के सोहराब की कहानी आप सबने सुनी होगी। वे पिता-पुत्र थे, लेकिन उन्होंने एक-दूसरे को देखा तक न था। लड़ाई के मैदान में ही वे एक-दूसरे के सामने आये, जब कि दोनों अपनी-अपनी फ़ौजों की बागडोर सँभाले हुए थे। रुस्तम ने सोहराब के जन्म के कुछ दिन पहले ही घर छोड़ दिया था। उसे फ़ारस के राजा के हुक्म के मुताबिक़ संसार को फतह करने के लिये रवाना होना पड़ा। वह अपनी स्त्री के पास एक तावीज़ छोड़ गया और कह गया कि इसे बच्चे की दाहिनी भुजा पर बाँध देना ताकि जब कभी हम मिलें तो मैं अपने बेटे को पहचान जाऊँ। सोहराब छोटी उम्र में यूनान की फ़ौज में भर्ती हो गया और अपनी योग्यता और ताक़त की वजह से जल्दी ही सेनापति बन गया। उन दिनों सेनाओं के सेनापति ख़ुद भी उतने ही लड़ा करते थे जितने के उनके सिपाही। जब युद्ध में पिता-पुत्र का मुक़ाबला हुआ तो वे अपने इस रिश्ते को नहीं जानते थे। उनकी घमासान लड़ाई लगातार पन्द्रह दिन तक चलती रही। रुस्तम चूँकि उम्र में अधिक था, धीरे-धीरे थकान महसूस करने लगा और इसलिये उसने एक चाल चली जिसकी वजह से उसके लड़के के पैर लड़खड़ा गये और वह गिर गया। रुस्तम ने इस मौक़े का फ़ायदा उठाया और फ़ौरन सोहराब के सीने में कटार भोंक दी। सोहराब चिल्लाया, अरे कम्बख़्त! याद रखना, मेरा पिता रुस्तम बदला लेना ख़ूब जानता है। वह ज़रूर तुझे इस चालबाज़ी की सज़ा देगा।

रुस्तम ने सोहराब की बाँह पर अपना दिया हुआ तावीज़ बँधा हुआ देखा तो थर्रा गया। इस अपार दुःख से उसके चेहरे का ख़ून सूख गया और उसका शरीर सूखे पत्ते की तरह काँपने लगा। बेहाल होकर उसने सोहराब को अपनी बाँहों में भर लिया और उसका माथा चूमने लगा।

असीम पीड़ा में वह चिल्ला उठा, 'मेरे लाल! मेरे लाल! या ख़ुदा!! मैंने क्या कर डाला? या अल्लाह! दया कर! दया कर!! दया कर!!!' वह कातर होकर विलाप करने लगा। उसका विलाप चारों ओर गूँज उठा और दोस्त और दुश्मन दोनों उसके साथ रोने लगे। उसके हाथ से सोहराब को लगी चोट प्राणघातक थी। इसलिये वह दौड़ कर अपने राजा के पास गया क्योंकि राजा के पास तिर्याक़ (घातक घाव की अचूक दवा) थी। पर राजा ने सोहराब की वीरता और बहादुरी के क़िस्से सुन रखे थे और उसने (अपने राज्य को ख़तरा समझ कर) दवा देने से इनकार कर दिया। रुस्तम ने बड़ी मिन्नतें की। राजा के पैरों में गिर पड़ा और सब तरह की प्रार्थना और वायदे किये और कहा कि उसका लड़का वह काम कर दिखायेगा जो वह ख़ुद नहीं कर सका, यहाँ तक कि सारे संसार को फ़ारस का मातहत बना देगा। पर राजा ने उसकी एक न सुनी। सोहराब अपने पिता के लौटने से पहले ही मर चुका था। अपने बेटे को मरा हुआ देख कर रुस्तम बेहोश हो गया और उसके बाद फिर वह पहले जैसा रुस्तम न रहा।"

"यह तो बड़ी करुण कहानी है", नौजवान बैरिस्टर ने कहा।

हुज़ूर ने कहा, "हाँ! फिर भी ऐसी घटनाएँ हम रोज़ देखते हैं। इस कहानी में आपने देखा कि दो व्यक्ति एक-दूसरे की जान लेने पर उतारू थे। एक ने दूसरे को अपना दुश्मन समझा हुआ था। बेरहमी से सोहराब को मार डालने के बाद रुस्तम रोने और विलाप करने लगता है क्योंकि वह अब उसे अपना बेटा मानता है। आदमी भी दोनों वही हैं और हालात भी वही। पर इनमें अब केवल 'मैं' और 'मेरा' जाग उठा है। यह 'मेरा' या अपनापन जागने से पहले उस अनजान के लिये रुस्तम के हृदय में न दया थी, न प्यार था और न मोह था। वह तो उस अनजान को मार डालना चाहता था। इसका यह मतलब हुआ कि न हमारा कोई दोस्त है, न दुश्मन। यह हमारा मन ही है जो लोगों को दोस्त और दुश्मन के रूप में देखने लगता है।"

बैरिस्टर एकाएक बोल उठा, "यह है मौत और ज़िन्दगी! जीना कितना प्यारा लगता है और मौत कितनी भयंकर!"

महाराजजी ने कहा, "मौत से डरना नहीं चाहिये। हमारी ज़िन्दगी न तो इस जन्म से शुरू हुई है और न इस शरीर की मौत से इसका अन्त होगा। जीवन अमर है। ऐसा कोई समय नहीं था जब कि हम न

थे और न कभी ऐसा समय होगा जब कि हम न होंगे। परम सन्त दादू कहते हैं :

'जब सृष्टि नहीं थी तब भी मैं था और जब दुनिया नहीं रहेगी, तब भी मैं रहूँगा।'

"भगवान कृष्ण ने गीता में अर्जुन से कहा है :

न त्वेवाहम् जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम्। (2, 12)

अर्थात्, न तो ऐसा ही है कि मैं किसी काल में नहीं था या तू नहीं था या ये राजा लोग नहीं थे और न ऐसा ही है कि इससे आगे हम सब नहीं रहेंगे।"

बैरिस्टर ने कहा, "हुज़ूर, चाहे हम हमेशा रहे हों, परन्तु यह मृत्यु तो बड़ी भयानक चीज़ है।"

हुज़ूर ने फ़रमाया, "यह तो और भी भयानक होता अगर मौत ही न होती।" हुज़ूर ने भगवान कृष्ण का एक और उदाहरण दिया :

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ॥
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥ (गीता 2-13)

अर्थात्, जैसे शरीर में बचपन, जवानी और बुढ़ापा आते-जाते दिखाई देते हैं, उसी तरह एक शरीर के बाद दूसरा शरीर जीव को मिलता ही रहता है। इसलिये धीर मनुष्य इससे (मौत से) नहीं घबराते। इस सबका निचोड़ यह निकला कि मौत शरीर की होती है। आत्मा वैसी की वैसी ही रहती है।"

इस पर बैरिस्टर फिर बोला, "मैं तो यह पसन्द करूँगा कि शरीर अमर रहे और आत्मा चाहे मरती रहे।"

"लेकिन आप आख़िर इससे भी ऊब उठेंगे", हुज़ूर ने कहा।

बैरिस्टर ने पूछा, "क्या आत्मा में किसी तरह का परिवर्तन नहीं होता? अगर ऐसा है तो इनसान अच्छा और बुरा कैसे है?"

हुज़ूर महाराजजी ने जवाब दिया, "परिवर्तन केवल मन में ही होता है, आत्मा में नहीं। आत्मा तो हमेशा परमात्मा की तरह एकरूप रहती है। गीता में लिखा है :

आत्मा अविनाशी है और इसको कोई नष्ट नहीं कर सकता।[1] यह आत्मा अजन्मा है, नित्य है, शाश्वत और पुरातन है। शरीर का नाश हो जाता है पर इसका नहीं होता।[2]

जैसे मनुष्य पुराने कपड़ों को उतार कर नये कपड़े पहन लेता है, वैसे ही आत्मा भी जर्जर व पुराने शरीर को छोड़ कर नया शरीर धारण कर लेती है।[3]

इस आत्मा को न तो हथियार काट सकते हैं और न अग्नि जला सकती है, न पानी गला सकता है और न हवा सुखा सकती है।[4]

(यह बड़े आश्चर्य की बात थी कि हुज़ूर अपनी याददाश्त से जिस ग्रन्थ का भी चाहते थे उसका अक्षरशः ज़बानी हवाला देते जाते थे। कभी-कभी तो, जब ढूँढ़ने में देर लगने लगती तो उन ग्रन्थों के पेज तक बता देते थे। समझ में नहीं आता कि यह याददाश्त की करामात थी या दिव्य दृष्टि)।

हुज़ूर महाराजजी ने नौजवान बैरिस्टर से कहा, "इनसान को पुराने कपड़े उतार कर फेंकने में कभी भी डरना नहीं चाहिये।"

"तो फिर नवजात बच्चों को तो नहीं मरना चाहिये। इनसान को नये कपड़े पहनते ही तुरन्त उन्हें उतार कर फेंक देने की क्या ज़रूरत है?" बैरिस्टर ने पूछा।

मुसकराते हुए हुज़ूर महाराजजी ने कहा, "मेरा ख़याल था कि आपका अगला सवाल यही होगा। एक आत्मा को एक देह में कब तक रहना है, इसका फ़ैसला एक चीज़ नहीं, कई चीज़ें मिल कर करती हैं। कभी आप एक नयी रेशमी कमीज़ बाज़ार से ले आते हैं, पर उसे पहनते ही आपको लगता है कि उसे कीड़ों ने काट रखा है या आपको ठीक नहीं बैठता या उस पर इस्तरी नहीं हुई है तो आप उसे तुरन्त उतार देते हैं। उसी तरह मनुष्य के कर्म — प्रारब्ध, संचित और क्रियमान —

---

1. अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम् ।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ॥ (2-17)

2. न जायते म्रियते वा कदाचिन् नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ (2-20)

3. वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥ (2-22)

4. नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥ (2-23)

उसके जीवन में पग-पग पर असर डालते रहते हैं और शरीर उसी हिसाब से आता-जाता रहता है।"

बैरिस्टर न कहा, "हुज़ूर, यह कर्म-सिद्धान्त तो बड़ा कठिन है! क्या इसे समझाने की कृपा करेंगे?"

हुज़ूर बोले, "यह तो अपने आप में ही एक सम्पूर्ण विषय है, इसे कभी अलग से लेंगे। पहले हम ज़िन्दगी और मौत के विषय को ख़त्म कर लें।"

बैरिस्टर ने इस पर टिप्पणी करते हुए कहा, "मृत्यु चाहे आत्मा पर कुछ असर न करे, पर मैं तो इससे बहुत डरता हूँ।"

हुज़ूर ने फ़रमाया, "वे सब लोग जो हक़ीक़त को नहीं जानते, इससे डरते हैं। कबीर साहिब ने कहा है :

मैं मृत्यु को प्यार करता हूँ। दुनिया इससे डरती है। कितना अच्छा हो कि मैं जल्दी से जल्दी मर कर अपने प्रियतम से जा मिलूँ।[1]

एक सत्संगी को न तो कभी मौत की इच्छा करनी चाहिये और न मौत के आने पर डरना चाहिये। उसे अपने आप को पूरी तरह से सतगुरु की मौज पर छोड़ देना चाहिये

बैरिस्टर ने पूछा, "अगर इनसान ज़िन्दगी से ऊब जाये तो उसे ख़त्म कर देने में क्या नुक़सान है?"

हुज़ूर ने कहा, "मौत ज़िन्दगी की मुसीबतों का इलाज नहीं है और न यह उससे छुटकारा ही है। ये मुसीबतें तो जहाँ भी आप जायेंगे, आपके पीछे-पीछे आयेंगी। जब तक आप कर्मों के क़र्ज़े की एक-एक पाई न चुका देंगे, तब तक वे (कर्म) आपका पीछा नहीं छोड़ेंगे। कर्मों का बोझ तो पहले ही आपके सिर पर काफ़ी है, आत्महत्या करके आप एक बहुत बड़े पाप का बोझ और अपने ऊपर लाद लेंगे। कर्मों से छुटकारा पाना, जैसा आप सोचते हैं, वैसा आसान नहीं है।"

बैरिस्टर बड़ी गम्भीरता के साथ बोला, "यह तो बहुत ही बुरी हालत है। मैं तो समझता था कि मुसीबतों की ज़िन्दगी से छुटकारा पाना बहुत आसान है, लेकिन हुज़ूर, आप तो हमें मरने की भी इजाज़त नहीं देते। ठीक है, मज़बूरन हमें ज़िन्दा रहना ही होगा।"

---

1. कबीर जिसु मरने ते जगु डरै, मेरे मन आनंदु ।
मरने ही ते पाईऐ, पूरनु परमानंदु ॥ (आ.ग्र., पृ. 1365)

हुज़ूर महाराजजी ने फ़रमाया, "जीना भी बहुत कम लोग जानते हैं। जो जीना जानते हैं, सिर्फ़ वही मरना भी जानते हैं। हम जी नहीं रहे हैं। हम तो केवल काल की गति के साथ बहते चल जा रहे हैं। रात-दिन, रोते-चीखते, इच्छाओं और वासनाओं के थपेड़े खाते जा रहे हैं। इन्द्रिय-सुख हमें दुःख-दर्दों के भँवर-जाल में फँसाये जा रहे हैं।"

"यह बिलकुल सही है," बैरिस्टर ने कहा।

महाराजजी ने फिर समझाया, "हम लोग ज़िन्दगी के असली उद्देश्य को जानते तक नहीं और उसे बेकार के धन्धों में बरबाद करते रहते हैं। यदि हम अपनी ज़िन्दगी में अपनी असली विरासत को न पा सके तो हमारा जीवन बेकार ही गया। मनुष्य दो पैरों वाला जानवर नहीं बनाया गया था, फिर भी वह अक्सर जानवरों जैसा व्यवहार करता है। मनुष्य मालिक की एक विलक्षण रचना है, वह परमात्मा का रूप है। उसमें अपार शक्ति है लेकिन वह उसे व्यर्थ के कामों में बरबाद करता रहता है। उसके अन्दर हीरे-जवाहरात का भण्डार है, लेकिन वह भिखारी की तरह दर-दर भटकता और भीख माँगता फिरता है। उसके जीवन का ध्येय था ख़ुद को पाना, अपने मालिक को जानना और वापस अपने निज-घर पहुँच जाना। लेकिन मनुष्य-जन्म के इस अनमोल अवसर को, जो नीचे की लाखों योनियों में भटकने के बाद उसे प्राप्त हुआ है, यह व्यर्थ खो देता है।

6. यह अन्तिम अध्याय हो सकता था

गर्मियों के दिन थे। कौन-से साल की बात है यह तो मुझे याद नहीं। लेकिन उस साल बड़ी सख़्त गर्मी थी। हुज़ूर महाराजजी डलहौज़ी के सुन्दर पहाड़ पर चले गये थे, जहाँ उन्होंने कुछ साल पहले एक मकान ख़रीदा था। उनका हुक्म था कि उनके पीछे कोई भी डलहौज़ी न आये। उन ख़ास-ख़ास लोगों को भी इजाज़त नहीं दी गई, जिनकी कोई प्रार्थना कभी ठुकराई ही नहीं गई थी। हमारे दफ़्तर गर्मी की छुट्टियों के कारण उस साल जल्दी बन्द हो गये थे, क्योंकि बड़ी सख़्त गर्मी थी, जिसकी वजह से कुछ लोग मर भी गये थे। पंजाब का तापमान 118 डिग्री फ़ेरेनहाइट से ऊपर चला गया था। प्रोफ़ेसर जगमोहनलाल और मैंने किसी पहाड़ पर जाने का तय किया। हुज़ूर के चरणों के अलावा हम जा भी कहाँ सकते थे। लेकिन इस बार हुक्म था कि कोई न आये। उसे कैसे दरगुज़र किया जाये ? मैंने कहा, "ठीक है, हम कोई हुज़ूर महाराजजी का पीछा तो कर नहीं रहे। हम तो यहाँ की सख़्त गर्मी से बचने को भाग रहे हैं। और शिमला, मसूरी और कश्मीर बहुत महँगी जगह हैं। हम हुज़ूर के सामने नहीं जायेंगे, बल्कि कोशिश यह करेंगे कि वे हमें देख भी न पायें। इस तरह अगर हम डलहौज़ी ही जाते हैं तो उनकी हुक्म-उदूली भी नहीं होगी।" मैंने बड़े उत्साह के साथ इस बात पर ज़ोर दिया और आख़िर जगमोहनलाल जी के मन ने भी इसे पूरी तरह मान लिया।

दूसरे दिन शाम को 5 बजे हम 'माउण्ट व्यू होटल' की चढ़ाई पार कर रहे थे, जो हुज़ूर महाराजजी के निवास-स्थान 'एल्समीयर' नामक सुन्दर बँगले से डेढ़ मील दूर था। रास्ते में चलते हुए मैंने सुझाव दिया, "अगर हम मेहर होटल में ठहरें — जो कि एल्समीयर से सिर्फ़ दो फ़र्लांग की दूरी पर है और जहाँ से हुज़ूर का बँगला या कम से कम वहाँ के ऊँचे-ऊँचे पेड़ दिखाई देते हैं — तो यह तो हुज़ूर की हुक्म-उदूली नहीं होगी।"

जगमोहनलाल जी ने कहा, "मुझे फुसलाने वाले! मैं तुम्हारी बात समझ गया हूँ। तुम ज़रूर मुझे किसी आफ़त में डालोगे।"

मैंने प्रत्युत्तर में कहा, "सो किस तरह, मेरे श्रद्धाहीन दोस्त?"

"क्योंकि तुम तो हुज़ूर से किसी न किसी तरह माफ़ी पा लोगे और सारा क़ुसूर मेरे सिर पर आ पड़ेगा", वे बोले।

मैंने उन्हें यक़ीन दिलाया, "नहीं, सारा इल्ज़ाम मैं अपने ऊपर ले लूँगा। मैं हुज़ूर के सामने मंज़ूर कर लूँगा कि प्रोफ़ेसर को मैं भगा लाया हूँ, ज़बरदस्ती इनके हाथ-पैर बाँध कर बस में डाल दिया और डरा-धमका कर इनसे डलहौज़ी आने-जाने का मेरा किराया देने का वचन भी ले लिया। मैं यह भी मंज़ूर कर लूँगा कि होटल का कमरा भी इनकी मर्ज़ी के ख़िलाफ़ इनके नाम से लिया गया है। ये ही दबाव और मजबूरी में आकर होटल का मेरा पूरा ख़र्चा दे रहे हैं।"

प्रोफ़ेसर हँस पड़े और उन्हें कुछ तसल्ली हुई। हमने मेहर होटल में तीन रुपये रोज़ में दो छोटे कमरे ले लिये। वह कितना सस्ता ज़माना था! प्रोफ़ेसर चाय का आर्डर दे ही रहे थे कि मैंने कहा कि हुज़ूर महाराजजी के शाम के टहलने का समय हो चुका है और अगर हम उनके दर्शन का यह मौक़ा चूक गये तो फिर पता नहीं कब यह मौक़ा हाथ आये या बिलकुल ही न आये।

प्रौफ़ेसर साहब ने मेरी बात को काटते हुए कहा, "मैं जानता हूँ, तुम कभी चाय नहीं पीते और मुझे भी नहीं पीने दोगे। मैं बहुत थका हुआ हूँ। पहले हम थोड़ा खा-पी लें, फिर तुरन्त चल पड़ेंगे।"

"अच्छी बात है। आप अपना थोड़ा-बहुत यहाँ ले लीजिये और मुझे दूसरी जगह जाने दीजिये, जहाँ मैं भी जिस थोड़े-बहुत के लिये आया हूँ उसे प्राप्त कर लूँ", मैंने कहा। मैं जानता था कि वे केटली भर चाय से कम कभी नहीं पीते थे, और वह भी बड़े आराम के साथ। उन्हें जल्दी तैयार करने का यही एक उपाय था। उन्होंने जल्दी से चाय पी और दौड़ कर होटल के दरवाज़े तक पहुँचते-पहुँचते मेरे साथ हो लिये।

हमने तय किया कि कहीं ऐसी अच्छी जगह बैठा जाये जहाँ से हुज़ूर के दर्शन अच्छी तरह हो सकें और उन्हें हमारा पता भी न चले। लेकिन बावजूद अपने इस इरादे के, हमारे क़दम सीधे हमें हुज़ूर महाराजजी के द्वार की तरफ़ ले जाने लगे।

प्रोफ़ेसर ने शिकायत की कि हुज़ूर महाराजजी के हुक्म के ख़िलाफ़ तुम मुझे सीधे उनके बँगले की तरफ़ ले जा रहे हो।

मैंने जवाब दिया, "हुज़ूर की हुक्म-उदूली की लम्बी लिस्ट में हम एक गुनाह और जोड़ लेंगे तो क्या हो जायेगा? और किन-किन बातों में हम उनका हुक्म मानते हैं?"

तभी हमारे दिल की धड़कनें बढ़ गयीं। हमने हुज़ूर महाराजजी को सड़क के मोड़ से घूमते हुए आकर अपने सामने खड़े हुए पाया। हम उनके चरणों में नत हो गये।

हुज़ूर ने पूछा, "अच्छा, तो आप यहाँ आ ही गये? कब आये?"

"अभी-अभी आये हैं, हुज़ूर", प्रोफ़ेसर ने जवाब दिया।

हुज़ूर ने पूछा, "आपका सामान कहाँ है?"

"मेहर होटल में, हुज़ूर!" प्रोफ़ेसर ने उत्तर दिया।

हुज़ूर ने पूछा, "वहाँ क्यों गये?" यह उन्होंने इसलिये पूछा कि हम जब भी डलहौज़ी आते थे तो हुज़ूर महाराजजी के यहाँ ही ठहरा करते थे। उन्होंने इसके लिये वहाँ तीन मकान ले रखे थे।

प्रोफ़ेसर ने जवाब दिया, "हुज़ूर, आपने सत्संगियों को आपके पीछे न आने का हुक्म जो दिया था।"

महाराजजी ने फ़रमाया, "अच्छा, लेकिन वह हुक्म आपके लिये थोड़े ही था।" और उन्होंने बड़ी दया-मेहर के साथ हमारे झुके हुए मस्तक पर हाथ रखा। हमारा सारा डर, हमारी थकान व चिन्ता सब-कुछ दूर हो गये। हमारे चेहरों पर रौनक़ आ गयी और दिल खुशी से नाचने लगे।

शाम को घूमने के समय हम हुज़ूर महाराजजी के साथ रहे और साढ़े सात बजे के क़रीब प्रेमीयर लौटे। तब हमने हुज़ूर से अपनी होटल में जाने की इजाज़त माँगी। लेकिन मालूम हुआ कि वहाँ से हमारा सामान पहले ही लाया जा चुका था और 'कोज़ीनुक' नामक नम्बर 2 के मकान में हमारे बिस्तर लगा दिये गये थे। यही नहीं, हुज़ूर खुद हमारे साथ यह देखने के लिए गये कि हमारी सुख-सुविधा का पूरा इन्तिज़ाम हुआ है या नहीं। यह कहने की ज़रूरत नहीं कि उस दिन से लेकर जब तक हम डलहौज़ी में रहे, हम हुज़ूर महाराजजी के ही मेहमान रहे और हमें इस तरह खिलाया-पिलाया गया जैसे गर्मी की छुट्टियों में आने वाले बच्चों को उनके माता-पिता खिला-पिला कर तगड़ा किया करते हैं।

महाराजजी की हम पर पूर्ण कृपा और मेहर थी और हमारी खुशी का कोई ठिकाना नहीं था। लेकिन ऐसा लगा कि विधाता को हमारी खुशक़िस्मती न सुहाई।

पन्द्रह दिन बाद ही हुज़ूर महाराजजी बहुत सख़्त बीमार पड़ गये। हमारी सारी खुशी मिट्टी में मिल गई। डॉक्टर लोग हुज़ूर को देखने आते और आपस में फुसफुस करते रहते और जब हम पूछते तो इतना ही कहते कि फ़िक्र न करो, सब ठीक हो जायेगा, जिसका मतलब यह निकला था कि सब ठीक-ठाक नहीं है।

हुज़ूर महाराजजी ने कई नेपालियों और पहाड़ी इलाक़ों के दूसरे लोगों को नामदान दिया था, जो कि ज़िन्दगी-भर भेड़-बकरियों और दूसरे जानवरों की बलि चढ़ाने या अपने खाने के लिये उनकी हत्या करते आ रहे थे। इससे पहले भी नामदान के बाद हुज़ूर कुछ बीमार हो जाया करते थे। लेकिन इस बार तो वे बहुत ज़्यादा बीमार हो गये और उनकी बीमारी ने हमें बहुत घबरा और डरा दिया। दसवें दिन तो उनकी हालत बहुत गम्भीर हो गई। डॉक्टर ना-उम्मीद हो गये। यह हालत तीन दिन तक रही। उसके बाद भी हमने कई दिन बेचैनी में और रातें बग़ैर सोये गुज़ारीं। लेकिन इन दिनों में भी हुज़ूर की प्रसन्नता और चेहरे की मुसकान वैसी की वैसी ही रही। एक दिन सुबह प्रोफ़ेसर ने हुज़ूर से पूछा कि आपकी तबीयत अब कैसी है?

हुज़ूर ने जवाब दिया, "मैं बिलकुल तैयार-बर-तैयार (जाने के लिये तैयार) हूँ।"

उनके इस जवाब से मानों हमारे ऊपर बिजली गिर गयी। हम चिन्ता और व्यथा में डूब गये। प्रोफ़ेसर अपने आँसुओं को न रोक सके। उन्होंने रुँधे कण्ठ से पूछा, "मेरे मालिक! अब हमें किसके हाथों में सौंपे जा रहे हैं।"

"क्यों? मैं कहाँ जा रहा हूँ?" हुज़ूर ने पूछा।

प्रोफ़ेसर ने कहा, "हुज़ूर, आप ही तो कहा था कि आप 'तैयार-बर-तैयार' हैं।"

हुज़ूर ने फिर कहा "हाँ, मैं तैयार-बर-तैयार हूँ"।

तब हमें समझ में आया कि 'तैयार-बर-तैयार' का दूसरा अर्थ निकाल रहे हैं जो कि [illegible] की बाणी में होता है कि मैं

महाराज चरनसिंह जी

बिलकुल तैयार और तन्दुरुस्त हूँ। उसके बाद वे बहुत जल्दी ठीक होने लगे और उसके चौथे दिन तो वे अपने मकान के सामने दूब में कुछ समय के लिये धूप में आकर बैठे।

कुछ दिन बाद, एक दिन जब हुज़ूर दूब में आराम कुर्सी पर बैठे हुए थे, मैंने और प्रोफ़ेसर साहब ने एकान्त का मौक़ा देख कर सोचा कि क्यों न वह बात अर्ज़ करें जो कि कई दिनों से हमारे मन में थी। प्रोफ़ेसर ने इस तरह वार्तालाप शुरू किया, "महाराजजी, आप इस ज़मीन, आसमान, सारी दुनिया के मालिक हैं। क्या आप हमें एक वरदान देंगे ?"

हुज़ूर महाराजजी यह कहने ही वाले थे कि 'हाँ माँगो' पर एकाएक रुक गये और पूछा, "तुम क्या माँगना चाहते हो ?"

हम थोड़ी देर चुप रहे।

हुज़ूर ने मुसकराते हुए कहा, "हाँ-हाँ, बोलो तो सही, क्या चाहते हो ?"

हम उनके चरणों में एक चटाई पर बैठे हुए थे। मैंने एक बच्चे की तरह बड़ी सरलता के साथ कहा, "मालिक, हम कुछ भी माँगें, पर आप वचन दें कि उसे मंज़ूर करेंगे।"

इस पर हुज़ूर हँस पड़े और बोले, "मैं कोई पैग़म्बर तो हूँ नहीं। बग़ैर जाने मैं तुम्हारी माँग कैसे मंज़ूर कर लूँ ?"

"मेरे मालिक ! आप पैग़म्बर नहीं हैं, पर पैग़म्बर आपके पास से ही आते हैं", मैंने कहा।

इसके बाद प्रोफ़ेसर जैसे-तैसे बोल ही उठे, "हुज़ूर, हम यह चाहते हैं कि यहाँ से हम आपसे पहले चले जायें।"

यह कहने की ज़रूरत नहीं कि हम हुज़ूर महाराजजी के सामने हरदम सहमे-सहमे से रहते थे और कभी-कभी तो जो कुछ कहना चाहते थे वह भी भूल जाते थे।

हुज़ूर ने जवाब दिया, "हाँ, तुम लोग जब चाहो, ख़ुशी से जा सकते हो। मैं तो अभी सितम्बर तक यहीं रहना चाहता हूँ।"

न चाहते हुए भी हमारे ओंठों से हँसी फूट पड़ी। महाराजजी भी सरलतापूर्वक हँस पड़े। और उनकी हँसी ने यह ज़ाहिर कर दिया कि वे भी हमारा असली मतलब समझ चुके थे।

"हुज़ूर, हमारा मतलब डलहौज़ी से नहीं, बल्कि इस दुनिया से जाने का है। इसलिये आप ऐसी मौज बख़्शें कि इस दुनिया से हम आपसे पहले उठ जायें", मैंने कहा।

हुज़ूर ने फ़रमाया, "नहीं, तुम्हें न जीने की कामना करनी चाहिये और न मरने की इच्छा। यह सब-कुछ उसके हाथों में छोड़ दो जो जन्म और मृत्यु दोनों का मालिक है।"

हमने फिर प्रार्थना की, "हम इस दुनिया में आपके बिना एक क्षण भी नहीं रहना चाहते। हे मालिक, आपके बिना यह ज़िन्दगी मौत से भी बदतर होगी।"

हुज़ूर महाराजजी ने कहा, "मैं हमेशा आपके साथ रहूँगा। मैं यह वचन देता हूँ।" (इस तरह महाराजजी ने अपनी बातों की चतुराई से हमें फिर चुप करा दिया। बेशक वे हमेशा हमारे साथ रहते हैं, लेकिन हम तो हमेशा उनके साथ नहीं रहते, और न हमने कभी ऐसा सौदा किया।) प्रोफ़ेसर ने बात जारी रखते हुए कहा, "अच्छी बात है। महाराजजी, क्या आप यह बतायेंगे कि आप हमें किसके हाथों में सौंप जायेंगे। आपके बाद सतगुरु कौन होगा?"

"अभी तो यह भी नहीं बताया जा सकता। समय आने पर सब-कुछ मालूम हो जायेगा", उन्होंने फ़रमाया। उसके बाद उन्होंने एक बीबी से, जो कुछ ही देर पहले हमारे पास बैठ गयी थी, जाकर एक गिलास पानी लाने के लिये कहा। हम यह बाद में समझे कि उसको वहाँ से क्यों भेजा गया था। उसके चले जाने पर प्रोफ़ेसर ने फिर हुज़ूर से अपने उत्तराधिकारी का नाम बताने की ज़िद की। लेकिन हुज़ूर ने यह कह कर कतई मना कर दिया कि तुम लोग इसे गुप्त नहीं रख सकोगे। उन्होंने कहा, "ऐसे भी लोग हैं जो अभी से उसके ख़िलाफ़ साज़िश करना शुरू कर देंगे।"

प्रोफ़ेसर ने पूछा, "हुज़ूर, क्या वे सत्संगी हैं? क्या कोई सत्संगी सतगुरु के हुक्म के ख़िलाफ़ साज़िश कर सकता है?"

हुज़ूर ने हमें बताया, "ऐसा मौक़ा भी आयेगा जब तुम देखोगे कि महत्वाकांक्षी और चालाक मनुष्य किस हद तक जा सकते हैं। लेकिन इसकी फ़िक्र न करो।"

इस पर मैंने प्रार्थना की, "हुज़ूर, मेहरबानी करके हमें इतना गहरा प्यार बख़्शें कि हम कभी गुमराह न हों, और सच्चे बादशाह के चरणों में हमारा प्यार और विश्वास हमेशा बना रहे।"

"मेरा उत्तराधिकारी मुझसे दस गुनी ताक़त और दया-मेहर लेकर आयेगा। सत्संग और डेरा इससे भी ज़्यादा तरक़्क़ी करेगा। आपका प्यार और विश्वास दिनों दिन बढ़ेगा और आपको और भी दया-मेहर और इज़्ज़त मिलेगी", हुज़ूर महाराजजी ने फ़रमाया। उसी समय हुज़ूर महाराजजी के पौत्र चरनसिंह अपने हाथ में एक थैला लिये आते हुए दिखाई दिये और ऐसा लगा कि हुज़ूर अपने आप को और न रोक सके, "देखो, वह आ रहा है", उन्होंने बहुत धीमे स्वर में कहा, मानों अपने आप से ही कह रहे हों।

वह बालक आया और हुज़ूर महाराजजी के चरणों में गिर पड़ा और उन्होंने अपने दोनों हाथ बड़े प्यार से उसके सिर पर रख दिये।

उन्होंने पूछा, "तुम्हारे कॉलेज की छुट्टी तो पन्द्रह दिन पहले हो गई थी। फिर तुम इतने दिन कहाँ रहे ?"

चरन ने बड़ी नम्रता से जवाब दिया, "हुज़ूर, मैं कुछ दिन के लिये सिरसा चला गया था।"

हुज़ूर ने पूछा, "वहाँ सब लोग ठीक हैं ?"

चरन ने जवाब दिया, "बिलकुल ठीक हैं, हुज़ूर।"

"अच्छा तुम थके हुए होगे, जाओ कुछ आराम करो। तुम कहाँ ठहरना चाहोगे ? मेरे पास या प्रोफ़ेसर साहब के पास ? मैं जानता हूँ, तुम प्रोफ़ेसर साहब के साथ ठहरना चाहोगे।" हुज़ूर ने नौकर से उनका सामान 'कोज़ीनुक' वाले उस मकान में ले जाने को कहा जिसमें हम ठहरे हुए थे।

जब वे चले गये तो प्रोफ़ेसर ने फिर से वही विषय छेड़ा, "मालिक, आपके उत्तराधिकारी के बारे में इस जानकारी के लिये हम बहुत आभारी हैं। इससे हमें बड़ी तसल्ली हुई है। जो आपका उत्तराधिकारी बनने वाला है वह अभी उम्र में इतना छोटा है कि हमें विश्वास है कि अभी कई साल तक आपकी मौजूदगी, दर्शन और कृपा का लाभ हमें मिलता रहेगा।"

"इस भरोसे न रहो। इन्तिज़ार करो और देखो क्या होता है", उन्होंने मधुर मुसकराहट के साथ कहा और चुपचाप उठ कर अपने कमरे में चले गये।

7. वार्ता जारी है

अब डलहौज़ी में हमारी छुट्टियों की कहानी फिर शुरू करता हूँ। हमारी छुट्टियों के दिन बड़े आनन्द में गुज़र रहे थे। हम समझते थे कि हुज़ूर महाराजजी यहाँ कुछ आराम फ़रमाने आये थे। परन्तु ऐसा नहीं था। यहाँ भी उन्हें फ़ुर्सत नहीं मिलती थी। उनके दर्शन करने और उनसे मिलने रोज़ कई लोग आते थे। प्रसिद्ध अमृतधारा के मालिक पण्डित ठाकुरदत्त शर्मा, जिनका डलहौज़ी में बँगला भी था, रोज़ आया करते थे। रायज़ादा हंसराज (जो जालन्धर के एक बैरिस्टर थे और वायसराय की कौंसिल के एक सदस्य थे) की भी वहाँ अपनी कोठी थी और वे भी अपने मित्रों के साथ कई बार दर्शन करने आ जाया करते थे। ये बैठकें बड़ी मनोरंजक और ज्ञान देने वाली होती थीं। एक बार एक मुसलमान परिवार आया जिसमें बुरके वाली दो महिलाएँ भी थीं। उनकी बातचीत का कुछ हिस्सा मैं नीचे लिख रहा हूँ।

उन मुसलमान महिलाओं में से एक ने हुज़ूर महाराजजी से अर्ज़ की कि वे मालिक से उनकी इच्छा पूरी करने के लिये प्रार्थना करें। बाद में मालूम हुआ कि उनके पति पंजाब सरकार में मिनिस्टर बनने के उम्मीदवार थे और जल्दी मिनिस्टरों की नियुक्ति की घोषणा होने वाली थी। हुज़ूर ने जवाब दिया कि उन्होंने आज तक किसी चीज़ के लिये प्रार्थना नहीं की। उनके इस जवाब से सब लोग चकित हो गये।

रायज़ादा हंसराज ने कहा, "हुज़ूर, ऐसा क्यों ? प्रार्थना करने की तो हर मज़हब में इजाज़त है।"

हुज़ूर ने पूछा, "लेकिन क्या मालिक की मौज पर सब-कुछ छोड़ देना बेहतर नहीं है ? उससे माँगते रहने की बनिस्बत क्या यह बेहतर नहीं है कि जो कुछ भी वह अपनी मौज में हमें देता है उसमें हम सन्तोष करें ?"

एक मुसलमान सज्जन ने कहा, "लेकिन दुआ (प्रार्थना) तो हरएक इनसान करता है।"

हुज़ूर ने जवाब दिया, "मुसलमानों में भी दो तरह के फ़क़ीर होते हैं। एक तो अहले-दुआ हैं जिनका प्रार्थना करने में विश्वास है। दूसरे हैं अहले-रज़ा, जो अपने आप को पूरी तरह से मालिक की रज़ा या मौज पर छोड़ देते हैं। वे कभी किसी चीज़ के लिये प्रार्थना नहीं करते। वे उसके भाणे में रहते हैं, उसकी रज़ा में राज़ी रहते हैं।"

उस मुसलमान भाई ने पूछा, "लेकिन प्रार्थना करने में क्या हरज है ?"

हुज़ूर महाराजजी ने उत्तर दिया, "अहले-रज़ा वाले मानते हैं कि अगर वह मालिक इस संसार का सारा इन्तिज़ाम आप करता है और अगर वह पूर्ण ज्ञानी है, वह सब-कुछ जानता है, तो क्या उसे किसी की सलाह, सुझाव या प्रार्थना की ज़रूरत है ? या क्या वह हमारे ऐसे सुझावों को मान लेगा जो कि उसकी दृष्टि में ग़लत हैं या हानिपूर्ण हैं ? क्या हमें उससे यह कहना चाहिये कि तू यह कर और यह न कर ?"

प्रोफ़ेसर जगमोहनलाल ने कहा, "आख़िर प्रार्थना है क्या ? मालिक के विवेक और दया पर अविश्वास करना ही तो है।"

इस पर रायज़ादा हंसराज बोले, "असल में प्रार्थना के मूल में यही भावना है कि यह मालिक कहीं न कहीं ग़लती कर रहा है और हम मालिक को पहले ही चेताना चाहते हैं कि उसकी ग़लती के बुरे नतीजे हो सकते हैं।"

पण्डित ठाकुरदत्त ने कहा, "लेकिन प्रार्थनाएँ तो वेदों में भी आती हैं।"

हुज़ूर महाराजजी ने फ़रमाया, "मनुष्य को मालिक से केवल दया, मेहर और अपने गुनाहों की माफ़ी के लिये ही प्रार्थना करना चाहिये। हम दुनिया की छोटी-छोटी और नाशवान चीज़ों के लिये प्रार्थनाएँ क्यों करें ? मौलाना रूम कहते हैं, 'मालिक से खुद मालिक के सिवाय और किसी चीज़ की माँग मत करो। दुनियादारी की बेकार की माँगों से अपने दिल को मैला न करो।' गुरु नानक कहते हैं, 'उस मालिक से नाम के सिवाय और कोई चीज़ माँगना दुःख और मुसीबतों को बुलाना है'।"

"प्रार्थना का यह पहलू तो हमारे लिये बिलकुल नया है", रायज़ादा बोल उठे।

हुज़ूर महाराजजी ने कहा, "दुनिया वाले बड़ी अजीब-अजीब प्रार्थनाएँ करते हैं। कुछ दिन पहले मुझे एक साहब की चिट्ठी मिली जिसमें

उन्होंने मुझसे उनकी पालतू बीमार बिल्ली के लिये प्रार्थना करने का आग्रह किया था। यह आग्रह किसी नादान लड़की या किसी भोले-भाले देहाती का नहीं था। चिट्ठी लिखने वाले एक पढ़े-लिखे सभ्य यूरोपियन सज्जन थे। लोग अपने कुत्ते, बिल्ली, घोड़े, गाय, गिलहरी के लिये प्रार्थना करने का अनुरोध करते हैं। इसका क्या मतलब होता है? वे यह जानते हैं — और कम से कम सत्संगी तो सब जानते ही हैं — कि तमाम तकलीफ़ें और बीमारियाँ जीवों के पिछले कर्मों के अनुसार आती हैं और कर्मों का यह क़र्ज़ चुकाना ही पड़ता है। काल तो अपने क़र्ज़ की पाई-पाई वसूल करता है और अगर वह जीव से वसूल नहीं कर सकता तो इसके कर्मों के बोझ को अपने ऊपर लेने वाले सतगुरु से लेता है। सत्संगी इस बात को अच्छी तरह जानते हैं। फिर भी वे चाहते हैं कि चाहे उनके सतगुरु को दर्द सहना पड़ जाये, लेकिन उनके कुत्ते और बिल्ली बच जायें। क्या इसका यह मतलब नहीं हुआ कि वे अपने सतगुरु से ज़्यादा अपने कुत्तों-बिल्लियों को प्यार करते हैं? और इस पर दावा करते हैं कि वे अपने सतगुरु को कुल मालिक परमात्मा मानते हैं।"

पण्डित ठाकुरदत्त ने पूछा, "तो क्या प्रार्थना करनी ही नहीं चाहिये?"

हुज़ूर ने उत्तर दिया, "नहीं! प्रार्थना के अपने फ़ायदे हैं। यह मनुष्य को नम्र बनाती है और उसके घमण्ड और अहंकार को दूर करती है। मनुष्य की बेबसी और लाचारी को उसके सामने प्रकट करके यह मनुष्य को भक्ति, पवित्रता तथा ईश्वर-परायणता प्रदान करती है। हमारा सम्पूर्ण जीवन ही प्रार्थनामय होना चाहिये। ऐसी प्रार्थना हमारा हृदय शुद्ध कर देती है। लेकिन हमें सांसारिक पदार्थों के लिये प्रार्थना नहीं करनी चाहिये।"

मुसलमान सज्जन ने निवेदन किया, "हुज़ूर, क्या आप हमें एक अच्छी प्रार्थना का नमूना बतायेंगे?"

जवाब में हुज़ूर महाराजजी ने फ़रमाया, "अगर मैं प्रार्थना करता तो इस तरह करता :

मेरे मालिक! मैं बिलकुल नादान हूँ। मैं नहीं जानता तुझसे क्या माँगूँ। जो तू मेरे लिये उचित समझे, वही दे दे। और मुझे वह शक्ति और बुद्धि बख़्श कि जो कुछ तू दे या जहाँ

और जैसे तू रखे, उसी में मैं सदा ख़ुश रहूँ। मुझमें कोई गुण नहीं, कोई भक्ति नहीं। मेरे कर्म काले और पाप-पूर्ण हैं। मुझमें कोई अच्छाई नहीं, मन ने मुझे पूरी तरह से कुचल दिया है। मुझ जैसे पापी के लिये, हे मालिक, तेरे चरणों के सिवाय और कोई ओट नहीं है। रहम कर और मुझे अपनी शरण में ले ले। मुझे और कुछ नहीं चाहिये। मुझे अपना दास बना ले ताकि मैं तेरा हो जाऊँ और तू मेरा हो जाये।"

मुसलमान सज्जन ने कहा, "ख़ूब!"

उसके बाद हुज़ूर महाराजजी ने कबीर और धन्ना जाट की प्रार्थनाएँ सुनाईं।

कबीर साहिब की प्रार्थना :

भूखे भगति न कीजै ॥ यह माला अपनी लीजै ॥
हउ मांगउ संतन रेना ॥ मै नाही किसी का देना ॥
माधो कैसी बनै तुम संगे ॥ आपि न देहु त लेवउ मंगे ॥

मेरी माँगे ये हैं :
दुइ सेर मांगउ चूना ॥ पाउ घीउ संगि लूना ॥
अध सेरु मांगउ दाले ॥ मोकउ दोनउ वखत जिवाले ॥
खाट मांगउ चउपाई ॥ सिरहाना अवर तुलाई ॥
ऊपर कउ मांगउ खींधा ॥ तेरी भगति करै जनु थींधा ॥
मै नाही कीता लबो ॥ इकु नाउ तेरा मै फबो ॥
कहि कबीर मनु मानिआ ॥ मनु मानिआ तउ हरि जानिआ ॥
(आ.ग्र., पृ. 656)

धन्ना जाट की प्रार्थना :
गोपाल तेरा आरता ॥

जो जन तुमरी भगति करंते तिन के काज सवारता ॥
दालि सीधा मागउ घीउ ॥ हमरा खुसी कर नित जीउ ॥
पन्हीआ छादनु नीका ॥ अनाज मगउ सत सीका ॥
गऊ भैस मगउ लावेरी ॥ इक ताजनि तुरी चंगेरी ॥
घर की गीहनि चंगी ॥ धनु धंना लेवै मंगी ॥
(आ.ग्र., पृ. 695)

हुज़ूर ने कहा, "इन प्रार्थनाओं का आशय यह दिखाना है कि हमारी ज़रूरतें कितनी कम हैं और हम माँगते कितना अधिक हैं।"

पण्डित ठाकुरदत्त ने कहा, "पर जो कुछ हम माँगते हैं वह मिलता तो नहीं है।"

हुज़ूर ने जवाब दिया, "मालिक हमें सब-कुछ दे सकता है और देता है। पर सवाल यह है कि हमें माँगना क्या चाहिये ? मैं इस सम्बन्ध में अपना खुद का एक अनुभव सुनाता हूँ। मैं तब नौकरी में था और मरी पहाड़ में मिलिट्री सब-डिवीज़न का इंचार्ज था। मरी एक महत्त्वपूर्ण मिलिट्री स्टेशन था और वहाँ पानी पहुँचाने के लिये सरकार ने एक बड़े पैमाने पर योजना बनाई थी। इसमें बहुत दूर से पानी लाने की योजना थी और इसके लिये बड़ी मज़बूत व सख़्त चट्टानों में से पाइप लाइन डालनी थी। यह काम मुझे सौंपा गया।

पहले महीने के अनुभव से ही यह मालूम हो गया कि अगर इन चट्टानों को छेनी और दूसरे छोटे औज़ारों से काटा गया तो इसमें समय बहुत लगेगा और सरकार ने जो रक़म और समय निश्चित किया है उसमें यह काम नहीं हो पायेगा। एक महीने में हम क़रीब दो फर्लांग ही बढ़ पाये और सरकार द्वारा मंज़ूर रक़म का चौथाई हिस्सा ख़र्च हो गया। मैंने यह बात अपने बड़े अफ़सरों को बताई और उनसे इस काम को बारूद की सुरंग के ज़रिये पूरा करने की इजाज़त माँगी। यह इजाज़त मिल गई और काम तेज़ी से चलने लगा। जब हम आख़िरी मील पर आये तो वह रास्ता शहर के उस भाग से होकर गुज़रता था जहाँ पर यूरोपियन लोगों के बँगले थे और हमारी पाइप लाइन को उस सड़क के नीचे से जाना था जिस पर यूरोपियन लोगों की दुकानें और एक बड़ा गिरजाघर था। दुकानदारों और पादरियों ने सरकार को नोटिस दिया कि यदि विस्फोट से उनकी सम्पत्ति को कुछ नुक़सान हुआ, अगर खिड़कियों का एक शीशा भी टूटा तो सरकार को उसका हर्जाना अदा करना पड़ेगा।

हमने फिर छेनी-हथौड़ी से पत्थर काटना शुरू कर दिया। लेकिन वहाँ की चट्टान बड़ी ही सख़्त निकली और उसे काटने की क़ीमत दस गुना ज़्यादा बैठने लगी। सरकार के सामने एक बड़ी उलझन पैदा हो गई। बड़े-बड़े अफ़सरों की बैठक बुलाई गई। लेकिन उन्हें इस समस्या का कोई हल न मिला। सारी बहस और सर-पच्ची बेकार रही। आख़िर

मेरे सबसे बड़े अफ़सर मेरी तरफ़ मुड़े और बोले, "क्या आपके पास इस समस्या को सुलझाने के लिये कोई उपाय या सुझाव नहीं है?" मैंने उनसे कहा कि अभी-अभी मुझे एक बात सूझी है और अगर आप मुझे लकड़ी के दो-चार सौ स्लीपर ख़रीदने की इजाज़त दे दें तो मैं यह काम पूरा कर सकूँगा। उन्होंने कहा, 'जितने चाहो ख़रीद लो। हम इस मामले को पूरी तरह से आप पर छोड़ते हैं और अगर आप इस समस्या को हल कर लेते हैं तो हमें बड़ी ख़ुशी होगी।' यह कह कर वे सब चले गये।

चट्टान के सिरे पर लकड़ी के दो-तीन भारी स्लीपर रख कर मैंने फिर विस्फोट का काम शुरू किया, मेरी जुगत सफल रही और हम अच्छी तरह आगे बढ़ने लगे। शुरू-शुरू में सारा काम मैं ख़ुद देखता था और अपने मातहतों पर छोड़ने का साहस नहीं करता था। मेरे मातहत और मज़दूर बड़ी-बड़ी दुकानों वाले भाग तक पहुँचते-पहुँचते इस काम में होशियार और निपुण हो गये और मैं उनकी ओर से आश्वस्त हो गया। एक दिन सुबह जब ठीक गिरजाघर और सबसे बड़ी अंग्रेज़ी दुकान के बीच में काम चल रहा था, मेरा नौकर मेरे लिये दूध लेकर आया। उस दिन सुबह मैं रोज़ से जल्दी चला आया था। उस वक़्त नाश्ता तैयार नहीं था इसलिये मैं नौकर से कह आया था कि मेरे लिये दूध मौक़े पर ही ले आये। मैंने अपने आदमियों को पहले से रखे हुए विस्फोटकों को छोड़ने के लिये कहा और दूध पीने के लिये कुछ मिनटों के लिये वहाँ से एक ओर आ गया। जब मैं वापस आया तो देखा कि विस्फोट सफलतापूर्वक हो गया था। उसके बाद मैंने कहा कि चलो अब बचे हुए दो विस्फोटकों पर भी स्लीपर लगा दें।

मेरे ओवरसियर ने कहा, "लेकिन साहब, हम तो पहले ही उसमें पलीता लगा चुके हैं।"

"पलीता लगा दिया? हे मालिक! उन पर स्लीपर तो लगाये ही नहीं गये थे। तुम सर्वनाश कराओगे", मैंने कहा।

उस समय एक पल भी बरबाद नहीं किया जा सकता था। मैं उन दोनों विस्फोटकों की ओर दौड़ा जिनमें आग लगा दी गई थी। मैंने सोचा, हो सके तो उन पलीतों को बाहर निकाल लूँ। रास्ते में मुझे मेरे एक अंग्रेज़ मातहत ने दोनों हाथों से पकड़ लिया और बोला, 'मैं आपके

टुकड़े-टुकड़े होते नहीं देख सकता।' मैंने कहा, 'फ़्रांसिस, मुझे जाने दो।' पर वह नहीं मान रहा था।

उस समय अनायास मेरे मुँह से एक प्रार्थना निकल पड़ी। मुझे थोड़े दिनों पहले ही बाबाजी महाराज से नामदान मिला था, और मैंने पूरी दीनता के साथ उन्हें याद किया। विस्फोट से अपने शरीर को आघात का मुझे कोई डर नहीं था। लेकिन यह ख़याल सता रहा था कि वे यूरोपियन अफ़सर हम हिन्दुस्तानियों के बारे में क्या सोचेंगे जिनको उन्होंने इतनी ज़िम्मेदारी का और इतना ज़रूरी काम सौंपा था। इसलिये मैं उन विस्फोटकों की ओर दौड़ पड़ा। बाक़ी सब लोग भयभीत और हक्के-बक्के खड़े रह गये। वे मेरी सुरक्षा और सलामती के लिये चिन्तित थे, क्योंकि मेरे साथी और मातहत मुझे बहुत चाहते थे।

उन पलीतों (फ़्यूज) को निकालने पर मालूम हुआ कि केवल एक चौथाई इंच जलने के बाद वे बुझ गये थे। कैसे बुझे, यह मैं आज तक नहीं जानता। उनमें कोई ख़राबी भी नहीं थी, क्योंकि जब दोबारा काम में लाये गये तो वे कारगर हुए।"

मुसलमान सज्जन ने कहा, "इससे यह ज़ाहिर है कि परमात्मा कभी-कभी हमारी प्रार्थनाएँ सुन लेता है। पर यह मालूम नहीं कि उनको मंज़ूर करने का उसने क्या उसूल बना रखा है।"

हुज़ूर मुसकराये और बोले, "हमारी आँखें तो केवल मौजूदा बातों को ही देख सकती हैं। लेकिन परमात्मा सर्वशक्तिमान और त्रिकालदर्शी है। वह समय की सीमाओं के परे देखता है। हमें उसके हुक्म में रहना चाहिये और जो कुछ वह देता है उसे ख़ुशी से स्वीकार करना चाहिये। हमें उसकी रज़ा को बदलने का ख़याल तक नहीं करना चाहिये।

बसरा की महिला सन्त राबया बसरी के बारे में कहा जाता है कि उसने कभी अपनी बीमारी को दूर करने के लिये दवा नहीं ली और न अपनी ग़रीबी दूर करने की कोशिश की, उसने इन चीज़ों को मालिक की बख़्शिश समझ कर स्वीकार किया।"

हुज़ूर महाराजजी ने इसी बात को ज़ारी रखते हुए फ़रमाया, "पाँचवीं पातशाही गुरु अर्जनदेव (जो शहंशाह जहाँगीर के समय में हुए थे) को बादशाह के कहने पर पंजाब के गवर्नर ने बड़ी यातनाएँ दी थीं। उनको जलते हुए तवे पर बैठाया गया और जलती हुई गरम राख उनके नंगे बदन पर डाली गई। मुसलमान फ़क़ीर मियाँ मीर जेल में उनसे

मिलने गये तो गुरु साहिब पर किये गये ज़ुल्म मियाँ मीर से बरदाश्त न हो सके। उन्होंने गुरु अर्जनदेव से कहा कि अगर आप इजाज़त दें तो मैं इन जल्लादों और इनके ज़ुल्मों के साथ-साथ इस सारे लाहौर के इलाक़े का नामो-निशाँ मिटा दूँ। गुरु अर्जनदेव मुसकराये और बोले, 'मेरे भाई, पहले इस बात का जवाब दो कि क्या यह सब-कुछ मेरे प्यारे मालिक की मौज के ख़िलाफ़ हो रहा है? अगर नहीं तो फिर उसके हुक्म और उसकी मौज से जो कुछ हो रहा है उसमें मुझे बहुत ख़ुशी है। 'तेरा भाणा मीठा लागै।'"

"दुनिया ने सन्तों-महात्माओं के ऊपर बहुत ज़ुल्म किये हैं", रायज़ादा हंसराज ने कहा।

पण्डित ठाकुरदत्त ने कहा, "यह कितनी बेरहमी की बात है। एक इनसान पर इसलिये ज़ुल्म किया जाता है कि वह परमात्मा को उस तरीक़े से नहीं पूजता जिस तरीक़े से दूसरे लोग पूजते हैं।"

मुसलमान सज्जन ने पूछा, "हुज़ूर, ऐसा क्यों होता है?"

महाराजजी ने फ़रमाया, "तर्क और प्यार के रुख ही अलग-अलग होते हैं। प्यार किसी क़ानून को नहीं जानता, और तर्क किसी प्यार को नहीं जानता। क़ानून और तर्क इस दुनिया के कारोबार के लिए बने हैं। लेकिन परमात्मा के धाम तो सिर्फ़ प्यार के पंख के सहारे उड़ कर ही पहुँचा जा सकता है। 'सद किताब व सद वरक दर नार कुन' यानी अपनी किताबों और अपने ज्ञान को आग में जला दे और मालिक के प्यार से अपने मन को तरो-ताज़ा बना ले, अपने दिल के बग़ीचे को उसके प्यार रूपी पानी से सींच ले।

सन्त आकर सिर्फ़ उस मालिक के प्यार और इश्क़ के गीत गाते हैं। वे दुनिया के रीति-रिवाजों, कर्मकाण्ड, परिपाटियों या धर्मों में दख़ल नहीं देते। वे दुनिया और दुनिया को चाहने वालों में नही उलझते। अगर किसी के यहाँ शादी होती है, तो वे कहते हैं कि अपने समाज के रीति-रिवाजों के मुताबिक़ या जिस तरह भी चाहो, कर लो। मतलब तो सिर्फ़ दूल्हा और दुलहन के हाथ पकड़ने से या वैवाहिक जीवन में बँधने से है। इसे जिस तरह भी ठीक समझो, कर लो। अगर मौत के बाद किसी शरीर का क्रियाकर्म करना है तो सन्त कहते हैं कि चाहे दफ़ना दो या जला दो। अगर एक बच्चा पैदा होता है तो वे कहते हैं, 'नामकरण आदि संस्कार जिस तरह चाहे कर लो। परमात्मा इन छोटी-छोटी बातों

में दख़ल नहीं देता। वह तो सिर्फ़ तुम्हारा प्यार और पवित्रता ही चाहता है।'

तकलीफ़ तो तब होती है जब एक तर्क करने वाला अपने उसूलों को प्यार और परमात्मा की हद में ज़बरदस्ती लागू करने की कोशिश करता है। वह चाहता है कि, शरीयत (धार्मिक नेताओं के द्वारा बनाये गये आचार-व्यवहार के नियम) परमात्मा के भक्तों की भी प्यार के रास्ते में रहनुमाई करते रहें। वह यह नहीं जानता कि भक्तों का परमात्मा के लिये और परमात्मा का भक्तों के लिये प्यार असीम होता है। यह प्यार किसी भी प्रकार की सीमा या घेरे में बाँधा नहीं जा सकता। परमात्मा के प्रेमी सब क़ानूनों से परे हैं। वे तो प्रीतम में लीन होकर खुद उसका रूप हो जाते हैं।

प्रेमियों के सरताज मंसूर को सूली क्यों दी गई? क्योंकि अपने प्रेम के आनन्द में झूम कर वह चिल्ला उठा, 'मैं वही हूँ!' 'मैं वही हूँ!' प्रेम की अवस्था से अनजान निगुरों की थोथी फ़िलासफ़ी मंसूर की रूहानी गति को नहीं समझ सकी और उसके ख़िलाफ़ कुफ़्र (नास्तिकता) का फ़तवा (निर्णय) दे डाला। शम्स तब्रेज़ की खाल जीते-जी सिर्फ़ इसीलिये खींच ली गई कि उन्होंने एक मुर्दा बच्चे को जो 'अल्लाह के हुक्म से उठ जा' कहने पर खड़ा न हुआ तो 'अच्छा, मेरे हुक्म से उठ जा', कह कर जीवित कर दिया। परम सन्त कबीर कहते हैं, 'कर्त्ता करे न कर सके, गुरु करे सो होय।' पलटू साहिब कहते हैं कि सन्त परमात्मा के इतने प्यारे और नज़दीक होते हैं कि वे उससे जो चाहे करा लेते हैं, वह मना नहीं करता। लेकिन बाल की खाल खींचने वाले तर्क-शास्त्री यह बात समझ ही नहीं सकते और यह मानते हैं कि जो बात वे नहीं समझ सकते, वह सम्भव ही नहीं है। वे यह नहीं जानते कि ऐसे भी क्षेत्र हैं जहाँ तर्क और बुद्धि की पहुँच तक नहीं है।"

मुसलमान सज्जन ने कहा, "लेकिन शरीयत के क़ानूनों का पालन भी तो किया जाना ज़रूरी है।"

हुज़ूर ने फ़रमाया, "ज़रूर, लेकिन उनकी अपनी हद में। शरीयत और तरीक़त की सीमा से ऊपर मारफ़त (दिव्य-ज्ञान) और हक़ीक़त (परम तत्त्व में एकाकार) के क्षेत्र भी हैं। एक विद्यार्थी को अपनी प्राथमिक कक्षा से ही नहीं चिपके रहना चाहिये। सन्तों ने आध्यात्मिक विकास के चार दर्जे बताये हैं। शरीयत (आचार-व्यवहार) उनमें से

पहला दर्जा है। लेकिन एक सदाचारपूर्ण जीवन बिताना ही तो आख़िरी मंज़िल नहीं है। उसके बाद जिज्ञासु तरीक़त (अभ्यास के मार्ग) की अवस्था में आता है। उसे एक सच्चा गुरु ढूँढ़ना पड़ता है और उसकी रहनुमाई में रूहानी अभ्यास करना पड़ता है जिससे कि वह मालिक के महल के दरवाज़े तक पहुँच सके। तीसरी अवस्था मारफ़त कहलाती है जिसमें उसे दिव्य-ज्ञान की प्राप्ति होती है। चौथी अवस्था हक़ीक़त है जिसमें आत्मा परमात्मा से मिल कर एक हो जाती है। अब बताइये कौन हमेशा के लिये अपने पहले दर्जे में ही पड़ा रहना चाहेगा जब कि उससे ऊपर के दर्जों का पता हो और वह जानता हो कि रूहानी तरक़्क़ी के लिये ये ऊपर के दर्जे बहुत ज़रूरी हैं ?"

मुसलमान सज्जन ने पूछा, "क्या यही आपका भी रास्ता है ?"

हुज़ूर ने जवाब दिया, "सन्तों का मार्ग हमेशा एक रहा है, चाहे वे किसी भी जाति, देश या धर्म में क्यों न आये हों। यह हरएक युग और समय के लिये समान है। यह किसी मनुष्य की रचना नहीं है, जिसमें कुछ घटाया-बढ़ाया या रद्दोबदल किया जा सके। यह तो मालिक का बनाया हुआ है और मनुष्य की सृष्टि के साथ ही बना है, और हर समय में और हर मनुष्य के लिये एक-सा है।"

मुसलमान सज्जन ने पूछा, "हुज़ूर, आपके रूहानी अभ्यास का मुसलमानी नाम क्या है ?"

हुज़ूर महाराजजी कुछ मुसकराये और बोले, "मुसलमान सन्त इसे 'सुलतान-उल-अज़कार' कहते हैं, जिसका अर्थ है — अभ्यासों का बादशाह।"

उसके बाद उस मुसलमान सज्जन ने कहा, "हिन्दुओं का यह पुनर्जन्म का उसूल मुझे अच्छी तरह समझ में नहीं आता।"

हुज़ूर ने फ़रमाया, "मैं थोड़े से शब्दों में इसे समझाने की कोशिश करता हूँ। इस संसार में हमारी इच्छाएँ ही हमारे जन्म और पुनर्जन्म का कारण होती हैं। कुदरत का क़ानून है, 'जो माँगोगे वह मिलेगा।' हमारा जीवन हमारी इच्छाओं और लालसाओं के अनुसार गढ़ा जाता है। जो भी इच्छा हम करते हैं, कुदरत उसे पूरा करने की व्यवस्था करती है। हमारा जन्म, जन्म का स्थान, परिवार और दूसरे हालात जिनमें हमें जन्म लेना पड़ता है, सब इसी क़ानून के अनुसार हमेशा से बनते आ रहे हैं। 'जहाँ आसा तहाँ वासा।' जहाँ हमारी कामनाएँ हैं वहीं हम खिंचे चले

आते हैं। सांसारिक पदार्थों के प्रति हमारा मोह और प्यार ही हमें बार-बार खींच कर यहाँ ले आता है। जितना तीव्र हमारा मोह और हमारी इच्छाएँ होती हैं, उतनी ही जल्दी हम अपनी इच्छा के पदार्थ को पा लेते हैं।

हमारी इच्छाएँ तो पूरी होकर रहेंगी, लेकिन यह ज़रूरी नहीं कि वे इसी जन्म में पूरी हों। हो सकता है, किसी ख़ास इच्छा को पूरी करने के लिये इस जन्म में परिस्थितियाँ अनुकूल न हों। अतएव वह इच्छा हमारे अन्तःकरण (हमारे मन का वह सूक्ष्म भाग जो हमारी इन इच्छाओं को दर्ज करता रहता है) में दर्ज कर ली जाती हैं और कुदरत इसे पूरा करने की व्यवस्था शुरू कर देती है। लेकिन उसे पूरा करने के लिये समय चाहिये। उस इच्छा का पूरा होना इस पर भी निर्भर करता है कि हमारी इच्छा कैसी है और कितनी तीव्र या हलकी है। अगर हमारा मौजूदा शरीर उस इच्छा को पूरी करने के लायक़ नहीं है तो हमें दूसरा शरीर दिया जायेगा जिसमें कि हमारी अपूर्ण इच्छाएँ पूरी हो सकें।

मान लें, एक नौजवान विवाहित औरत बिना सन्तान के मर जाती है। वह उम्र-भर सन्तान के लिये दुआएँ माँगती रही थी और इसलिये उसकी इस तीव्र इच्छा का भार मरते समय उसके अन्तर में बना रहा। कुदरत उसे ऐसा शरीर (किसी मादा जानवर का) देगी कि उसको हर छः-छः महीने में एक साथ 6-6 बच्चे होते रहें। कुदरत बड़ी बेरहम और सख़्त है। शरीर और शक्ल का उसके आगे कोई महत्त्व नहीं। वह तो सिर्फ़ इस बात पर ही ध्यान देती है कि अन्तःकरण पर क्या इच्छाएँ दर्ज हैं और किस प्रकार के शरीर में वे पूरी हो सकती हैं। हमारे अन्तःकरण पर अंकित ये इच्छाएँ हर जन्म में हमारे साथ जाती हैं।"

मुसलमान सज्जनों में से एक ने कहा, "कुदरत का एक इनसान को आदमी के चोले से जानवर के चोले में ले जाना तो बड़े ही ज़ुल्म की बात मालूम देती है।"

हुज़ूर महाराजजी ने उत्तर दिया, "दरअसल कुदरत बहुत ही सख़्त है। कुदरत के जैसी कठोरता और सख़्ती आपको दुनिया की किसी भी हुकूमत या सरकार में नहीं मिलेगी। लेकिन क्या यह सही नहीं है कभी-कभी मनुष्य का व्यवहार इतना ख़राब होता है जितना एक जानवर का भी नहीं होता? अगर कुदरत ऐसे जीव को नीचे की जूनों में भेजती है जिनमें उसे अपने कर्मों का फल भोगने और उनसे अनुभव प्राप्त करके

भविष्य में सुधरने के लिये सही वातावरण मिलता है तो क्या यह उचित नहीं है? पुनर्जन्म के इस क़ानून के साथ कर्मों का क़ानून भी जुड़ा हुआ है। जैसा बोओगे वैसा काटोगे, जैसा करोगे वैसा भरोगे। कर्मों का क़र्ज़ व बदला तो चुकाना ही पड़ेगा। पिछले कर्मों का खाता हर जन्म के साथ जाता है।

मान लीजिये, आपने अपने लड़के को स्कूल में भर्ती करा दिया है और वह रोज़ स्कूल जाता है और कड़ी मेहनत करता है ताकि साल के अन्त में उसका शिक्षक उसे अगले दर्जे में चढ़ा दे। लेकिन अगर वह अपना पाठ याद नहीं करता, रोज़ स्कूल नहीं जाता और बुरी संगति में इधर-उधर घूमता रहता है और उस क्लास में रहने की योग्यता को भी खो देता है तो ऐसी हालत में शिक्षक द्वारा उसे वापस निचले दर्जे में डाल देना क्या उचित नहीं होगा?

इसी तरह संसार भी एक बहुत बड़ा स्कूल है जिसमें परमपिता ने हमें कुछ सीखने अर्थात् आत्म-ज्ञान प्राप्त करने और सत्य को पहचानने के लिये भेजा है। इस संसार-रूपी स्कूल में भी बहुत-से वर्ग और दर्जे हैं। अगर हम अपने जीवन में वह सबक़ सीख लेते हैं जिसे सीखने के लिये इस स्कूल में भेजे गये हैं — अपने आप को और अपने मालिक को पहचान लेते हैं — तो निश्चित ही हम ऊँचे दर्जे में यानी ऊँचे आध्यात्मिक मण्डलों में चढ़ा दिये जायेंगे। लेकिन अगर हम अपना सबक़ सीखने के बजाय उस सबक़ को भी भुला देंगे जो हमने पिछले दर्जे में सीखा था, अर्थात् हम मनुष्य होते हुए भी पशुओं जैसे काम करने लगेंगे तो अवश्य ही हम दोबारा पशुओं के दर्जे में पहुँच जायेंगे।

याद रखिये, कुदरत फुज़ूल-ख़र्च नहीं है। वह जीव को वही देह देती है जिसमें कि वह अपनी अधूरी लालसाओं को ठीक तरह से पूरी कर सके। अगर मनुष्य-जन्म में जीव की ऐसी इच्छाएँ और लालसाएँ होती हैं जो पशुओं के समान हों तो गिर कर वह अगला जन्म पशुओं की जून में पायेगा।"

8. शब्द

उसी दिन पंजाब सरकार के उद्योग-विभाग के उप-प्रधान श्री वीरभान एक यूरोपियन सज्जन और एक यूरोपियन महिला के साथ आये। सन्तों की रीति निराली होती है। वे अपने जीवों को चुम्बक की तरह खींच कर अपने पास ले आते हैं। हुज़ूर महाराजजी को देखते ही वह यूरोपियन महिला दौड़ कर उनके चरणों में गिर पड़ी। हुज़ूर ने अपने दोनों हाथ उसके सिर पर रख दिये और उससे उठने के लिये कहा। पर वह न उठी। वह रोने लगी और हुज़ूर के चरणों को चूमना शुरू कर दिया। वह एक न भुलाया जा सकने वाला दृश्य था। हुज़ूर एक नीची आराम-कुर्सी पर बैठे हुए थे और वह महिला अपने आँसुओं से उनके चरण भिगो रही थी।

हुज़ूर ने कहा, "शान्त हो मेरी बेटी। उठो और बैठ जाओ।"

उस महिला ने ज़रा-सा अपना सिर ऊपर उठाया, महाराजजी की आँखों में देखा और फिर से अपना सिर उनके चरणों में रख दिया।

हुज़ूर फिर बोले, "अब बस करो। उठो और बातें करो। तुमने यह माथा टेकने का हिन्दुस्तानी तरीक़ा कहाँ से सीखा? अच्छा बेटा, अब उठो!" इन शब्दों में प्यार और हुक्म दोनों भरे थे। वह महिला उन्हें सुन कर उठ बैठी।

"मेरे मालिक! यह सब-कुछ आपने ही तो सिखाया है", उसने उत्तर दिया।

"लेकिन इससे पहले तो हम कभी नहीं मिले हैं", हुज़ूर ने फ़रमाया।

"क्या हम कभी नहीं मिले? क्या हम पुराने मित्र नहीं हैं?" उसने एक क्षण रुक कर फिर कहा, "क्या मेरे बचपन से ही आप साथी और मार्गदर्शक नहीं रहे हैं?"

उसकी कहानी इस प्रकार थी। उसका नाम मिस ई..... था और वह अमेरिका की रहने वाली थी। बचपन में उसे कभी-कभी हुज़ूर महाराजजी का स्वरूप दिखाई देता था। लेकिन वह समझ नहीं पाती थी कि ये कौन हैं। कुछ समय से उसे दर्शन होने बन्द हो गये थे और जो पहले दर्शन हुआ करते थे उन्हें भी वह भूल-सी गई थी। एक सप्ताह पहले वह डलहौज़ी आई थी। उसे फिर से दर्शन होने शुरू हो गये। लेकिन इस बार उसे स्वप्न में दर्शन होने लगे। इन दर्शनों का उसके मन पर बहुत शान्त और सुखदायी असर पड़ता था और वह इन्हें पाकर बहुत ख़ुश होती थी। उसे ऐसा आभास होता था कि उसके जीवन में कोई बहुत बड़ी घटना जल्दी ही घटने वाली है और ये दर्शन उसकी पूर्व-सूचना है। वह चाहती थी कि वह समय किसी तरह जल्दी ही निकट आ जाये, लेकिन इसमें उसका क्या बस था। जब मौज आती तब महाराजजी उसे दर्शन देते और कहते, "तैयार रहो।" इसका वह कोई मतलब समझ नहीं पाती थी। वह बोली, "मैं केवल प्रार्थना कर सकती थी, और वही मैंने शुरू कर दी।"

वह अपनी कहानी सुनाती चली गयी, "कल मेरी होटल में एक हिन्दुस्तानी सज्जन अपनी सुन्दर पत्नी और बच्चों के साथ आकर ठहर गये। उन्हें मेरे पास का ही कमरा मिला। उनके पास बहुत-सी विदेशी पत्रिकाएँ जैसे 'लाइफ़', 'टाईम', 'लुक', 'स्केच' वग़ैरह थीं, जिन्हें मैं बम्बई छोड़ने के बाद से देख ही नहीं पाई थी। इस सिलसिले में उसी शाम को उनसे मेरा परिचय हो गया। लेकिन इस मुलाक़ात में मालिक को कुछ और ही मंज़ूर था। ज़ाहिर तौर पर मालिक ने मुझे उनके पास एक तस्वीरों वाला अख़बार लेने के लिये भेजा था, लेकिन वास्तव में वे मुझे अपनी तस्वीर दिखाना चाहते थे। ज्यों ही मैंने उनके कमरे में पैर रखा, मेरा ध्यान चाँदी की फ्रेम में जड़ी हुई एक फ़ोटो पर गया। मैं एक बच्चे की तरह उस तस्वीर की ओर दौड़ पड़ी और बिना किसी से पूछे उसे उठा लिया। एक क्षण बाद मैंने पूछा, 'ये कौन हैं? यह किनकी फ़ोटो है?'

उन सज्जन ने (जिनका नाम बाद में मालूम हुआ कि श्री वीरभान है) जवाब दिया, 'यह हमारे सन्त-सतगुरु की फ़ोटो है। क्या आप कभी इनसे मिली हैं?'

मैंने कहा, 'हाँ, कई बार, लेकिन केवल स्वप्न में या तल्लीनता के क्षणों में।' मैंने मन में सोचा कि इस फ़ोटो में बिलकुल वैसा स्वरूप है जैसा कि मुझे दर्शनों में दिखाई देता रहा है। चेहरे पर वही दिव्य प्रकाश, वही प्रफुल्ल मुसकान, प्यार व दया-मेहर को बरसाते हुए वे ही ज्योतिर्मय नेत्र और वैसी ही सफ़ेद स्वच्छ पोशाक और श्वेत दाढ़ी।

'मैं उस फ़ोटो को बार-बार चूमती और भावावेश में उसे हृदय से लगाती रही। उस हिन्दुस्तानी परिवार को मेरे इस व्यवहार पर कोई आश्चर्य नहीं हुआ। वे ख़ामोशी के साथ देखते रहे।

'ये कहाँ रहते हैं?' मैंने श्री वीरभान से पूछा?

उन्होंने मुझे थोड़ा चिढ़ाते हुए जवाब दिया, 'भक्तों के हृदय में।'

'मैं इनसे कहाँ मिल सकती हूँ?' मैंने फिर पूछा। और हमारी लम्बी बातचीत का नतीजा है कि मैं आज यहाँ बैठी हूँ।"

बाद में उसने बताया कि उसके मन में सिर्फ़ एक शंका थी। फ़ारस के एक फ़क़ीर ने उससे कहा था कि उसको अपना गुरु हिन्दुस्तान में मिलेगा। उस फ़क़ीर ने कहा था, "वह दुनिया के सन्तों का बादशाह है और उसका आश्रम उत्तरी हिन्दुस्तान में एक नदी के किनारे है।" लेकिन जब उसे यह मालूम हुआ कि हुज़ूर महाराजजी का आश्रम ब्यास नदी के किनारे है तो उसकी यह शंका भी दूर हो गयी। वह एक बुद्धिमान महिला थी तथा यूरोप और अमेरिका में काफ़ी घूम चुकी थी और यूरोप की कई भाषाओं को बड़े सही प्रकार से बोल लेती थी।

यह जल्दी ही मालूम हो गया कि उसे परमात्मा की सच्ची खोज थी। उसने हुज़ूर से सन्तमत के अभ्यास के बारे में कई सवाल पूछे और यह भी जानना चाहा कि सन्तमत और ईसाई धर्म में क्या अन्तर है। एक तरह से अगले दो-तीन दिन का समय महाराजजी ने केवल उसी को दिया। उसके सवाल और महाराजजी के जवाब इतने दिलचस्प और आकर्षक थे कि बाक़ी लोगों को किसी और सवाल के बारे में सोचने का ख़याल ही नहीं आता था। पहले दो दिन उसने सन्तमत के बारे में दर्जनों सवाल पूछे और उससे भी ज़्यादा ईसाई धर्म और ईसा मसीह के बारे में पूछे।

यूरोप और अमेरिका निवासियों के बारे में हमारी यह राय थी कि वे लोग ज़बरदस्त दुनियावी (भौतिकवादी) होते हैं; हालाँकि हमारी यह राय सुनी सुनाई बातों और कभी-कभी की मुलाक़ात पर बनी थी। पर इस

नौजवान महिला की ज़िन्दगी और उसके लगभग एक दर्जन साथियों की ज़िन्दगी, जो बाद में उसके ज़रिये सत्संगी हुए, ने हमारी यह राय बिलकुल बदल दी। उसने हमें बताया कि वह और उसके परिवार के अन्य लोग बचपन से ही रोज़ बाइबिल का पाठ करते थे और सोने से पहले प्रार्थना करना कभी नहीं भूलते थे। वे हर रविवार को चर्च जाया करते थे और ईसा मसीह के उपदेशों के मुताबिक़ ज़िन्दगी बिताने की पूरी कोशिश करते थे। इसमें जहाँ तक हो सके ग़रीबों की तन, मन, धन से सेवा करना भी शामिल था। पर इससे ज़्यादा वे परमार्थ के बारे में कुछ नहीं जानते थे।

कुछ दिनों बाद वह एक अमेरिकन पादरी को अपने साथ लाई और यह कहते हुए हुज़ूर महाराजजी से उसका परिचय कराया, "यह हैं आदरणीय मिस्टर एच. जो मेरे फ़ादर कन्फ़ेसर[1] हैं। मैंने इनसे कह दिया है कि मैं ईसाई धर्म को छोड़ कर सन्तमत को ग्रहण कर रही हूँ। ये कितनी ही कोशिश करें, मेरा निश्चय नहीं बदल सकता।"

महाराजजी ने पूछा, "ईसाई धर्म को क्यों छोड़ती हैं? आप तो एक सच्ची ईसाई बनने जा रही हैं, ईसा मसीह के सच्चे उपदेशों पर अमल करने जा रही हैं। आपको याद रखना चाहिये कि सन्तमत कोई धर्म नहीं है। सन्तमत के अनुयायियों में आपको सभी धर्मों के मानने वाले मिलेंगे। इसके मुख्य सिद्धान्त सब धर्मों की तह में पाये जाते हैं। धर्म बदलने से परमात्मा नहीं मिलता। हर धर्म के भक्तों ने उसे पाया है। असली महत्त्व तो भक्ति, प्रेम और परमात्मा से मिलने की तीव्र इच्छा का है, धर्मों के बाहरी रीति-रिवाजों का नहीं।"

"यह महिला कहती है कि आपके अनुसार एक साधक अब भी ईसा मसीह के दर्शन कर सकता है", मिशनरी पादरी ने कहा।

हुज़ूर ने फ़रमाया, "हाँ, कर सकता है, लेकिन अपने अन्दर, कहीं बाहर नहीं। अगर ख़ुदा की बादशाहत हमारे अन्दर है तो ईसा मसीह भी ज़रूर वहीं हैं। आपको वहाँ केवल ईसा मसीह ही नहीं, बल्कि अन्य सब पैग़म्बर और अवतार भी मिलेंगे।"

"लेकिन अन्दर जाने का तरीक़ा क्या है?" पादरी ने पूछा।

---

1. जिनके सामने अपने गुनाहों का इज़हार या स्वीकरण किया जाये।

हुज़ूर ने जवाब दिया, "हम 'शब्द' की सीढ़ियों पर चढ़ कर रूहानी मण्डलों पर पहुँचते हैं। यह वही 'शब्द' है जिसके बारे में सेण्ट जॉन ने कहा है, 'शब्द सृष्टि के शुरूआत में परमात्मा के साथ था और परमात्मा ही था'।"

पादरी ने कहा, "लेकिन वह 'शब्द' तो अब दुनिया में नहीं है। ईसा मसीह खुद ही वह 'शब्द' था।"

महाराजजी ने उत्तर दिया, "बेशक, ईसा ही 'शब्द' था और 'शब्द' ही ईसा था। पर इस बात पर हम ज़रा शान्ति के साथ विचार करें। बाइबिल में लिखा है, 'शब्द सृष्टि के शुरू में था, शब्द परमात्मा के साथ था और शब्द परमात्मा ही था।..... सब चीज़ें उसी के द्वारा बनीं और उसके बिना कुछ भी नहीं बना'। यहाँ 'शुरू में था' का मतलब है विश्व की उत्पत्ति या रचना से पहले जब कि कुछ नहीं था। क्या आप सचमुच यह मानते हैं कि यहाँ 'शब्द' के लिये जो कुछ कहा गया है वह ईसा नामक 'मनुष्य' के लिये कहा गया है ?"

कुछ देर ठहर कर हुज़ूर ने फिर कहना शुरू किया, "नहीं, यह उस 'सत्ता' के लिये कहा गया है जो मनुष्य बनी, उस शक्ति के लिये कहा गया है जो ईसा मसीह के रूप में प्रकट हुई, जिसके लिये सेण्ट जॉन का कथन है 'वह शब्द देहधारी बन कर आया और हमारे बीच रहा, और जिसकी शान को हमने देखा।' यह 'शब्द' तो परमात्मा की अमर सत्ता और ज्योति का महासागर है जिसमें से सब सन्त आते हैं। सन्त उस शब्द-रूपी सागर की लहरें हैं, वे दुनिया में अपना काम पूरा करके फिर उसी सागर में समा जाते हैं। ईसा मसीह भी उसी महासागर में से आये, यहाँ अपना कार्य किया और उसके पूर्ण हो जाने पर वापस उसी महासागर में जा मिले। देह तो वह आवरण या वस्त्र था जो उस 'शब्द' ने यहाँ धारण किया था। वह शरीर तो ईसा मसीह नहीं था। वह मनुष्य शरीर तो उसने इसलिये धारण किया कि लोग उसके उपदेश को समझ सकें। मनुष्य केवल मनुष्य की ही भाषा समझ सकता है, इसीलिये शब्द को भी मनुष्य-देह धारण करनी पड़ी और जब उसका कार्य पूरा हो गया तो वह इस शरीर को यहीं छोड़ गया। जिसे सूली पर चढ़ाया गया वह केवल शरीर था, स्वयं ईसा मसीह नहीं थे। वह ईसा मसीह जो कि सूली पर नहीं चढ़ाया जा सकता था और सृष्टि के शुरू होने से पहले भी था, वह शब्द ही था, और शब्द ही है। ईसा मसीह से पहले भी बहुत

से मसीहा इस संसार में अलग-अलग नामों से अलग-अलग देशों में आये हैं और आगे भी आते रहेंगे। यह संसार कभी भी मसीहा से रहित नहीं रह सकता। परमात्मा के सच्चे खोजी की मदद और रहनुमाई के लिये वह हरदम संसार में मौजूद रहता है।"

उस नौजवान महिला ने पूछा, "महाराजजी, उसे शब्द के नाम से क्यों पुकारा जाता है?"

हुज़ूर ने कहा, "यह 'शब्द' आसानी से समझ में नहीं आता। अंग्रेज़ी भाषा में 'वर्ड' लफ़्ज़ ग्रीक भाषा के 'लोगॉस' का अनुवाद है और ग्रीक 'लोगॉस' भी हिब्रू भाषा के 'मिम्रा' से लिया गया है। सृष्टि की रचना करने वाली इस ताक़त को प्राचीन हिन्दू महात्माओं ने 'शब्द' और 'नाद' कहा है, जिनका अंग्रेज़ी में अर्थ होता है — आवाज़। यही इसके अर्थ को अधिक स्पष्ट करता है क्योंकि शब्द या नाद का मतलब होता है आवाज़, हुक्म या ध्वनि। मैं समझता हूँ, ग्रीक बाइबिल के 'लोगॉस' का भी मूल रूप में, इसी अर्थ में प्रयोग किया जाता होगा।

बाइबिल का कथन है कि सारे संसार की सृष्टि शब्द ने की है और उसके बिना कुछ नहीं बना। इसी तरह स्वामीजी महाराज भी कहते हैं कि सब-कुछ उसी 'शब्द' ने बनाया है। गुरु साहिब का कथन है कि उस 'शब्द' से ही पृथ्वी, आकाश और नभ-मण्डल की सृष्टि हुई। 'शब्द' से ही आकाश उत्पन्न हुआ। 'शब्द' से ही कुल सृष्टि की रचना हुई और वह 'शब्द' हम सबके घट में गूँज रहा है।[1] 'वर्ड' और 'शब्द' के अर्थ इतने समान हैं कि ऐसा लगता है कि जो भाषा ईसा मसीह बोलते थे और जिसमें बाइबिल सबसे पहले लिखी गई उसमें 'वर्ड' का वही अर्थ होगा जो कि उपनिषदों में 'नाद' का है।"

पादरी ने कहा, "यह सम्भव है, क्योंकि बाइबिल कई भाषाओं में अनुवादित होते हुए हमारे पास पहुँची है।"

"और उसमें कई बार संशोधन किये गये हैं और कई पुराने पदों को हटा कर नये पद जोड़ दिये गये हैं", अमेरिकन महिला ने कहा।

हुज़ूर महाराजजी ने आगे फ़रमाया, "बाइबिल में परमार्थ और रूहानियत के रत्न भरे पड़े हैं, पर वे छोटे-छोटे टुकड़ों में इधर-उधर

---

1. सबदे धरती सबदे आकाश ॥ सबदे सबद भइआ परगास ॥
सगली सृसटि सबद के पाछे ॥ नानक सबद घटै घट आच्छे ॥ (जन्म-साखी, 19)

बिखरे हुए हैं। इन्हें वही मनुष्य ठीक तरह से समझ सकता है जो किसी पूरे गुरु से सन्तों के उस मार्ग में दीक्षित हुआ हो जो कि ईसा मसीह का मार्ग भी था। ईसा के असली उपदेशों को सही माने में समझने में यही सबसे बड़ी कठिनाई है। बाइबिल में ये उपदेश सिलसिलेवार एक ही जगह लिखे हुए नहीं हैं। इन्हें पढ़ते समय ऐसा प्रतीत होता है कि कहीं-कहीं कुछ अंश खो गये हैं, और इन खोये हुए अंशों की वजह से बाइबिल का सच्चा अर्थ समझ में आना कठिन हो जाता है।"

पादरी ने कहा, "बाइबिल ईसा मसीह के सूली पर चढ़ने के बहुत समय बाद लिखी गई है और इसके लिखने वालों ने न कभी ईसा को देखा था और न अपने कानों से उनके उपदेश ही सुने थे। उन्होंने अपनी बात को प्रतीकों और इशारों में कहने का ढंग अपनाया क्योंकि उन्हें उन कठोरताओं और अत्याचारों का डर था जो उस समय की हुकूमत द्वारा ईसाइयों पर किये जा रहे थे। बाइबिल लिखने वालों ने याददाश्त के सहारे ही उसे लिखा है।"

अमेरिकन महिला बोली, "ईसा मसीह जो कुछ बोलते थे उसके कोई लिखित रूप में नोट्स तो लिये नहीं जाते थे।"

इस पर हुज़ूर ने फ़रमाया, "जब किसी सन्त के उपदेश उनके चोला छोड़ने के बहुत समय बाद लिखे जाते हैं तो उन्होंने जो कुछ कहा था या जो उनका भाव था उसे वैसे का वैसा लिख देना बहुत मुश्किल होता है।"

"और जब वे वचन दो-तीन भाषाओं से अनुवाद होकर निकलें तथा उन भाषाओं में रूहानी विषय को व्यक्त करने के लिये सही शब्दावली भी न हो तो आप खुद ही कल्पना कर सकते हैं कि सन्तों के मूल उपदेशों का क्या रूप बन जायेगा", अमेरिकन महिला ने कहा।

हुज़ूर बोले, "अनुवाद चाहे कितनी ही बुद्धिमानी और योग्यतापूर्ण क्यों न किया गया हो फिर भी उसमें मूल बात के कुछ अंशों के छूट जाने की सम्भावना ज़रूर रहती है।"

अमेरिकन महिला, "कभी-कभी अनुवादक को अपनी भाषा में किसी ख़ास बात के लिए ठीक शब्द नहीं मिलते और तब वह अपने ही शब्द गढ़ कर बात को समझाने की कोशिश करता है और ऐसा करने में मूल पुस्तक के भावों का सर्वनाश हो सकता है।"

महाराजजी ने कहा, "हाँ, यह तो स्वाभाविक ही है। कभी-कभी अनुवादक मूल भाषा के भावों और मुहावरों को ठीक तरह से न समझ पाने के कारण अपने विचारों के अनुसार उनके अर्थ लगाता है।"

इस पर पादरी ने कहा, "कुछ दिनों पहले एक जर्मन विद्वान् ने मुझे बतलाया कि ईसा मसीह के वचन 'सुई के नाके से ऊँट का निकलना आसान है, पर एक अमीर आदमी का ख़ुदा की बादशाहत में प्रवेश पाना मुश्किल है', में जिस लफ़्ज़ का अनुवाद ऊँट किया गया है उसका असली अर्थ ऊँट नहीं बल्कि एक रस्सा या मोटा धागा है।"

हुज़ूर ने फ़रमाया, "कभी-कभी एक ही लफ़्ज़ के दो अर्थ भी होते हैं। यहाँ उस लफ़्ज़ का एक अर्थ ऊँट भी हो सकता है। पर इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि अनुवाद में अनुवादक के अपने व्यक्तित्व की जाने-अनजाने झलक आ ही जाती है, और जब वह यह अन्दाज़ लगाता है कि सन्तों को क्या कहना चाहिये था या क्या कहा होगा तो इसमें उसकी बुद्धि और व्यक्तित्व का पुट आ जाता है।"

पादरी ने स्वीकार किया कि बाइबिल में ईसा मसीह के असली उपदेश छोटे-छोटे टुकड़ों में इधर-उधर बिखरे पड़े हैं।

"और ये बिखरे हुए टुकड़े इस बात को ज़ाहिर करते हैं कि बाइबिल में ईसा के उपदेशों की कड़ियाँ टूटी हुई हैं और इन टूटी हुई कड़ियों को कोई अनुभवी सन्त ही जोड़ सकता है या प्रकट कर सकता है।" श्री वीरभान की ओर मुड़ कर हुज़ूर ने फ़रमाया, "इन्हें सन्तमत की कुछ पुस्तकें दीजिये।" और फिर पादरी से कहा, "आप जितनी सावधानी से सन्तमत के साहित्य का अध्ययन करेंगे, उतने ही साफ़ और सही तौर पर बाइबिल के असली अर्थ को समझने में सफल होंगे। जो मनुष्य आध्यात्मिक बातों को अच्छी तरह जानता है वही बाइबिल के असली अर्थ और सच्चे महत्त्व को जान सकेगा।"

अमेरिकन महिला बीच में ही बोल पड़ी, "महाराजजी ! ईसा को बाइबिल में 'परमात्मा का मेमना' कहा गया है। आज तक कोई मुझे इन शब्दों का सन्तोषजनक अर्थ नहीं समझा सका। क्या आप असली मतलब समझा सकते हैं ?"

"शायद हमारे मिशनरी मित्र इस पर ठीक तरह से प्रकाश डाल सकेंगे", हुज़ूर ने जवाब दिया।

पादरी ने कहा, "ईसा मसीह को ख़ुदा का मेमना कहा गया है क्योंकि वे बिलकुल निष्कपट और बेगुनाह थे तथा दुनिया के पापों के लिये उन्होंने अपने आप को क़ुर्बान किया था।"

हुज़ूर ने कहा, "बाइबिल को पढ़े मुझे बहुत अरसा हो गया है इसलिये ठीक-ठीक लफ़्ज़ तो मुझे शायद याद न हों, लेकिन मेरा ख़याल है कि ईसा को अपनी ओर आता हुआ देख कर जॉन ने ये लफ़्ज़ कहे थे, 'देखो, ख़ुदा का मेमना आ रहा है जो दुनिया के पापों को दूर करेगा।' जॉन ने कुछ इसी प्रकार कहा था। हिन्दुस्तान में भी बहुत प्राचीन काल से सन्तों के लिये ऐसे ही लफ़्ज़ों का प्रयोग किया जाता रहा है। आज भी हम अपने सतगुरु को 'भक्त-वत्सल' और 'पाप-हरण' कह कर पुकारते हैं। 'भक्त' का मतलब है अनुरागी, उपासक व सेवक और 'वत्स' का अर्थ है गाय का बछड़ा। परमात्मा का सन्तों के प्रति और सन्तों का अपने शिष्यों के प्रति वैसा ही प्यार होता है जैसा कि एक गाय का अपने बछड़े से होता है। गाय अपने बछड़े के शरीर की गन्दगी को चाट-चाट कर साफ़ कर देती है। अपने सतगुरु और परमात्मा को पुकारने के लिये 'भक्त-वत्सल' और 'पाप-हरण' भक्तों के बहुत प्रिय शब्द हैं। वे इनका सतगुरु और परमात्मा दोनों के लिये प्रयोग करते हैं, क्योंकि उन दोनों में वे कोई भेद नहीं मानते।

"मेरा अपना ख़याल है कि शायद जॉन ने मूल रूप में 'कॉफ' (गाय का बछड़ा) लफ़्ज़ का प्रयोग किया होगा और बाद में अनुवाद में उसी जगह 'लैंब' (मेमना) आ गया। या हो सकता है कि ईसा मसीह के देश में भेड़ों की बहुतायत थी (जैसी की हिन्दुस्तान में गायों की है) और इसीलिये 'मेमना' लफ़्ज़ से वहाँ के निवासियों को वही भाव दरसाया जा सकता था जो कि हिन्दुस्तान में 'बछड़े' से प्रकट किया जाता है और इसीलिये ईसा के लिये 'मेमने' का प्रयोग किया गया हो। लेकिन दोनों का भाव एक ही है। गाय या भेड़ अपने नवजात बछड़े या मेमने को प्यार करती है और उसकी सँभाल करती है, उसे एक पल के लिये भी अपनी आँखों से ओझल नहीं होने देती, हमेशा उसके पीछे-पीछे घूमती है, दूध पिलाती है, और हर ख़तरे से उसकी रक्षा करती है। इसी प्रकार परमात्मा ने ईसा को प्यार किया और उनकी सँभाल की। मेरे विचार में 'परमात्मा का मेमना' का यही अभिप्राय है। लेकिन यह बात मुझसे ज़्यादा अच्छी तरह आप जानते होंगे।"

पादरी ने आश्चर्य के साथ कहा, "आपका बाइबिल सम्बन्धी ज्ञान अपूर्व है।"

अमेरिकन महिला बोली, "आपकी यह व्याख्या पूरी तौर से सन्तोषजनक है और मैं समझती हूँ कि इसके यही सही अर्थ हैं।"

हुज़ूर महाराजजी के पास जब कभी कोई यहूदी, ईसाई, बौद्ध, जैन, पारसी, मुसलमान या और किसी धर्म का जिज्ञासु आता, वह हुज़ूर के द्वारा वर्णन किये गये उसके धर्म और शास्त्रों के ज्ञान को सुन कर दंग रह जाता था। एक बार उन्होंने एक बौद्ध महन्त को उसके गुरु द्वारा दिया गया गुरु-मन्त्र हूबहू सुना कर आश्चर्यचकित कर दिया था।

पादरी ने कहा, "क्या मैं एक सवाल पूछ सकता हूँ ? ईसाई धर्म के त्रि-शक्ति (पिता, पुत्र तथा शब्द) वाले सिद्धान्त के बारे में आपके क्या विचार हैं?"

महाराजजी ने उत्तर दिया, "यह केवल ईसाई धर्म का ही सिद्धान्त नहीं है। यह तो हर धर्म के आध्यात्मिक उपदेशों में मिलता है। पिता, पुत्र और शब्द ये तीनों हमारी आध्यात्मिक उन्नति के लिये बहुत ज़रूरी हैं। इन तीनों में विश्वास किये बिना कोई भी मनुष्य वापस अपने सच्चे घर नहीं पहुँच सकता और न मालिक से मिल सकता है। वैसे ये तीनों एक ही हैं। आप इंजील (बाइबिल) के इन शब्दों पर फिर से गौर कीजिये, 'सृष्टि के आदि में शब्द था, शब्द परमात्मा के साथ था और शब्द परमात्मा ही था। सब कुछ उसी ने बनाया। .....जीवन और प्रकाश उसी में था।..... और शब्द ने शरीर धारण किया और हमारे बीच रहा और हमने उसकी शान को देखा।' इसके आगे इंजील कहती है कि वह आया और संसार में रहा किन्तु अधिकांश लोगों ने 'उसे अंगीकार नहीं किया, लेकिन जिन्होंने उसे अपनाया उन्हें उसने परमात्मा के पुत्र बनने की ताक़त दे दी।' मुझे पता नहीं कि मैंने यह सही उल्लेख किया है या नहीं। लेकिन मेरा ख़याल है कि इन वाक्यों में बाइबिल के शब्दों का सार ज़रूर आ गया है।"

पादरी ने हुज़ूर की बात की पुष्टि करते हुए कहा, "आपने बिलकुल सही उल्लेख किया है और इसमें बाइबिल के अर्थ और भाव दोनों आ गये हैं।"

महाराजजी ने बड़ी गम्भीरतापूर्वक कहा, "अब कृपया गौर कीजिये। हम सब परमात्मा में या उस सत्ता में विश्वास करते हैं जिसे जॉन ने 'वर्ड'

(शब्द) कहा है। वह शब्द जीवन और प्रकाश का महासमुद्र है। सारे जीव उसी से पैदा हुए हैं। जीवन, प्रकाश और परमानन्द का महासागर वह परमात्मा है जो ईसाई धर्म की त्रि-शक्ति में पिता है। संसार से अज्ञान, अन्धकार और पापों को दूर करने के लिये और मनुष्य को दिव्य ज्योति प्रदान करने के लिये उस 'शब्द' ने देह धारण की और हमारे साथ रहा। उसे संसार में मनुष्य बन कर प्रकट होना पड़ा, ताकि मनुष्य उसे समझ सकें। परमात्मा अपने धाम में बैठा-बैठा मनुष्यों से बातें नहीं करता। यह उसका नियम है। देह धारण किया हुआ यह 'शब्द' ही 'पुत्र' था — ईसा मसीह था। वह अपने समय का गुरु था। कोई न कोई ईसा मसीह इस संसार में हर वक़्त रहता है। परमात्मा हमेशा अपने पुत्रों को हर समय हर देश में भेजता रहता है। यह संसार अभी बहुत समय तक और रहेगा और परमात्मा इतने लम्बे समय तक अपने जीवों को भूल कर नहीं बैठ सकता। सतगुरु निरन्तर आते रहते हैं, या आप कह सकते हैं कि वह 'शब्द' हमेशा देह रूप में उसी प्रकार और उसी ध्येय के लिये प्रकट होता रहा है जिसके लिये उसने एक समय ईसा मसीह का नाम और स्वरूप धारण किया था।"

हुज़ूर महाराज जी कुछ क्षणों के लिये मौन रह कर फिर बोले, "परमात्मा (पिता) और सन्त (पुत्र) के बाद त्रि-शक्ति के तीसरे अंग होली-घोस्ट यानी शब्द को लीजिये। यह वह 'शक्ति' है जो ईसा मसीह ने उनको प्रदान की थी जिन्होंने उसे (ईसा मसीह को) अपनाया था। उस शक्ति का नाम ही 'लोगॉस', 'वर्ड', या 'शब्द' है जो हर जीव को चेतना प्रदान कर रही है। सृष्टि के प्रारम्भ में यह 'शब्द' ही 'जीवन की साँस', था जिसे हर मनुष्य में फूँक दिया गया था। यह 'जीवन की साँस', यह लोगॉस, वर्ड, नाम, धुन, नाद या अनहद शब्द ही 'होली घोस्ट' है जिसके द्वारा ईसा ने अपने शिष्यों को दीक्षा दी थी।

"पूर्ण सन्तों ने चाहे वे किसी भी देश, धर्म व जाति के रहे हों, हर युग में अपने शिष्यों को इसी 'होली घोस्ट' के द्वारा दीक्षित किया है। इसके सिवाय और कोई रास्ता ही नहीं है। यह जीवन-धारा सीधे सचखण्ड से — जो चेतनता और प्रकाश का महासागर है — आती है और हमारे शरीर में दोनों आँखों के पीछे शब्द-धुन के रूप में रहती है। जब किसी जीव को सतगुरु के द्वारा इससे जोड़ दिया जाता है या, इंजील के शब्दों में, 'होली घोस्ट' के द्वारा दीक्षित किया जाता है तब

उसे अपने सच्चे घर का (जहाँ से वह आया है) रास्ता मालूम हो जाता है और वह परमात्मा का पुत्र बन जाता है। इसलिये बाइबिल की त्रि-शक्ति (ट्रिनिटी) चाहे उसे आप 'पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा' कहें, चाहे 'परमात्मा, गुरु, और शब्द' कहें — सन्तमत का आवश्यक अंग है। कबीर साहिब और गुरु नानक इन्हें गोबिन्द, गुरु और नाम कहते हैं।"

पादरी ने कहा, "धन्यवाद, महाराजजी ! सचमुच आपकी व्याख्या बहुत प्रभावशाली है।"

पादरी ने फिर पूछा, "क्या कभी ईसा मसीह हिन्दुस्तान आये थे ?"

हुज़ूर ने फ़रमाया, "मेरे ख़याल से इसके लिखित प्रमाण तो नहीं हैं, लेकिन दक्षिण भारत के लोग यह मानते हैं कि ईसा वहाँ आये और कुछ साल रहे थे।"

उसके बाद पादरी ने गुरु नानक की शिक्षाओं के बारे में कुछ सवाल किये और पूछा कि 'ग्रन्थ साहिब' का क्या अर्थ होता है ?

"ग्रन्थ का अर्थ है पुस्तक या एक बड़ी पोथी और साहिब लफ़्ज़ किसी भी व्यक्ति, स्थान या वस्तु को आदर के साथ पुकारने के लिये लगाया जाता है।"

पण्डित ठाकुरदत्त ने पूछा, "बाइबिल का क्या अर्थ है ?"

पादरी ने जवाब दिया, "इसका अर्थ है धर्म-ग्रन्थ ।"

हुज़ूर ने कहा, "बाइबिल ग्रीक भाषा का लफ़्ज़ है जिसका अर्थ है पुस्तक। और इस धर्म-ग्रन्थ को यह नाम इसीलिये दिया गया कि यह सबसे ऊँची पुस्तक है। इसी प्रकार गीता का भी अर्थ 'गीत' है, कुरान का अर्थ 'पढ़ना' या 'पढ़ने योग्य वस्तु' है। 'गॉस्पेल' का अर्थ है 'अच्छा समाचार'।"

पादरी ने कहा, "जी हाँ, 'बाइबिल' शब्द की उत्पत्ति यही है।"

इसके बाद अमेरिकन महिला बोली "महाराजजी ! आप बाइबिल के बारे में इतना जानते हैं कि मुझसे एक सवाल पूछे बिना नहीं रहा जाता है। यह सवाल मेरे लिये हमेशा एक उलझन बना रहता है। बाइबिल में लिखा है कि जब जॉन ने ईसा को दीक्षा दी तो परमात्मा की चेतनता एक 'डव' (कबूतर) के समान उस पर उतर आयी। इसका क्या मतलब है ? और कबूतर का परमात्मा से क्या सम्बन्ध है ? क्या यहाँ 'डव' से मतलब उस पक्षी से है जिसे हम रोज़ देखते हैं ?"

हुज़ूर ने जवाब दिया, "यह प्रश्न तो हम अपने आदरणीय मित्र से पूछें तो बेहतर होगा।"

पादरी ने कहा, "अगर आप इजाज़त दें तो कल मैं अपनी बाइबिल ले आऊँ और उसमें से कुछ अंश आपको पढ़ कर सुनाऊँ।"

दूसरे दिन बाइबिल का बाक़ायदा अध्ययन शुरू हो गया। उस दिन कुछ और ईसाई सज्जन भी वहाँ मौजूद थे। हुज़ूर महाराजजी भी बड़ी मौज में थे। सब लोग उनकी व्याख्या सुन कर बहुत प्रसन्न हो रहे थे।

अमेरिकन पादरी ने मैथ्यू के तीसरे अध्याय के 11वें पद को पढ़ना शुरू किया जिसमें ईसा मसीह के आने की (प्रकट होने की) सूचना देते हुए जॉन कहते हैं, "वास्तव में मैं तुम्हें पानी से बप्तिस्मा (दीक्षा, ईसाई बनाने की रस्म) देता हूँ। लेकिन जो मेरे बाद आयेगा वह मुझसे ज़्यादा शक्तिशाली होगा जिसके जूतों के तस्मे खोलने लायक़ भी मैं नहीं हूँ। वह तुम्हें 'होली घोस्ट' (शब्द) और 'आग' (प्रकाश) से दीक्षा देगा।.... उसके बाद ईसा उनसे बप्तिस्मा लेने के लिये गैलिली से जोर्डन आता है, लेकिन जॉन ने यह कहते हुए मना कर दिया, 'मैं तुझसे ही बप्तिस्मा लेना चाहता था। और तू मेरे पास आया है ?' ईसा ने इसका जवाब देते हुए कहा, 'अब ऐसा ही होने दो, क्योंकि नियम के अनुसार यही ठीक है'।"

इस अंश पर टिप्पणी देते हुए पादरी ने कहा, "आग से और 'होली घोस्ट' से बप्तिस्मा करने के मतलब पर काफ़ी मतभेद चला आ रहा है। कुछ लोग मानते हैं कि यहाँ 'आग' से तात्पर्य उस कष्ट और अत्याचार से है जिसका इनसान को सामना करना पड़ेगा। और कुछ लोगों के अनुसार यह प्रलय के बाद ईश्वर द्वारा इनसान के किये कर्मों पर निर्णय की ओर संकेत करता है। कुछ लोग 'आग' का मतलब प्रतिशोध या बदला बताते हैं। इसके कई अलग-अलग अर्थ किये गये हैं।"

हुज़ूर महाराजजी ने फ़रमाया, "यह सम्पूर्ण अंश बड़े गूढ़ अर्थ से भरा हुआ है जिसे 'शब्द-मार्ग' में दीक्षित व्यक्ति ही समझ सकता है। इन गुप्त भेदों को खोलने की कुंजी दीक्षा के समय सतगुरु प्रदान करते हैं। सन्तों का मार्ग 'होली घोस्ट' (शब्द) और 'आन्तरिक आग' से बप्तिस्मा या दीक्षा देने का मार्ग है। इस 'आग' को हिन्दू शास्त्रों में ज्योति कहा गया है। कई जगह परमात्मा को 'ज्योतिस्वरूप भगवान' कहा गया है। गुरु गोबिन्दसिंह जी फ़रमाते हैं कि सच्चा शिष्य वही है

जो अपने अन्दर जलती हुई दिव्य ज्योति को देखता हो। सन्तमत में आग, ज्योति और लौ का मतलब एक ही है। सच्चा सतगुरु वही है जो शब्द का भेद देकर शिष्य की आत्मा को अन्दर दिव्य-धुन से जोड़ देता है और उसे वहाँ ले जाता है जहाँ वह ज्योति अपने पूरे प्रकाश में जगमगा रही है। गुरु नानक फ़रमाते हैं कि दिन-रात वह ज्योति जगमगाती रहती है, लेकिन केवल गुरुमुख को ही अपने अन्तर में जगमगाती हुई इस ज्योति का बोध होता है। पलटू साहिब फ़रमाते हैं कि बग़ैर तेल और बग़ैर बाती के वह दीपक दिन-रात जल रहा है; केवल वही उसे देख सकता है जिसे पूर्ण गुरु से नामदान मिला है :

तिस में जरै चिराग बिना रोगन बिन बाती ॥
छह रितु बारह मास रहत जरतै दिन राती ॥
सतगुरु मिला जो होय ताहि की नजर में आवे ॥
बिन सतगुरु कोई होय नहीं वा को दरसावै ॥

(सन्तों की बानी, पृ. 307)

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में भी इस 'आग' या ज्योति का कई जगह उल्लेख है :

आतम जोति भई परफूलित पुरखु निरंजनु देखिआ हजूरि ॥

(आ.ग्र.म. 4, पृ. 1198)

गुर साखी जोति परगटु होइ ॥ (आ.ग्र.म.1, पृ. 663)

करि किरपा जउ सतिगुरु मिलिओ ॥ मन मंदर महि दीपकु जलिओ ॥

(आ.ग्र.म. 5, पृ. 235)

ऐसा दीवा बाले कोइ ॥ नानक सो पारंगति होइ ॥

(आ.ग्र.म. 1, पृ. 878)

"'नाम' या 'शब्द' में दो विशेषताएँ हैं। एक धुन या आवाज़ दूसरी प्रकाश। और बाइबिल में 'होली घोस्ट' और अग्नि से बप्तिस्मा करने का असली अर्थ यही है। हमारे शरीर में आत्मा चेतनता या तवज्जह के रूप में रहती है। सन्तमत में आत्मा को 'सुरत' कहते हैं जिसका अर्थ है ध्यान या तवज्जह। हमारे शरीर में एक दूसरी परम चेतन सत्ता भी रहती है जो हमें जीवित रखती है। उसे 'शब्द', 'नाम' या 'होली घोस्ट' या 'गॉड करंट' (परमात्मा की धारा) कहते हैं। यह हमारे अन्तर में धुन के रूप में प्रकट होती है। अलग-अलग लेखकों ने इसे 'दिव्य धुन', 'स्वर्गीय

संगीत', 'अनहद नाद' आदि अलग-अलग नामों से पुकारा है। 'शब्द' या 'धुन' वह सीधी डोर है जिसके सहारे आत्मा वापस अपने असली घर पहुँच सकती है।

"जब मनुष्य किसी घने जंगल में अँधेरी रात में रास्ता भूल जाता है तब क्या करता है ? अँधेरा इतना गहरा हो कि अपना हाथ तक न दिखाई दे। ऐसी हालत में वह कुछ देर के लिये चुपचाप खड़ा रहता है और यह जानने की कोशिश करता है कि कहीं किसी ओर से कोई आवाज़ आ रही है या नहीं, जैसे कुत्ते के भौंकने, मुर्गे की बाँग या किसी मशीन के चलने की आवाज़। उसे सुन कर वह बस्ती की दिशा का अन्दाज़ा लगा लेता है और धीरे-धीरे उस ओर चल पड़ता है लेकिन उसे दूसरी कठिनाइयों का सामना भी करना पड़ता है। उसके रास्ते में बहुत-से गड्ढे, बिल, उतार-चढ़ाव, काँटे आदि हैं। अगर उसके हाथ में टॉर्च या बत्ती हो तो वह अपना रास्ता बराबर देख कर चल सकता है। इसी तरह हमारे अन्तर का मार्ग भी बड़ा अन्धकारमय, विकट, दुर्गम और दुर्भेद्य है। वहाँ गुरु अन्दर की बस्तियों की आवाज़ों को बताते हैं और अन्दर रास्ता दिखाने के लिये आपके अन्दर ज्योति प्रकट कर देते हैं।"

पण्डित ठाकुरदत्त ने पूछा, "महाराजजी, बप्तिस्मा क्या है?"

हुज़ूर ने उत्तर दिया, "बेप्टाइज़िंग शब्द हिब्रू भाषा से लिया गया है जिसका अर्थ हिन्दुओं के 'तिलक लगाना' से बहुत मिलता है। तिलक एक धार्मिक चिह्न है जिसे हिन्दू लोग चन्दन घिस कर या केसर घिस कर माथे पर लगाया करते हैं। दीक्षा (बप्तिस्मा) देते समय गुरु शिष्य के ललाट पर तिलक लगाया करते थे, जो एक लाल रंग का गोल बिन्दु होता था और दोनों भौंहों के बीच में, उनसे लगभग आधे इंच ऊपर, लगाया जाता था। यही तीसरे तिल का या शिव-नेत्र का स्थान है। पारिवारिक गुरुओं के द्वारा आज भी यह प्रथा निभाई जाती है। ईसा मसीह के बप्तिस्मा का अर्थ है किसी सतगुरु के द्वारा दीक्षा पाना।"

पादरी बीच में ही बोल उठे, "जी हाँ, 'बेप्टाइज़' का अर्थ रंगना, छापना, लेपन करना या अभिषेक करना है।"

इस पर हुज़ूर ने फ़रमाया, "हिन्दुओं की हरएक धार्मिक क्रिया स्नान के बाद ही शुरू की जाती है ताकि धार्मिक कार्य करने वाले का आलस्य दूर हो जाये। समय के साथ वह स्नान भी एक तरह से धार्मिक कार्य समझा जाने लगा। बाद में जब रीति-रिवाज ऐसे स्थानों में फैल गये

जहाँ पानी की कमी थी, तो यह स्नान-कर्म केवल सिर और मुँह पर पानी डाल लेने तक ही सीमित रह गया।"

अमेरिकन महिला ने पूछा, "ईसा मसीह ने उत्तर दिशा में गैलिली से दक्षिण में जोर्डन में आकर जॉन से मिलने और उनसे दीक्षा लेने की तकलीफ़ क्यों की ? क्या जॉन ईसा से बड़े थे ? जॉन की असली रूहानी अवस्था क्या थी ?"

हुज़ूर महाराजजी ने जवाब दिया, "इस सवाल का जवाब तो ईसा ने खुद ही दिया है। जब जॉन ने उन्हें दीक्षा देने से इनकार कर दिया तो उन्होंने कहा कि अब ऐसा ही होने दो, हमारे लिये इस कार्य की इसी प्रकार पूर्ति करनी उचित है। परमार्थ के मार्ग पर चलने के लिये गुरु धारण करने का अलिखित क़ानून प्राचीन काल से चला आ रहा है; यह खुद परमात्मा का बनाया हुआ विधान है। परमात्मा का यही विधान है कि सच्चे गुरु से दीक्षा लिये बग़ैर कोई भी आन्तरिक मण्डलों में प्रवेश नहीं कर सकता। संसार में हर देश और समय के आध्यात्मिक मतों में यही नियम चला आ रहा है। कबीर वैसे खुद जन्म से ही सन्त थे, लेकिन उन्हें भी एक संन्यासी (रामानन्द) को गुरु बनाना पड़ा, क्योंकि निगुरे का उपदेश सुनना कोई पसन्द नहीं करता।[1]

"हिन्दुस्तान और फ़ारस में किसी को निगुरा या बे-मुर्शिदा कहना उसकी बहुत बड़ी बेइज़्ज़ती मानी जाती है। हिन्दुस्तान के शास्त्रों में ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं जहाँ निगुरे को स्वर्ग में प्रवेश करने से रोक दिया गया। ऐसे प्रसंगों में शुकदेव मुनि की वार्ता प्रसिद्ध है। वे वेदव्यास ऋषि के पुत्र थे जिन्होंने वेद और पुराणों का संग्रह किया था। वे जन्म से ही ब्रह्मज्ञानी थे और सोलह गुणों से तथा आन्तरिक शक्तियों से पूर्ण थे। एक बार उन्होंने विष्णुपुरी अथवा बैकुण्ठ देखने का इरादा किया। पर जब वे विष्णुपुरी के द्वार पर पहुँचे तो द्वारपालों ने उन्हें रोक दिया। उन्हें बड़ा गुस्सा आया और अपने पिता वेदव्यास से अपने इस अपमान की शिकायत की। पिता ने जवाब दिया कि तुम्हारे साथ जो कुछ व्यवहार किया गया है वह ठीक है, क्योंकि निगुरे व्यक्ति के लिये, चाहे वह कितना ही ज्ञानी और गुणी क्यों न हो, बैकुण्ठ के द्वार नहीं खुल सकते।

---

1. ईसा ने भी पीटर को अपना जानशीन बनाया (मैथ्यू 16-18, 19) और इस प्रकार समय के देहधारी सतगुरु की आवश्यकता प्रकट की। (ल्यूक 11.29.30)

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में लिखा है: 'निगुरे का है दरस बुरा'। कबीर साहिब ने भी लिखा है:

कबीर निगुरा ना मिले, पापी मिलै हज़ार।
इक निगुरे के सीस पर, लाख पापन का भार ॥"

"लेकिन गुरु का होना इतना ज़रूरी क्यों है ?" पण्डित ठाकुरदत्त ने पूछा।

उत्तर में हुज़ूर महाराजजी ने फ़रमाया, "परमात्मा ने ऐसा ही क़ानून बनाया है और उसके विधान पर कोई एतराज़ नहीं कर सकता। एक बादशाह से कौन मिल सकता है, किस प्रकार मिल सकता है, इसके लिये खुद बादशाह अपनी इच्छानुसार जो चाहे नियम बना सकता है। सन्त इस संसार में हमेशा मौजूद रहते हैं। उनके बिना यह संसार टिक नहीं सकता। जब एक सन्त चोला छोड़ देता है तो वह अपना काम दूसरे सन्त के ज़िम्मे कर जाता है। उन दोनों में कोई फ़र्क़ नहीं होता। जॉन अपने समय के बहुत बड़े सन्त थे। आप बाइबिल में पढ़ते हैं कि जेरुसलम, जूडिया और जोर्डन के आस-पास के सब लोग उनकी शरण में गये 'और उन्होंने अपने पापों को स्वीकार करके उनसे दीक्षा (बप्तिस्मा) ली।' जब जॉन ने देखा कि वे इस दुनिया से जाने वाले हैं तो उन्होंने अपने बाद इस कार्य को जारी रखने के लिये ईसा को दीक्षा दी। गुरु नानक फ़रमाते हैं, 'हर युग में हमारा मार्ग-दर्शन करने के लिये सन्तों की एक पीढ़ी के बाद दूसरी पीढ़ी आती रहती है।' संसार में सन्तों का क्रम कभी नहीं टूटता।"

अमेरिकन महिला ने कहा, "महाराजजी, इंजील में आया है कि जब ईसा को बप्तिस्मा दिया गया तो परमात्मा की धारा उनके ऊपर एक सफ़ेद कबूतर के समान उतर कर आई।"

हुज़ूर ने कहा, "इंजील यहीं तो है, देखें उसमें क्या लिखा है ?"

इस पर पादरी ने बाइबिल का यह अंश (मैथ्यू 3-16) पढ़ कर सुनाया, "और ईसा, जब उनको बप्तिस्मा दिया गया तो पानी से सीधे बाहर निकल आये और उनके लिये स्वर्ग के द्वार खुल गये और उन्होंने परमात्मा की धारा को एक सफ़ेद कबूतर के समान उतरते और अपने ऊपर आते हुए देखा।"

"यह एक और अंश है जिसका हरएक शब्द गूढ़ रूहानी भेद से पूर्ण है, जिन्हें बग़ैर गुरु से नामदान लिये मनुष्य नहीं समझ सकता",

हुज़ूर ने कहा और फिर उन्होंने पादरी से पूछा, "ईसा पानी में से बाहर निकल आये — इसका आम तौर पर क्या अर्थ समझा जाता है ?"

पादरी ने अपनी राय प्रकट करते हुए कहा कि वे लोग नदी में उतरे होंगे और वहाँ से ईसा एकदम निकल आये होंगे।

हुज़ूर महाराज जी थोडे-से मुसकराये और बोले, "क्या मूल पाठ में कहीं भी यह लिखा है कि वह बप्तिस्मा के लिये नदी में उतरे थे ?......"

"जी कहीं भी नहीं !" अमेरिकन महिला बीच में ही बोल पड़ी।

"या क्या यह ज़रूरी था कि बप्तिस्मा के लिये नदी में उतरा जाता ?"

पादरी ने जवाब दिया, "नहीं ! यह ज़रूरी नहीं था।"

महाराजजी ने कहा, "ज़रा गौर कीजिये। बाइबिल के इस अंश का हरएक शब्द ईसा के उन अनुभवों से सम्बन्धित है जो कि दीक्षा के समय उन्हें अन्तर में हुए। इस दीक्षा या नामदान के समय गुरु अपने शिष्य को अन्दर के रूहानी भेद बतलाता है। 'ख़ुदा की बादशाहत' हमारे अन्दर है। गुरु हमारे अन्दर परमात्मा के धाम का रास्ता बतलाता है। हमारा यह शरीर सम्पूर्ण सृष्टि का प्रतिरूप या नमूना है। इनसान की काया एक छोटा संसार (पिण्ड या आलमे-सगीर) है जिसमें विशाल विश्व (ब्रह्माण्ड या आलमे-कबीर) समाया हुआ है। गुरु हमें अपने शरीर के अन्दर प्रवेश करने की रीति सिखाते हैं। वे हमें वह दरवाज़ा दिखाते हैं जिसके बारे में ईसा ने कहा है, 'खटखटाओ और वह खुल जायेगा'। गुरु बतलाते है कि वह दरवाज़ा कैसे खटखटाया जाता है, किस प्रकार रूहानी मण्डलों का द्वार खुलता है, उसके खुल जाने पर हम क्या-क्या देखेंगे और कितने रूहानी मण्डल हैं। रूहानी देश आपके अन्दर ही हैं। यह 'परमात्मा की धारा' अन्तर में निरन्तर आप पर उतर रही है। सच्चे गुरु के द्वारा दीक्षित हर शिष्य पर वह उतरती है।"

"क्या यह एक सफ़ेद कबूतर के रूप में उतरती है ?" महिला ने पूछा।

हुज़ूर ने फ़रमाया, "जब गुरु शिष्य की आत्मा को शब्द या 'होली घोस्ट' के साथ जोड़ देता है तो उसको पहला अनुभव यह होता है कि वह अपने अन्दर दस आवाज़ें गूँजती हुई सुनता है जैसा कि उपनिषदों में कहा गया है। शुरू-शुरू में सुनाई देने वाली आवाज़ें इस प्रकार हैं —

हवा के चलने की आवाज़, समुद्र की लहरों की गर्जन, झरने का गिरना, बरसात, चिड़ियों का चहचहाना, झींगरों की आवाज़, शंख, घण्टे की आवाज़, बादलों की गड़गड़ाहट और इसी प्रकार की दूसरी आवाज़ें।

"ऋग्वेद के नाद बिन्दु उपनिषद् (34 वें श्लोक) में लिखा है कि सबसे पहले तो ये आवाज़ें समुद्र, बरसात व झरनों की आवाज़ों के समान होंगी। फिर बाद में नगाड़ों की, बादलों के गरजने की और शंख तथा घण्टे की आवाज़ें आयेंगी।"

अमेरिकन महिला बोली, "ईसा ने भी कहा है, 'हवा बह रही है..... और तुम उसकी आवाज़ सुन सकते हो'।"

पादरी ने कहा, "बाइबिल के अन्दर हज़रत ईसा के वचनों में बादल की गरज की आवाज़ का कई स्थान पर ज़िक्र आया है।"

महाराजजी फ़रमाते चले गये, "जब ईसा ने बप्तिस्मा लिया तो पानी से सीधे बाहर निकल आये' और 'तत्काल रूहानी मण्डलों के द्वार उनके लिये खुल गये' — ये वाक्य बप्तिस्मा के समय के उनके अनुभवों और उनकी आत्मा की अन्तर में चढ़ाई की ओर इशारा कर रहे हैं। यहाँ 'पानी' से अभिप्राय समुद्र की लहरों, बरसात और झरने आदि की आवाज़ से है जो अपनी आन्तरिक चढ़ाई में उन्हें शुरू-शुरू में सुनाई दीं और जिन्हें वे बहुत जल्दी ही पार कर गये। और लोगों को इस मंज़िल को पार करने में कभी-कभी कई साल लग सकते हैं। सुरत-शब्द-योग की दीक्षा लिये हुए व्यक्ति के लिये इन लफ़्ज़ों का सही अर्थ समझने में कोई मुश्किल नहीं है। कपोत या कबूतर शान्ति का प्रतीक है। यहाँ इसका मतलब है कि उस वक़्त ईसा पर परमात्मा की कृपा की धारा अनायास और शान्तिपूर्वक चुपचाप उतरी जिसमें ईसा को कोई प्रयत्न न करना पड़ा। गुप्त रूहानी भेद को छिपाये रखने के लिये कभी-कभी सन्तजन ऐसी भाषा का प्रयोग करते हैं जिसे उनसे नामदान लेने वाले शिष्य तो समझ लेते हैं लेकिन अन्य लोग नहीं समझ पाते। दीक्षा अथवा नामदान के समय शिष्यों को आदेश दिया जाता है कि न तो वे अन्दर के भेद किसी को बतायें और न आन्तरिक अनुभवों व नज़ारों का किसी से ज़िक्र करें। इसलिये उनकी बातों को साधारण मनुष्य नहीं समझ पाते।"

अमेरिकन महिला ने पूछा, "उन पर रूहानी मण्डलों के द्वार कैसे खुल गये ?"

हुज़ूर ने जवाब दिया, "सम्पूर्ण रूहानी मण्डल आपके अन्दर हैं; आपकी आँखों के पीछे हैं। जब आत्मा सतगुरु के बताये हुए अभ्यास के द्वारा अन्धकार के पर्दे को चीर कर अन्तर में जाती है तो वह पहले रूहानी मण्डल में प्रवेश करती है। सच्चा सतगुरु वही है जो हमेशा आपके अंग-संग रहे और आपकी आन्तरिक चढ़ाई में हर क़दम पर आपकी रहनुमाई करे। पहले आपको तारे दिखाई देंगे, उसके बाद सूरज, चाँद और दूसरी तरह के प्रकाश दिखाई देंगे। यही रूहानी मण्डलों के द्वार का खुलना है।"

अमेरिकन महिला ने पूछा, "ईसा ने यह भी कहा कि जब तक मनुष्य दोबारा जन्म नहीं लेता, वह ख़ुदा की बादशाहत नहीं देख सकता। इससे उनका क्या तात्पर्य था ?"

महाराजजी ने फ़रमाया, "यह भी एक गूढ़ आध्यात्मिक अर्थ रखता है। दीक्षा (या बप्तिस्मा) 'दूसरा जन्म' है। हिन्दुओं में बहुत प्राचीन काल से ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, ये तीनों वर्ण जो दीक्षा के अधिकारी माने जाते थे, द्विजन्मा या द्विज कहलाते थे। शिष्य अपने माता-पिता के घर को छोड़ कर शिक्षा-दीक्षा लेने के लिये गुरु के आश्रम में प्रवेश करता था जहाँ वह वर्षों तक रहता था। वहाँ उसका दीक्षा लेना ही दूसरा जन्म लेना कहलाता था। इस प्रकार पहला जन्म जीव के शरीर का प्रारम्भ है तो दूसरा जन्म उसके आध्यात्मिक जीवन की शुरूआत है। गुरु के रूहानी परिवार में शिष्य पुत्र के समान अपनाये जाते हैं। मनुष्य जब तक सतगुरु की शरण में जाकर उनसे रूहानी मार्ग का भेद या नामदान प्राप्त नहीं करता वह ख़ुदा की बादशाहत में कैसे प्रवेश कर सकता है ?"

अमेरिकन महिला कुछ देर तक मौन रह कर बोली, "ईसा ने भी कहा है कि जिसने विश्वास किया है और दीक्षा ली है उसकी रक्षा होगी।"

हुज़ूर ने कहा, "जन्म-मरण से छुटकारे के लिये स्वामीजी ने भी यही शर्त बताई है, 'प्रीत प्रतीत गुरु की करना।' सतगुरु में पूर्ण विश्वास और उनके चरणों में गहरा प्यार जाग्रत करना और उनसे शब्द का भेद लेकर आन्तरिक अभ्यास करना ही छुटकारे का उपाय है। सच्चा सतगुरु और सच्चा मार्ग, ये दोनों ही काल और माया के चंगुल से मुक्त होने के लिये बहुत ज़रूरी हैं।"

पण्डित ठाकुरदत्त ने पूछा, "लेकिन हम सच्चे गुरु को कैसे पहचानें और यह कैसे पता चले कि उनका बताया हुआ रास्ता ही सच्चा रास्ता है ?"

हुज़ूर महाराजजी ने उत्तर दिया, "आपका सवाल उचित है। अच्छा किया जो आपने पूछ लिया। दुनिया में सैकड़ों तरह के गुरु हैं और एक जिज्ञासु के लिये उनमें से सच्चे गुरु को पहचान लेना बहुत मुश्किल है। सन्तों ने अपनी वाणियों में सतगुरु और सच्चे नाम की पहचान के लिये कुछ चिह्न और निशानियाँ दी हैं। गुरु नानक फ़रमाते हैं कि सच्चा गुरु वह है जो हमें पाँच दिव्य धुनों की दीक्षा देकर हमारे शरीर रूपी घर के अन्दर हमें अपना सच्चा घर दिखा दे।[1] पलटू साहिब फ़रमाते हैं 'धुन आने जो गगन की, सो मेरा गुरुदेव।' कबीर साहिब फ़रमाते हैं कि मेरी बात मानो, केवल सुरत-शब्द का अभ्यास ही तुम्हें मुक्ति दिलायेगा। यह शरीर हमारी आत्मा का घर है। इसमें परमात्मा भी रहता है। आज तक किसी ने उसे कहीं बाहर नहीं पाया है। इस घर के नौ दरवाज़े हैं।"

अपनी बात जारी रखते हुए हुज़ूर ने समझाया, "हमारे शरीर के दो हिस्से हैं। एक आँखों से नीचे है जिसे पिण्ड या शरीर कहते हैं, दूसरा आँखों से ऊपर है — जो हमारे ललाट के बीच में है। इसे ब्रह्माण्ड या ब्रह्म की बैठक कहते हैं।

पिण्ड में छः चक्र हैं। इन्हें योग-शास्त्रों में षट्-चक्र कहते हैं। षट् का अर्थ है छः; चक्र का अर्थ है केन्द्र, कमल या पहिया। जैसे शरीर में अलग-अलग छः नाड़ी-ग्रन्थियाँ होती हैं, लगभग वैसे ही छः चक्र होते हैं। इन चक्रों की गिनती नीचे से ऊपर की तरफ़ होती है, इसलिये 'मूलाधार' पहला चक्र है और 'स्वाधिष्ठान' दूसरा है और ऐसे ही अन्य चक्रों का क्रम है।"

इन छः चक्रों को मुसलमान सन्त दरजाते-सिफ़ली कहते हैं और ये ब्रह्माण्ड के छः चक्रों की परछाईं मात्र हैं। नीचे के इन छः चक्रों के अलग-अलग देवता या मालिक होते हैं जिनका कार्य शरीर की देखभाल या रक्षा करना है।

"प्राण क्या वस्तु है ?" पादरी ने पूछा।

---

1. घर महि घरु दिखाइ देइ सो सतिगुरु पुरखु सुजाणु ॥
पंच सबद धुनिकार धुनि तह बाजै सबदु नीसाणु ॥ (आ.ग्र.म.1, पृ. 1290-91)

हुज़ूर ने अफ़सोस ज़ाहिर करते हुए कहा, "माफ़ कीजियेगा, मैंने इस लफ़्ज़ का अर्थ नहीं समझाया। हिन्दुस्तान का बच्चा-बच्चा भी जानता है कि प्राण क्या होते हैं। लेकिन एक पश्चिमी देशवासी को इसे समझना बड़ा कठिन है। वैसे प्राण का अर्थ है — साँस। पर वास्तव में यह वह जीवन-शक्ति या ताक़त है जो पाँच प्रकार की वायु के रूप में हमारे शरीर की तमाम मशीन को चलाती है। ये पाँच प्राण हैं — (1) प्राण, (2) अपान, (3) समान, (4) व्यान, (5) उदान। इनके कार्यों के हिसाब से मैं इनका वर्णन करता हूँ। उदाहरण के लिये, ये प्राण ही हैं जो अँतड़ियों से मल को निकालने और दूर करने में मदद करते हैं। इस प्राण को 'अपान' कहते हैं यानि वह वायु जो नीचे से निकलती है। 'समान' का काम नाभि-चक्र से सारे शरीर में समान रूप से पोषण पहुँचाना है। समान का अर्थ है — बराबर। 'व्यान' नाम का प्राण सारे शरीर में ख़ून का दौरा कराता रहता है। 'उदान' नामक प्राण मृत्यु के समय आत्मा को एक देह से दूसरी देह में ले जाते हैं। प्राण मुख, आँख और नाक में काम करते हैं। जब मनुष्य मर जाता है तो हम कहते हैं कि उसके प्राण निकल गये। प्राण वह मूल शक्ति है जिससे संसार की दूसरी ताक़तें पैदा होती हैं। योगियों ने प्राणायाम की साधना के द्वारा प्राणों पर अधिकार करके मन पर विजय प्राप्त करने की कोशिश की और वे आध्यात्मिक मण्डलों में उस ऊँचाई तक चले गये, जहाँ तक कि प्राण उन्हें ले जा सकते थे। सारे प्राण और वायु अन्दर के आकाश में विलीन हो जाते हैं (जो उनका उत्पत्ति स्थान है) और वे प्राणायाम के साधक को इससे ऊपर नहीं ले जा सकते। यह रास्ता बहुत ही लम्बा और कठिन है।

"सन्त अपनी साधना आज्ञा-चक्र से शुरू करते हैं जो कि आत्मा और मन की बैठक है और यहीं से सीधे ऊपर के मण्डलों में चढ़ाई करते हैं। वेद और दूसरे शास्त्र केवल 'ब्रह्म के स्थान', यानी आठवें चक्र तक का वर्णन करते हैं जो कि सन्तमत की दूसरी मंज़िल है। इसके ऊपर केवल सन्त ही जाते हैं। सत-देश के अलावा दूसरे सब लोक प्रलय और महाप्रलय में नष्ट हो जाते हैं, केवल बारहवाँ लोक सत-देश ही अविनाशी है।

"इसलिये इस बात को समझने में कोई ज़्यादा कठिनाई नहीं होनी चाहिये कि मनुष्य को ऐसा गुरु धारण करना चाहिये जो उसे प्रलय और

महाप्रलय से परे उस लाफ़ानी व अविनाशी धाम तक ले जा सके। सुरत-शब्द-योग अर्थात् नाम का अभ्यास ही एकमात्र ऐसा मार्ग है जो हमें वहाँ तक ले जा सकता है और केवल सच्चे सतगुरु से ही हमें उस सच्चे नाम की दीक्षा मिल सकती है। सच्चा नाम या शब्द न लिखा जा सकता है, न बोला जा सकता है, वह संसार की किसी भी भाषा में नहीं है। जैसा कि गुरु नानक फ़रमाते हैं, 'यह बिना आँखों के देखा और बिना कानों के सुना जाता है, उसे देखने के लिये अपनी आँखें और उसे सुनने के लिये अपने कान बन्द करो'।"

जैसे ही हुज़ूर महाराजजी थोड़ी देर के लिये रुके, एक मुसलमान सज्जन ने कहा, "हुज़ूर, सिर्फ़ एक सवाल और है। कुछ मुसलमान महात्मा कहते हैं कि यह दुनिया 40 या 50 साल के बाद ख़त्म होने वाली है। क्या आप भी ऐसा ही मानते हैं ?"

हुज़ूर ने पूछा,"इस भविष्यवाणी का आधार क्या है ?"

"मुझे नहीं मालूम, लेकिन यह किसी पैग़म्बर का कथन हो सकता है।"

"नहीं, यह कथन किसी पैग़म्बर का नहीं हो सकता।", हुज़ूर ने कहा,

"हुज़ूर, इस अफ़वाह ने बड़ी फ़िक्र पैदा कर दी है। इसके बारे में आपकी क्या राय है ?"

एक मुसलमान महिला ने सरलतापूर्वक कहा, "जी हाँ, आपकी राय से हमारा सारा डर दूर हो जायेगा।"

हुज़ूर ने मुसकराते हुए कहा, "बेटी, तुम्हें कोई चिन्ता करने की ज़रूरत नहीं। यह दुनिया अभी ख़त्म होने वाली नहीं है।"

9. एक गुनहगार और सतगुरु

इसी समय बहुत-से गोरखा सत्संगी हुज़ूर के दर्शन करने आये। ये लोग डलहौज़ी से कोई दस मील दूर बकलोह छावनी के फ़ौजी अफ़सर थे। हुज़ूर के चरणों में गिर पड़े। उनमें से एक महिला ने हुज़ूर के चरणों को आँसूओं से भिगो दिया और उन्हें छोड़ नहीं रही थी। यूरोपियन पार्टी के एक सदस्य ने आक्षेप किया कि इस प्रकार चरणों पर गिरना इनसानियत का अपमान है।

हुज़ूर ने जवाब दिया, "मैं इस पैर छूने की आदत को पसन्द नहीं करता और मैंने इन लोगों को इस तरह पेश आने से रोकने की बड़ी कोशिश की है लेकिन फिर भी ये नहीं मानते।"

इस पर अमेरिकन महिला ने पादरी के हाथ से धीरे से बाइबिल ले ली और उसमें से नीचे का अंश पढ़ कर सुनाया :

"उस शहर की एक स्त्री को, जो बड़ी पापिन थी, जब यह मालूम हुआ कि ईसा मसीह एक फ़रीसी के घर में खाना खाने बैठे हैं, तो वह एक बहुत बढ़िया डब्बे में मरहम लाई और उनके चरणों में बैठ कर रोने लगी, यहाँ तक कि अपने आँसुओं से उनके चरण ही धो डाले और अपने सिर के बालों से उन्हें पोंछा, चूमा और उन पर मरहम लगाया।

"जब फ़रीसी ने यह देखा तो वह अपने मन में कहने लगा कि अगर यह मनुष्य पैग़म्बर होता तो इसे मालूम होना चाहिये था कि जो स्त्री इसके चरणों को छू रही है वह कैसी औरत है, क्योंकि वह बड़ी पापिन है।

"तब ईसा ने साइमन से कहा, 'एक साहूकार था जिसे दो क़र्ज़दारों से पैसे वसूल करने थे। एक से पाँच सौ पैंस और दूसरे से पचास। दोनों क़र्ज़दारों के पास क़र्ज़ चुकाने के लिये एक कौड़ी भी न थी। साहूकार ने उदारता से उन दोनों का क़र्ज़ माफ़ कर दिया। बताओ, उन दोनों में से साहूकार को ज़्यादा प्यार कौन करेगा ?' साइमन ने जवाब दिया, 'जिसके उसने ज़्यादा पैसे माफ़ किये हैं।' तब उस स्त्री की तरफ़

देखते हुए उन्होंने साइमन से कहा, 'तू इस स्त्री को देखता है ? मैं तेरे घर आया। पैर धोने के लिये तूने मुझे पानी तक नहीं दिया, लेकिन इस स्त्री ने मेरे पैर अपने आँसुओं से धोये और अपने सिर के बालों से उन्हें पोंछा। तूने मुझे चूमा नहीं, लेकिन यह स्त्री जब से मैं इस घर में आया हूँ, लगातार मेरे पैर चूमती जा रही है। तूने मेरे सिर पर तेल नहीं लगाया, किन्तु इस स्त्री ने मेरे पैरों पर मरहम लगाया। इसलिये मैं तुझसे कहता हूँ कि इसके पाप ज़्यादा होते हुए भी माफ़ हो चुके हैं, क्योंकि इसमें प्रेम बहुत है। लेकिन जिसने प्यार कम किया है, उसे माफ़ी भी कम ही मिली है।' और उन्होंने उस स्त्री की ओर मुड़ कर कहा, 'तेरे पाप बख़्श दिये गये हैं। तेरी श्रद्धा और विश्वास ने तुझे उबार लिया। तू निश्चिन्त होकर जा'।"

(ल्यूक 7: 37-50)

"बाइबिल में जैसा वर्णन किया गया है वैसा दृश्य तो यहाँ डेरा में रोज़ ही देखने में आता है", वीरभान जी ने कहा।

प्रोफ़ेसर जगमोहनलाल बोले, "ईसा मसीह हमेशा इस तरह के चरित्र दिखाया करते थे और दुनिया के सारे मसीहा इसी प्रकार करते रहे हैं। हुज़ूर मुझे अगर मना न करें तो इस बारे में मैं आपको एक बड़ी अच्छी कहानी सुना सकता हूँ।"

अमेरिकन महिला ने कहा, "कृपा करके हमें ज़रूर सुनाइये। हम हुज़ूर से विनती करेंगे कि वे आपको मना न करें।"

इस पर हुज़ूर महाराजजी पानी पीने के लिये उठ कर अन्दर चले गये और प्रोफ़ेसर साहब कहानी सुनाने लगे :

एक बार हुज़ूर महाराजजी सत्संग के लिये अमृतसर गये। वे हर महीने की संक्रान्ति के दिन वहाँ सत्संग दिया करते थे। हुज़ूर अपनी मोटर-कार में मजीठा रोड पर स्थित सत्संग-घर की ओर जा रहे थे। सड़क पर बड़ी भीड़ थी। लोग मोटरों, ताँगों, साईकिलों और रिक्शों पर सत्संग-घर की ओर चले जा रहे थे और बहुत-से लोग पैदल भी थे। जब हुज़ूर सत्संग-घर से दो फ़र्लांग की दूरी पर थे तो सड़क के एक मोड़ पर एक आदमी अचानक उनकी कार के सामने आ गिरा। ड्राइवर ने गाड़ी रोकी और क्या हुआ यह देखने के लिये हुज़ूर भी नीचे उतरे। एक शराबी उनकी कार के बिलकुल सामने आकर गिर पड़ा था। लेकिन खुशक़िस्मती से वह बच गया। उसे कहीं चोट नहीं आई। हुज़ूर ने उस

शराबी को उसके कुछ साथियों की मदद से उठाना चाहा पर वह इतना नशे में था कि खड़ा न हो सका। बहुत-से सत्संगियों ने उसे रास्ते से हटाने में मदद की। जब हुज़ूर चले गये तो शराबी ने पूछा कि कार में ये सरदारजी कौन थे ? वह पूरे होश में नहीं था, फिर भी हुज़ूर का शहंशाही स्वरूप उसके दिल पर असर किये बिना न रहा। उसके साथी, जो खुद भी आधे नशे में थे, मज़ाक़ के स्वर में बोले कि यहाँ खड़े लोग कह रहे थे कि वह तो खुदा है जो तुम जैसे पापियों को तारने के लिये धरती पर आया है।

उस शराबी किसान ने कहा, "वह तो ख़ुदा ही मालूम होता है। मैं अपने पापों को बख़्शवाने के लिये उसके पास जाना चाहता हूँ।" कुछ देर बाद शराब की आधी बोतल जेब में रखे, अपने साथी के कन्धे के सहारे लड़खड़ाता हुआ वह सीधा सत्संग-घर जा पहुँचा।

हुज़ूर महाराजजी एक आराम कुर्सी पर बैठे हुए थे। हमें तो इस आदमी का पता तब चला जब वह लड़खड़ाते हुए आकर एकदम हुज़ूर के चरणों में गिर पड़ा और अपनी बाँहों में हुज़ूर के पैरों को जकड़ लिया।

"आप तो ख़ुदा हैं, मेरे पापों को माफ़ कर दीजिये", उसने बड़ी दीनता के साथ अर्ज़ की।

महाराजजी उससे अपने आप को छुड़ाने की कोशिश करते जा रहे थे और कहते जा रहे थे, "उठो बेटा, उठो। मैं ख़ुदा नहीं हूँ। मैं भी तुम्हारे जैसा ही एक इनसान हूँ।" किसान ने कहा, "मैं तब तक नहीं उठूँगा, जब तक आप मेरे पाप नहीं बख़्श देंगे।"

हुज़ूर महाराजजी के मुख से अनायास कृपा और करुणा से पूर्ण हँसी फूट पड़ी। ऐसा लगा कि इस हँसी के साथ ही उसे बख़्श दिया गया।

महाराजजी के निजी सेवादार मनोहर और जमादार प्रतापसिंह ने उसे ज़बरदस्ती हटाना चाहा, लेकिन हुज़ूर ने उन्हें ऐसा करने से मना कर दिया।

हुज़ूर ने मुसकराते हुए कहा, "अच्छा! ज़बरदस्ती माफ़ी हासिल करने का यह तरीक़ा खूब है।"

वह शराबी फूट-फूटकर रोने लगा, बोला "आप जो चाहे कहें लेकिन जब तक मुझे माफ़ी नहीं मिलेगी मैं चरण नहीं छोड़ूँगा।"

हुज़ूर मुक्त स्वर में हँस पड़े और उन्होंने अपने दोनों हाथ उसके सिर पर रखते हुए कहा, "अच्छा बेटा, अब उठो, तुम्हें माफ़ किया।"

किसान ने सिर ऊँचा करते हुए पूछा, "मेरे सब पापों को माफ़ कर दिया ? क्या मुझे नरक की यातनाओं से बचा लिया गया है ?"

"हाँ, तुम्हारे विश्वास ने तुम्हें बचा लिया है", हुज़ूर ने जवाब दिया।

शाम को वह किसान नाम लेने वालों की लाइन में खड़ा पाया गया। कुछ लोगों को नाम के लिये नामंज़ूर कर दिया गया, पर वह किसान स्वीकृत लोगों में से एक था।

हुज़ूर महाराजजी ने उस किसान से कहा, "तुम्हें शराब वग़ैरह नशीली चीज़ों और मांस, मछली, अण्डे आदि का भी त्याग करना पड़ेगा।"

उसने जवाब दिया, "शराब तो मैं कभी नहीं छोड़ सकता। यह मुझसे कभी नहीं हो सकेगा।"

हुज़ूर ने कहा, "तो फिर एक वचन दो कि मेरे सामने कभी नहीं पियोगे।"

किसान बोला, "हुज़ूर ! यह मुझे मंज़ूर है।"

हुज़ूर ने पूछा, "तुम अपनी रोज़ी कैसे कमाते हो ?"

"चोरी और डकैती से", उसने जवाब दिया, जिसे सुन कर सब हैरान हो गये।

हुज़ूर ने फ़रमाया, "यह भी तुम्हें छोड़ना पड़ेगा। तुम्हें कोई दूसरा धन्धा अपनाना होगा।"

उसने जवाब दिया, "मैं दूसरा धन्धा जानता ही नहीं।"

महाराजजी ने कहा, "लेकिन नाम लेने के बाद तुम्हें ईमानदारी के साथ रोज़ी कमाने के लिये कोई दूसरा काम करना होगा।"

"मैंने आज तक दूसरा धन्धा किया ही नहीं, और न कर ही सकता हूँ।"

ठीक है, तो तुम एक वादा करो, तुम अपनी ज़रूरत से ज़्यादा चोरी न करोगे और चोरी करते समय किसी दूसरे को अपने साथ न ले जाओगे।"

"इस बात का मैं तह-दिल से वादा करता हूँ।"

नाम लेकर जाते समय वह एक बार फिर हुज़ूर के चरणों में गिर पड़ा और हुज़ूर ने उसके सिर पर दोबारा हाथ रख कर उसे आशीर्वाद दिया।

नाम लेने के बाद वह गुरदासपुर ज़िले में रहने वाले अपने एक रिश्तेदार की लड़की की शादी में गया। वहाँ उसके पास पैसे ख़त्म हो गये। एक रात वह एक साहूकार के घर में घुसा और उसके लोहे के सन्दूक का ताला तोड़ दिया। ज्योंही उसने नोटों के एक बंडल पर हाथ डाला कि पेटी का ढक्कन, जो बहुत भारी था, उसके हाथ पर आ गिरा। उसके हाथों में काफ़ी चोट आई और पेटी में हाथ ऐसे फँस गया जैसे किसी शिकंजे में जकड़ गया हो। हाथ छुड़ाने में उसकी कोई चालाकी और होशियारी काम न आई। जब वह अपने हाथ को छुड़ाने की सब कोशिशें करके हार गया और समझ लिया कि अब बच नहीं सकता, तो हुज़ूर महाराजजी उसके सामने प्रकट हो गये। उस डाकू के हाथ को छुड़ाने में मदद देते हुए हुज़ूर ने फ़रमाया, "क्या तुमने मेरे सामने यह वादा नहीं किया था कि ज़रूरत से ज़्यादा कोई चीज़ नहीं चुराओगे ? अब सब कुछ छोड़ कर भाग जाओ और अपनी जान बचाओ।" उसके बाद उसने अपनी ज़िन्दगी में फिर कभी चोरी नहीं की। उसका नाम गंगू था और वह एक बहुत नामी डाकू था।

जिस दिन गंगू अपने गाँव लौट कर आया, उसके जिगरी दोस्त उसके पास आ धमके और उससे कहने लगे कि शाम को शराब की दावत में आना। पहले तो उसने साफ़ कह दिया कि वह उनके जश्न में शामिल नहीं होगा। लेकिन वे अपनी ज़िद पर अड़े रहे। उन्होंने ग़ैर क़ानूनी देशी शराब की बोतलें खोलीं और एक प्याला भर कर उसके सामने रख दिया। लेकिन गंगू ने हाथ जोड़ कर उनसे माफ़ी माँगी। इस पर उसका एक साथी बलवन्तसिंह, जो उसके गिरोह का नम्बर दो का मुखिया था, अपने दूसरे साथियों से बोला कि अपने मुखिया की अक़्ल मारी गई है, अब उसकी जगह मैं बागडोर सँभालूँगा। उसने हुज़ूर महाराजजी के शिष्य को चेतावनी दी, "अगर तुम नहीं पियोगे तो तुम्हारे हाथ-पैर पकड़ लेंगे और तुम्हें ज़मीन पर चित्त पटक कर तुम्हारी नाक बन्द कर देंगे। और मैं ख़ुद अपने हाथों से प्याले को तुम्हारे मुँह में उड़ेलने की रस्म अदा करूँगा।"

कुछ जवाब न पाने पर नये मुखिया ने गरजते हुए कहा, "क़ैदी ! बोलो, तुम्हें अपनी सफ़ाई में कुछ कहना है ?"

डाकुओं के सरदार गंगू ने जवाब दिया, "मैं अपने आप को तुम्हारे हवाले करता हूँ।" इस पर वे खुशी से चिल्लाने लगे और 'शराब की जय हो' के नारे लगाने लगे। उन्होंने अपने-अपने प्याले भर लिये और शराबियों के तराने गाने लगे, "शराब के होते हुए कौन मरता है।" गंगू प्याला उठा कर अपने होंठों से लगाने वाला ही था कि हुज़ूर महाराजजी उसके सामने प्रकट हो गये।

हुज़ूर ने कहा, "बेटा, अपना वादा याद करो। जैसे ही तुम अपना वादा तोड़ोगे, मैं भी अपनी दी हुई माफ़ी वापस ले लूँगा।" गंगू उठ खड़ा हुआ, प्याले को उसने नये मुखिया पर फेंक दिया और तेज़ी के साथ कमरे से बाहर भाग गया।

थोड़ी देर में ही वह एक बन्दूक़ हाथ में लेकर लौटा और अपने पुराने साथियों से बोला, "तुम जानते हो कि मेरा निशाना कैसा अचूक है। तुम यह भी जानते हो कि हुक्म न मानने के अपराध में मैं अपने आदमियों को भी बेखटके मार सकता हूँ। अब जैसे बैठे हो वैसे ही ख़ामोश बैठे रहो मेरी बात ध्यान से सुनो। अगर ज़रा भी हिले तो उसी वक़्त ख़त्म कर दिये जाओगे।"

उनके नये मुखिया ने कहना शुरू किया, "सरदार "

"कोई सरदार नहीं !" गंगू गरज उठा और उसने बन्दूक़ बलवन्तसिंह की ओर तान दी।

कमरे में सन्नाटा छा गया। तब गंगू ने शान्त स्वर में कहना शुरू किया, "मेरे भाइयो, सुनो ! मुझे एक ऐसे सतगुरु मिल गये हैं जिनकी एक दृष्टि ने मेरी ज़िन्दगी ही बदल दी है। मैंने उनसे वादा किया है कि मैं कभी शराब न छूऊँगा और न कभी कोई अपराध करूँगा। आज हमारा यह लुटेरों का दल यहीं ख़त्म होता है और अब हम किसी तरह का अपराध करने के लिये इकट्ठे नहीं होंगे। ये मेरी तिजोरी की चाबियाँ सँभालो। तुममें से किसी में भी मुखिया बनने की योग्यता नहीं है। तिजोरी में से सारा पैसा निकाल लो और आपस में बराबर-बराबर बाँट लो। मेरे ख़याल से हरएक के हिस्से में पाँच-पाँच हज़ार रुपये आयेंगे। किसी बड़े शहर में चले जाओ और इस पैसे की मदद से अपना मनचाहा कारोबार जमा लो। शायद पुलिस अभी तक तुम्हारे नाम नहीं

जानती। तुम आसानी से अपनी नई ज़िन्दगी शुरू कर सकते हो। अगर पिछले गुनाहों की वजह से तुममें से कोई भी गिरफ़्तार हुआ और मुक़दमा चला तो तुम्हारी मदद करने और तुम्हें बचाने के लिये मैं हमेशा तैयार हूँ। इन काली करतूतों से मैं अपने हाथ हमेशा के लिये धो चुका हूँ। अब अगर तुममें से किसी को कुछ कहना है तो बोलो।"

उनमें से एक बोल उठा, "सरदार तुम्हारे बिना हम ज़िन्दा नहीं रह सकेंगे। " और उसके बाद उन सबने यही आवाज़ उठाई।

गंगू ने बड़े प्रेम के साथ कहा, "अब हम सब भाइयों की तरह रहेंगे, चोरों और ठगों की तरह नहीं।" कुछ रुक कर उसने फिर कहा, "लेकिन नहीं, मैं तो एक जाना-पहचाना अपराधी हूँ। पुलिस मेरे पीछे पड़ी हुई है। अब मैं पुलिस से बचने की कोशिश नहीं करूँगा। एक न एक दिन मैं ज़रूर पकड़ा जाऊँगा। इसीलिये तुम सब जहाँ तक हो सके, मुझसे दूर रहने की कोशिश करो। मेरे साथ रहने में तुम्हारा भला नहीं है। बस एक आख़िरी बात और। अपनी ज़िन्दगी में कम से कम एक बार ब्यास ज़रूर जाना और वहाँ के परम सन्त के दर्शन ज़रूर करना। अगर तुममें से कोई पुलिस में जाकर मेरे बारे में ख़बर भी देगा तो मैं बुरा नहीं मानूँगा। लेकिन ऐसा करने में तुम ख़ुद न फँस जाना।" यह कहते हुए गंगू ने अपनी तिजोरी की चाबियों का गुच्छा उनकी ओर फेंक दिया और हाथ जोड़ कर उनसे बिदा ली।

कहा जाता है कि एक प्रतिभाशाली व्यक्ति और पागल में बाल बराबर ही अन्तर होता है। यदि हम गौर से गंगू डाकू के चरित्र की ओर नज़र डालें तो मालूम होगा कि उसमें वे गुण थे जिनसे वह एक फ़ौज का जनरल बन सकता था। निडरता, अपार साहस, संगठन करने की शक्ति, आत्मविश्वास, दृढ़-संकल्प, और वीरता आदि गुण उसमें थे। और वह जनरल ही बनता पर एक मामूली-सी घटना ने उसकी सारी ज़िन्दगी बदल दी। वह एक लम्बा तगड़ा और सुन्दर जवान था। वह सिर्फ़ 20 वर्ष का ही था तब उसने अपने गाँव के कुछ दोस्तों के साथ फ़ौज में भर्ती होने का विचार किया। ये सब सिक्ख थे, जो जन्म से ही बहादुर सिपाही हुआ करते हैं। नये कपड़े पहन कर और हाथ में लम्बी लाठियाँ लेकर ये अपने गाँव से फ़ौज में भर्ती होने के लिये गुरदासपुर की ओर चल पड़े।

लेकिन होनहार को कौन बदल सकता है ? पर भाग्य को उससे डाकू का पार्ट ही अदा करवाना था। अगर गुरदासपुर की सड़क पर एक पुलिस थाना न होता तो गंगू उसी दिन फ़ौज में भर्ती हो जाता और नाम, इज़्ज़त, धन, सब-कुछ उस पर जूही के फूलों की तरह आ बिखरते। लेकिन अफ़सोस कि यह 'परन्तु' कभी-कभी न मालूम क्या से क्या कर देता है। जब वे उस थाने के आगे से गुज़र रहे थे तो उन्होंने उस थाने के थानेदार को एक बरगद के पेड़ के नीचे एक चारपाई पर बैठे हुए किसी मामले की तहक़ीक़ात करते हुए देखा। वह एक आदमी को बुरी तरह पिटवा रहा था। उन दिनों पुलिस वाले अक्सर मार-पीट के तरीक़े अपनाया करते थे। उस आदमी की दर्दनाक चीखें सुन कर ये तीनों लड़के उस ओर चल पड़े, हालाँकि उनका वहाँ कोई काम न था। कोई भी समझदार आदमी जिसको दुनिया और ख़ासकर पुलिस का तजुर्बा होता उस ओर नहीं जाता। पर भाग्य में कुछ और ही लिखा था।

लड़कों ने देखा कि जो आदमी पीटा जा रहा था वह उनके ही गाँव का एक ग़रीब आदमी था। वह ज़मीन पर उलटा पड़ा था। दो सिपाही नालदार जूते पहन कर उसे रौंद रहे थे और साथ ही डण्डों से उसे बेरहमी के साथ पीट रहे थे। गंगू नासमझी के साथ पूछ बैठा, "इस बेचारे को क्यों पीट रहे हो ?"

थानेदार ने गालियाँ देते हुए जवाब दिया, "यह तेरा बाप है या दादा ? तुम लोग इसके ख़ास साथी मालूम होते हो ?" थानेदार ने एक सिपाही को हुक्म दिया, "पकड़ लो इसे ! ज़रा इसकी भी ख़बर ले ली जाये।"

जैसे ही सिपाही ने उस पर हाथ उठाया, उसने एक ही लट्ठ ऐसा जमाया कि सिपाही चक्कर खाकर वहीं गिर पड़ा। गंगू ने उस ग़रीब से कहा, "अरे बेवक़ूफ़, उठ भाग ! यहाँ कुत्ते की तरह पड़ा-पड़ा पिटे जा रहा है।" गंगू के ये शब्द उस पर ऐसा असर कर गये मानों किसी हकीम ने उसे संजीवनी बूटी दे दी हो। उसने घबराये हुए सिपाही को गिरा दिया और एक और सिपाही के हाथ से लाठी छीन कर थानेदार की भी बेखटके पिटाई शुरू कर दी। उनकी मार के आगे सब सिपाही भाग खड़े हुए। थानेदार को मुर्दा समझ कर छोड़ दिया गया। गंगू और उसके साथियों का फ़ौज में भर्ती होने का सवाल ही ख़त्म हो गया। उनके पास अब भाग कर क़ानून से छिपते-फिरने के सिवाय और कोई

चारा न था। इस प्रकार एक होनहार ज़िन्दगी इस जरा-सी नादानी के कारण बरबाद हो गयी।

प्रो. जगमोहनलाल जी द्वारा सुनाई गई कहानी यहाँ समाप्त हो गई। लेकिन अगर मैं यहाँ यह न बताऊँ कि गंगू कैसे मरा और किस वीरता से उसने मौत का सामना किया, तो यह कहानी अधूरी रह जायेगी। हुज़ूर महाराजजी के चोला छोड़ने के समय तक हम गंगू के बारे में ज़्यादा कुछ जान न सके। शायद वह अपने डाकुओं के दल को समाप्त करने के बाद किसी निर्जन पहाड़ी में छिपा रहा। लेकिन इतना ज़रूर मालूम है कि उसने भजन-सिमरन में काफ़ी समय लगाया और उसमें काफ़ी सफलता प्राप्त की। वह एक मज़बूत और हट्टा-कट्टा जाट नौजवान था और हँसते-हँसते सब तरह के कष्ट, मेहनत और मुसीबत को बरदाश्त करने का आदी हो गया था। वास्तव में ऐसे दृढ़-संकल्प मनुष्य ही भजन-सिमरन में ख़ूब सफल होते हैं। एक नाज़ुक और कमज़ोर इरादे का आदमी भजन में सफल नहीं हो सकता। भजन के लिये एक सूरमा के साहस और दृढ़ता की ज़रूरत है, जो अमर-पद प्राप्त करने के लिये अपना सर्वस्व न्योछावर करने को तैयार हो। पलटू साहिब कहते हैं कि भजन मिश्री की डली नहीं है जिसे हर कोई निगल जाये; यह तो ज़हर का प्याला है, जो भी पीना चाहे सामने आये।

हुज़ूर महाराजजी के चोला छोड़ने के बाद गंगू अपने गुप्त स्थान से बाहर निकल आया। अपने प्यारे सतगुरु के चले जाने के बाद उसके लिये जीवन सारहीन हो गया। नतीजा यह हुआ कि उसने अपने आप को पुलिस के हवाले कर दिया। उसे कई डकैतियों, हत्या, और अन्य अपराधों में मुलज़िम बनाया गया और उसे फाँसी की सज़ा सुनाई गई। उसने फाँसी के हुक्म के ख़िलाफ़ हाइकोर्ट में अपील तक न की। उसे फाँसी देने के लिये अम्बाला जेल में ले जाया गया। जब जेल के इंस्पेक्टर-जनरल जेल का मुआयना करने आये और उसकी कोठरी के सामने से निकले तो उन्होंने पूछा, "यह क़ैदी कौन है ?"

जेलर ने जवाब दिया, "यहं मशहूर डाकू गंगू है, जिसे फाँसी की सज़ा हुई है।"

इंस्पेक्टर-जनरल ने घबराहट के साथ कहा, "ओहो! यह तो लाहौर के सेण्ट्रल जेल से तीन बार भाग चुका है, और आपने इसे मामूली कोठरी में रख छोड़ा है। इसे उस कोठरी में रखो जिसमें

सज़ा-ए-मौत के क़ैदियों को रखा जाता है और इस पर सख़्त पहरा बैठा दो।"

गंगू कुछ कहना चाहता था पर चुप रह गया।

इंस्पेक्टर-जनरल ने पूछा, "क्या तुम्हें कुछ अर्ज़ करना है ?"

"नहीं ! कुछ नहीं। बस मुझे जितनी जल्दी हो सके फाँसी पर लटका दिया जाये", गंगू ने जवाब दिया।

जब इंस्पेक्टर-जनरल चले गये तो जेलर उसको दूसरी कोठरी में ले जाने के लिये आया। गंगू ने जेलर से कहा, "सुनिये, खान साहब ! आप मुझे दूसरी कोठरी में बदलें या न बदलें, जैसी आपकी इच्छा हो करें। पर मैं अब भागूँगा नहीं। यह देखिये।" उसने अपनी कोठरी के पीछे की खिड़की के तीन सरिये निकाले और उनको दिखाते हुए बोला, "मैंने दो-तीन दिन पहले यहाँ से निकल भागने का सारा इन्तिज़ाम कर लिया था पर मेरे सतगुरु मेरे सामने प्रकट हुए और ऐसा करने से मना कर दिया। उन्होंने मुझसे कहा कि अब तेरा इस संसार से जाने का वक़्त आ गया है और इससे मुझे बड़ी ख़ुशी हुई। मैं इस बात को आपके इंस्पेक्टर साहिब से भी कहना चाहता था, पर यह सोच कर चुप रहा कि कहीं इससे आपका या आपके मातहतों का कोई नुक़सान न हो जाये।"

जेलर ने उसके इस विचार पर धन्यवाद दिया। तीन दिन बाद उसे फाँसी के तख़्ते पर ले जाया गया। इस बीच का समय वह बराबर दिन-रात भजन-सिमरन में बिताता रहा। सुबह जब जेल का डॉक्टर उसका मुआयना करने आया तो मालूम हुआ कि उसका वज़न दो पौंड बढ़ गया है। फाँसी के समय जेलर और डॉक्टर के अलावा एक मजिस्ट्रेट भी वहाँ मौजूद था। उन्होंने उससे पूछा कि क्या उसकी कोई आख़िरी इच्छा है ?

"बस यही कि मेरा शरीर संस्कार के लिये ब्यास में हुज़ूर महाराजजी के चरणों में भेज दिया जाये", गंगू ने उत्तर दिया

"और भी कुछ कहना है ?"

गंगू ने कहा, "कुछ नहीं। मैं बहुत ख़ुश हूँ। मेरे प्यारे सतगुरु मेरे साथ हैं। वे मुझे अपने धाम ले जा रहे हैं।" वह फाँसी के तख़्ते पर इस प्रकार चढ़ा जैसे विवाह के समय निकासी के लिये घोड़े पर चढ़ रहा हो। जब जल्लाद ने फन्दा फ़िट करने में कुछ देर लगाई तो गंगू ने

उसके हाथ से फन्दा ले लिया और अपने गले में खुद लगा लिया और फन्दे की गाँठ बाँधने में जल्लाद की मदद की। उसके आख़िरी शब्द ये थे, "अगर आपमें से कोई खुशक़िस्मत है तो एक बार ब्यास ज़रूर जाये और वहाँ जीते-जागते परमात्मा के दर्शन ज़रूर करे। धन सतगुरु !"

और वे तीनों ब्यास आये। वे आये, यहाँ का हाल देखा और यहीं के हो गये। उन्होंने बताया कि फाँसी के दिन गंगू इस क़दर खुशी और मस्ती में था मानों उसकी शादी हो रही हो। उसके चेहरे पर एक अद्भुत आत्मिक तेज चमक रहा था। जेल के डॉक्टर का कहना था कि उनके अनुभव के अनुसार मौत को नज़दीक आते हुए देख कर अच्छे-अच्छे बहादुर क़ैदियों का भी वज़न घट जाता था और वे पीले पड़ जाते थे, लेकिन गंगू का हाल इनसे उलटा ही था और उसने अपनी ज़िन्दगी में ऐसा वाक़या पहले कभी नहीं देखा था।

गंगू का शव उसके रिश्तेदारों द्वारा डेरे लाया गया और सरदार बहादुर जी महाराज की मौजूदगी में उसका दाह-संस्कार यहीं किया गया।

जब हुज़ूर महाराजजी पानी पीकर अन्दर से लौटे तो एक सज्जन ने कहा, "मैं एक पादरी हूँ। मेरा काम अमेरिका के एक गिरजे में उपदेश देना है। अगर मैं सन्तमत में आऊँ तो क्या मुझे यह कार्य छोड़ना होगा ?"

"नहीं", हुज़ूर ने फ़रमाया, "उसे छोड़ने की क्या ज़रूरत है ? असल में तब आप और अच्छे उपदेशक बन जायेंगे।"

उस पादरी ने कहा, "मुझे ऐसा लगता है कि फिर शायद मेरा मन उसमें न लगे और मैं पूरी लगन के साथ उपदेश न दे सकूँ।"

हुज़ूर ने कहा, "क्यों नहीं ? आज तक आपने लोगों को बुरे उपदेश तो दिये नहीं है। और अब जो कुछ भी ज्ञान आप प्राप्त करेंगे उससे आप सत्य के और नज़दीक ही पहुँचेंगे।"

"लेकिन अगर मेरे ऊपर वाले अधिकारी इसमें एतराज़ करें तो ?" पादरी ने पूछा।

हुज़ूर महाराजजी ने सलाह दी, "अगर उपदेश देना ही आपकी रोज़ी का एकमात्र ज़रिया है तो आप इसे अपना कर्तव्य समझ कर करते रहें।"

पादरी ने कहा, "लोग अभी सच्चाई को सुनने के लिये तैयार नहीं हैं।"

"तब आप उन्हें सच्चाई की उतनी ही खुराक दें जितनी कि वे पचा सकें।"

पादरी ने कहा, "मैं लड़ाई के समय फ़ौज में था। मैं फिर से फ़ौज में जा सकता हूँ। लेकिन सिपाहियों की हत्या करनी पड़ती है।"

हुज़ूर महाराजजी ने जवाब दिया, "तो क्या हुआ ? सिपाही अपनी मर्ज़ी से तो किसी को मारता नहीं। वह तो अपने हाकिम के हुक्म की तामील करता है। हत्या का भार उसके सिर पर नहीं है। वह तो केवल फ़र्ज़ अदा करता है। मान लो, शहर में दंगा हो रहा है या डकैती हो रही है तो उस समय गोली चलाना बेहतर है या अपने कर्तव्य से मुँह चुराना ?"

10. मुक्ति के साधन

मुझे याद नहीं कि यह कौन-से साल की बात है, पर बड़े दिन की छुट्टियाँ थीं और अदालतें व दफ़्तर बन्द हो चुके थे। इन बातों को भूलने का कारण यह है कि हुज़ूर महाराजजी की बातें बहुत जल्दी में और बिना किसी तैयारी के नोट की गई थीं। हुज़ूर के आराम या सुविधा का कोई ख़याल न रखते हुए लोग किसी भी समय आ जाते थे। हुज़ूर भी इतने दयालु थे कि वे तुरन्त उनसे मिलने नीचे आ जाते और बड़े प्रेम के साथ उनके सवालों का जवाब देते। बे-वक़्त आने वाले लोगों में अधिकतर नये जिज्ञासु हुआ करते थे जो लाहौर, अमृतसर और कश्मीर जाते समय घण्टे दो घण्टे के लिये डेरे मे रुक जाया करते थे। ख़ास तौर पर एक दिन की बात मुझे याद है जब हुज़ूर महाराजजी सुबह से दोपहर तक बाहर से आये हुए लोगों के साथ बातें करते रहे और दोपहर का भोजन भी दो बजे ही ले सके। जैसे ही भोजन करके उठे कि फ़ौजी अफ़सरों की एक टोली आ गई और हुज़ूर के दर्शनों की प्रार्थना की। मैं उनसे माफ़ी माँग ही रहा था कि हुज़ूर खुद बाहर आ गये और थोड़ी देर आराम करने की मेरी प्रार्थना को उन्होंने अनसुनी कर दिया। उन अफ़सरों ने भी हुज़ूर से कुछ आराम करने की विनती की, पर वे न माने। उन्होंने सबको बुला लिया और बड़े उत्साह के साथ उनके सवालों का जवाब इस ताज़गी के साथ देने लगे मानों रात-भर आराम करके अभी उठे ही हों।

ऐसे मौक़ों पर जब हम उनसे कुछ आराम करने की ज़िद करते तो वे जवाब देते, "यह तो मेरे सतगुरु द्वारा दी हुई ड्यूटी (कर्तव्य) है, इससे मैं जी नहीं चुरा सकता।"

इसीलिये, ये बातें जल्दी-जल्दी में नोट की गई हैं। तारीख़, महीने और दूसरी बातों को लिखने का समय ही नहीं मिलता था और न मैंने उस समय इसकी ज़रूरत ही समझी।

इनके सिवाय जब भी मैंने अपनी याददाश्त से कुछ तारीख़ वग़ैरह लिखने की कोशिश की तो कामयाबी नहीं हुई। इसलिये मैंने तारीख़ देने का विचार ही छोड़ दिया और कुछ दिन बाद मुझे तारीख़ वग़ैरह देने की ज़रूरत ही महसूस नहीं हुई। हुज़ूर महाराजजी की बातें क्या समय या काल की सीमा से परे नहीं हैं ?

अपनी छुटिटयों का कुछ समय डेरे में बिताने के लिये कुछ लोगों का दल वहाँ आया था। उसमें राय साहब रणजीत गोपाल, एडिशनल डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट जालन्धर, वहाँ के मशहूर फ़ौजदारी वकील सरदार साहब केसरासिंह, पं. केवलकृष्ण बैरिस्टर जो पब्लिक प्रोसिक्यूटर थे तथा जालन्धर के कुछ और सज्जन भी थे। राय साहब रणजीत गोपाल तो सत्संगी थे, बाक़ी लोग सत्संगी नहीं थे, पर आज-कल के पढ़-लिखे लोगों की तरह वे लोग भी 'परमात्मा क्या है और मरने के बाद क्या होता है' आदि के बारे में कुछ जानने को उत्सुक थे। लेकिन शर्त यह थी कि इसमें उन्हें मेहनत और तकलीफ़ न उठानी पड़े। राय रणजीत गोपाल ने हुज़ूर से उन सबका परिचय कराया।

जालन्धर के एडवोकेट सरदार भगतसिंह, सरदार जगतसिंह (जो बाद में हुज़ूर महाराज सरदार बहादुर बने) और राय साहब मुन्शीराम जो पंजाब के डिस्ट्रिक्ट एवं सेशन्स जज थे (और बाद में हुज़ूर महाराजजी के सेक्रेटरी बने) और इस पुस्तक के लेखक भी वहाँ मौजूद थे। ये सत्संगी हर छुट्टी को, चाहे वह एक दिन ही क्यों ने हो, डेरे आया करते थे।

जब हुज़ूर सबकी राज़ी-खुशी के समाचार पूछ चुके, तो सरदार केसरासिंह ने बातचीत शुरू की और पूछा, "परमार्थी ज्ञान प्राप्त करने के लिये जिज्ञासु को किस ग्रन्थ का अध्ययन करना चाहिये ?"

हुज़ूर महाराजजी ने पूछा, "अभी तक आपने कौन-सी पुस्तकें पढ़ी हैं?"

"मैंने गीता का अंग्रेज़ी अनुवाद पढ़ा है।"

"क्या आपने श्री गुरु ग्रन्थ साहिब भी पढ़ा है?" हुज़ूर ने फिर पूछा।

उन्होंने जवाब दिया, "जी नहीं ! मैंने तो केवल श्री गुरु ग्रन्थ साहिब के कुछ अंश भाइयों (गुरुद्वारों में श्री गुरु ग्रन्थ साहिब का पाठ करने वालों) से सुने हैं। इसकी भाषा इतनी कठिन है कि आसानी से समझ में नहीं आती।"

हुज़ूर ने सुझाव दिया, "तब आप सुखमनी साहिब पढ़ें। यह आसान और सरल है। और वैसे तो श्री गुरु ग्रन्थ साहिब का भी काफ़ी अंश बहुत आसान है।"

यहाँ पं. केवलकृष्ण बोले, "किताबें तो आख़िर किताबें ही होती हैं, चाहे वे कितनी ही धार्मिक और प्रेरक क्यों न हो। असल में ज़रूरत तो एक ऐसे पहुँचे हुए और सिद्ध पुरुष की है जिसके शरीर के रोम-रोम से रूहानियत की किरणें बिखर रही हों।"

राय रणजीत गोपाल ने कहा, "प्रोसिक्यूटर साहब, इतने बड़े सत्य को आपने किस ख़ूबसूरती के साथ कहा है। मैं नहीं जानता था कि आप एक छिपे हुए ज्ञानी हैं। मौलाना रूम ने फ़रमाया है कि सन्तों के पास एक क्षण का बैठना वर्षों की प्रार्थना और तपस्या से कहीं बेहतर है।"[1]

सरदार केसरासिंह ने कहा, "असली समस्या तो मन को वश में करने की है।"

महाराजजी ने फ़रमाया, "मैं इस विषय में आपको बड़े-बड़े सन्तों के कथन सुनाता हूँ। हमारे शरीर में मन का ठिकाना आँखों के पीछे तीसरे तिल में है। यहीं से मन शरीर के नौ दरवाज़ों (आँख, कान, नाक, मुँह आदि) से संसार में चारों ओर फैलता है। जब तक हम फैली हुई मन की तवज्जह को बाहर से समेट कर वापस इसी जगह न ले आयें, तब तक मन को क़ाबू करना बड़ा मुश्किल है। लोगों ने इसे वश में करने के लिये कई तरीक़े अपनाये, लेकिन पूरी तरह असफल रहे।"

हुज़ूर ने सरदार भगतसिंह को 'शब्द की महिमा के शब्द' में से गुरु अर्जनदेव का 'पाठु पड़िओ अरु बेदु बीचारिओ' (आ.ग्र.म.5, पृ. 641-642) पद पढ़ने को कहा। इस पुस्तक में हुज़ूर महाराजजी के द्वारा श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में से चुने गये शब्दों का संग्रह है।

सरदार भगतसिंह ने पूरा शब्द पढ़ कर सुनाया :

सोरठि महला 5

पाठु पड़िओ अरु बेदु बीचारिओ निवलि भुअंगम साधे ॥
पंच जना सिउ संगु न छुटकिओ अधिक अहंबुधि बाधे ॥
पिआरे इन बिधि मिलणु न जाई मै कीए करम अनेका ॥

1. हम नशींनी साइते बा औलिया बेहतर अज सद साला ताअते बेरिया।

हारि परिओ सुआमी कै दुआरै दीजै बुधि बिबेका ॥
मोनि भइओ करपाती रहिओ नगन फिरिओ बन माही ॥
तट तीरथ सभ धरती भ्रमिओ दुबिधा छुटकै नाही ॥
मन कामना तीरथ जाइ बसिओ सिरि करवत धराए ॥
मन की मैलु न उतरै इह बिधि जे लख जतन कराए ॥
कनिक कामिनी हैवर गैवर बहु बिधि दानु दातारा ॥
अंन बसत्र भूमि बहु अरपे नह मिलीऐ हरि दुआरा ॥
पूजा अरचा बंदन डंडउत खटु करमा रतु रहता ॥
हउ हउ करत बंधन महि परिआ नह मिलीऐ इह जुगता ॥
जोग सिध आसण चउरासीह ए भी करि करि रहिआ ॥
वडी आरजा फिरि फिरि जनमै हरि सिउ संगु न गहिआ ॥
राज लीला राजन की रचना करिआ हुकमु अफारा ॥
सेज सोहनी चंदनु चोआ नरक घोर का दुआरा ॥
हरि कीरति साध संगति है सिरि करमन कै करमा ॥
कहु नानक तिसु भइओ परापति जिसु पुरब लिखे का लहना ॥
तेरो सेवकु इह रंगि माता ॥
भइओ कृपालु दीन दुख भंजनु हरि हरि कीरतनि इहु मनु राता ॥
(आ.ग्र.म. 5, पृ. 641-642)

शब्द पढ़ लेने के बाद, हुज़ूर महाराजजी ने फ़रमाया कि इस पद में गुरु अर्जनदेव इन सब तरीक़ों और साधनों का वर्णन करते हैं जो प्राचीन काल से मन को बस में करने के लिये अपनाये जाते रहे हैं, और साथ ही उनके परिणामों का भी ज़िक्र करते हैं। एक-एक करके वे इन साधनों की निरर्थकता पर प्रकाश डालते हैं। अन्त में गुरु साहिब कहते हैं कि इनमें से किसी भी साधन के द्वारा न मन पर क़ाबू पाया जा सकता है और न वासनाओं को दूर किया जा सकता है।

राय साहब रणजीत गोपाल बोले, "मैं पिछले सात-आठ साल से गीता के दूसरे अध्याय का पाठ करता आ रहा हूँ। लेकिन मेरी आँखें आज खुली हैं और मुझे अपनी बेवक़ूफ़ी पर ताज्जुब हो रहा है, क्योंकि मैं मान बैठा था कि इस पाठ से ही मुझे मुक्ति मिल जायेगी।"

सिक्ख वकील साहब ने कहा, "हुज़ूर ! मैं रोज़ सुबह 'जपुजी साहिब' का पाठ करता हूँ। क्या इससे मुझे कुछ लाभ नहीं होगा ?"

हुज़ूर ने पूछा, "आप कितने दिनों से यह पाठ करते आ रहे हैं ?"

वकील साहब ने जवाब दिया, "14 साल की उम्र से यानी पिछले 11 साल से।"

महाराजजी ने कहा, "यह तो बहुत अच्छी बात है। अपनी भक्ति और प्यार के लिये आप बधाई के पात्र हैं। लेकिन, आइये अब इसके गुणों पर शान्तिपूर्वक स्पष्ट रूप से विचार करें। सब धर्म-ग्रन्थों का, चाहे वे अपने धर्म के हों या दूसरे धर्मों के, समान आध्यात्मिक लक्ष्य और महत्त्व है। यहाँ हम किसी ख़ास धर्म या व्यक्ति की बात नहीं कर रहे हैं। मान लें, एक ईसाई रोज़ाना एक घण्टे बाइबिल पढ़ता है या एक बौद्ध प्रातःकाल बड़े प्रेम से अपने धर्म-ग्रन्थ का पाठ करता है। लेकिन इन ग्रन्थों को पढ़ने का उद्देश्य क्या है ? यही कि इनमें हमारे लिये जो बातें लिखी हैं, जो हिदायतें दी गई हैं, हम उन पर अमल करें और उनका फ़ायदा उठायें। अगर आप किसी ग्रन्थ को केवल एक बार ही पढ़ते हैं, लेकिन उसे अच्छी तरह समझ लेते हैं और उसकी हिदायतों का पालन शुरू कर देते है, तो उसे पढ़ने का असली उद्देश्य पूरा हो जाता है। परन्तु अगर आप किसी ग्रन्थ को बिना समझे-बूझे, बार-बार तोते की तरह रटते जायेंगे, और उसमें जो लिखा है उस पर अमल न करेंगे तो उससे कोई लाभ नहीं होगा। ऐसा पढ़ना तो सिर्फ़ रूढ़ि या रस्म को निभाना होगा।"

"लेकिन करते तो सब लोग यही हैं", वकील साहब बोल उठे।

हुज़ूर ने फ़रमाया, "यही तो आश्चर्य की बात है। यह तो वैसी ही बात हुई जैसे पेट का दर्द दूर करने के लिये डॉक्टर के लिखे नुसखे को बार-बार पढ़ते जाना। लेकिन दर्द उस समय तक नहीं जायेगा जब तक आप उस नुसख़े के अनुसार दवा बना कर उसे डॉक्टर की हिदायत के अनुसार न लेंगे। एक आदमी कश्मीर जाने के लिये वहाँ की गाइड-बुक या मार्गदर्शिका ख़रीद लेता है और केवल उसको पढ़ता ही रहता है, जाने के नाम पर एक क़दम भी नहीं उठाता, तो क्या वह कश्मीर पहुँच जायेगा ?"

"तो क्या फिर धर्म-ग्रन्थों को पढ़ने का कुछ फ़ायदा ही नहीं ? वकील साहब ने पूछा।

हुज़ूर ने जवाब दिया, "नहीं, कुछ फ़ायदा तो है ही। इनको पढ़ने से मन का झुकाव भक्ति की ओर होता है और परमात्मा से मिलने की

इच्छा पैदा होती है। लेकिन हमें यहीं नहीं रुक जाना चाहिये। ग्रन्थ हमें मालिक से मिलने का रास्ता बतलाते हैं, मार्ग में आने वाली रुकावटों का वर्णन करते हैं और उन्हें दूर करने के उपाय भी बतलाते हैं। ग्रन्थों को रचने वाले महात्मा यह भी बतलाते हैं कि मन को वश में करने के लिये उन्होंने क्या उपाय किये। जैसे अभी जो आपने शब्द सुना है उसमें गुरु अर्जनदेव अपने अनुभवों का ज़िक्र करते हैं। अगर हम उनके अनुभवों से लाभ उठाने और उन पर अमल करने के बजाय केवल इस पद का पाठ ही करते रहें तो मेरे ख़याल से परमात्मा की प्राप्ति में कोई प्रगति न कर सकेंगे।"

इस पर राय साहब रणजीत गोपाल बोले, "गुरु नानक ख़ुद फ़रमाते हैं कि कोई चाहे महीनों, सालों और सारी ज़िन्दगी ही क्यों न पाठ करता रहे केवल एक वस्तु (सुरत को शब्द में जोड़ना) ही लेखे में आती है, बाक़ी सब बेकार है।"[1]

हुज़ूर महाराजजी ने कहा, "बात तो यह है कि धर्म-ग्रन्थों का केवल पाठ ही कोई ख़ास महत्त्व नहीं रखता। गुरु अर्जनदेव फ़रमाते हैं कि जिज्ञासुओं ने बड़े ध्यानपूर्वक वेदों को पढ़ा, कुंडलिनी योग साधा, उसके साथ की अन्य क्रियाएँ (धोती, नेती, वस्ति और न्यौली आदि) भी कीं लेकिन इनसे काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार और सांसारिक पदार्थों का मोह नहीं गया। अगर धर्म-ग्रन्थों का पाठ ही मोक्ष दिला सकता था तो रावण को मोक्ष क्यों नहीं मिला ? वह तो वेदों का बड़ा भारी टीकाकार पण्डित था। आप सब जानते हैं कि उसका चरित्र कैसा था। अब भी हर साल राम-लीला में उसका पुतला जलाया जाता है। लोग समझते हैं कि धर्म-ग्रन्थों को पढ़ने और तीर्थों व नदियों में स्नान करने से उनके पाप धुल जाते हैं। परन्तु यदि वे गहराई से विचार करें तो उन्हें मालूम होगा कि पापों के धुलने के बजाय पापों के समूह में एक पाप और जुड़ गया है; ख़ुद को दूसरों से ज़्यादा विद्वान, पवित्र और धर्मात्मा समझने के अभिमान और अंहकार का पाप।

"लेकिन गुरु अर्जनदेव सिर्फ़ इतना ही कह कर चुप नहीं रहे। वे आगे कहते हैं कि लोगों ने मौन भी धारण किया। वे बस्ती छोड़ कर

---

1. पड़ीअहि जेते बरस बरस पड़ीअहि जेते मास ॥
पड़ीऐ जेती आरजा पड़ीअहि जेते सास ॥
नानक लेखै इक गल होरु हउमै झखणा झाख ॥ (आ.ग्र.म.1, पृ. 467)

जंगलों में रहने लगे। वहाँ दिगम्बर होकर घूमते रहे, अपना सब-कुछ त्याग दिया। करपात्री बन गये (हाथों में ही खाते-पीते रहे, बर्तन का प्रयोग नहीं किया।) फलों-फूलों पर ही गुज़ारा किया। सब तीर्थों की यात्रा की। बर्फ़ीले पहाड़ों पर गये। पवित्र नदियों में स्नान किया। काशी में जाकर करवत के नीचे अपने दो टुकड़े भी करवा लिये। लेकिन इन सबसे भी उनकी अन्दर की आँखें न खुलीं। काशी में एक बड़े मन्दिर में एक आरा (करवत) था और यह माना जाता था कि उससे अपने आप को चिरवाने से मनुष्य जिस इच्छा को लेकर अपनी बलि देता था वह पूर्ण होती थी।"

"क्या लोगों ने आरे से अपने दो टुकड़े करवाये ? हे ईश्वर! कितनी निर्दयता है", वकील साहब हैरानी के साथ बोल उठे।

"और कितनी बड़ी नासमझी ", सरदार केसरासिंह बोले।

हुज़ूर ने फ़रमाया, "मुक्ति को पाने के लिये लोग बेशुमार तकलीफ़ें बरदाश्त करते हैं। पर इन सबका नतीजा क्या होता है, यह आप खुद ही देख सकते हैं।"

नौजवान वकील ने पूछा, "लेकिन हुज़ूर, नेक नीयत से की गई इन तपस्याओं का कुछ फल तो होता ही होगा ?"

हुज़ूर महाराजजी ने उत्तर दिया। "बेशक, इन तपस्याओं के फलस्वरूप वह किसी धनी परिवार में जन्म पाता है, राजा बनता है या कोई बहुत बड़ा नेता अथवा अमीर व्यापारी बनता है। हो सकता है कि वह युगों तक स्वर्ग के सुख भोगता रहे। लेकिन परमात्मा की प्राप्ति इन साधनों से नहीं होती। गुरु अर्जनदेव यहाँ उन सब साधनों और काया-क्लेशों का वर्णन करते हैं जो लोगों ने मन को बस में लाने के लिये किये। और अन्त में कहते हैं कि इन सबसे उन्हें कोई सहायता न मिली।"

सरदार केसरासिंह ने फिर पूछा, "मन को वश में करने के लिये गुरु साहिब खुद कौन-से उपाय बताते हैं ?"

हुज़ूर ने जवाब में फ़रमाया, "वे कहते हैं कि जब इन सब साधनों से, जो आम तौर पर परमात्मा को पाने के लिये किये जाते हैं, वे परमात्मा को न पा सके तो वे गुरु के चरणों पर गिर पड़े और सतगुरु ने उनको अनहद शब्द, हरि-कीर्तन या दिव्य-धुन का मार्ग दिया। यही सब सन्तों का मार्ग है। हरएक देश के सन्तों ने हर युग में इसी मार्ग

को अपनाया है। मुसलमान सन्त इसे 'निदा-ए-आसमानी' या 'सुलतान-उल-अज़कार' कहते हैं। प्राचीन ऋषियों ने इसे आकाशवाणी कहा है। ईसाई महात्मा इसे 'वर्ड' या 'लोगॉस' कहते हैं। यह ऐसी मधुर धुन है कि आत्मा इसे एक बार सुन लेती है तो उसका सब कीट व मैल उतर जाता है।"

"महाराजजी, क्या कोई ऐसी ख़ास निशानी है जिससे हम सन्तों को पहचान सकें ?"

"हाँ, ऐसी पहचान है ज़रूर", हुज़ूर ने जवाब दिया, "लेकिन एक पहुँची हुई आत्मा ही उन्हें जान सकती है। एक 'क ख ग' की श्रेणी में पढ़ने वाला बच्चा किसी कॉलेज के प्रिंसीपल के ज्ञान की, जो कि एम.ए. या पी-एच. डी. है, थाह नहीं लगा सकता और न ही उसे समझ सकता है।"

सरदार केसरासिंह ने कहा, "श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में गुरु को परमात्मा का स्वरूप ही माना गया है और उनके प्रति वैसी ही भक्ति और वही आदर प्रकट किया गया है। लेकिन गुरु गोबिन्दसिंह जी फ़रमाते हैं, 'जो कोई मुझे परमात्मा कहेगा वह सीधा नरक में जायेगा। मैं तो परमात्मा का एक बहुत अदना या तुच्छ सेवक हूँ और इस संसार के नाटक देखने चला आया हूँ।' तो श्री गुरु ग्रन्थ साहिब और गुरु गोबिन्दसिंह साहिब की वाणियों में यह अन्तर क्यों है ?"

"किसी सन्त ने अपने बारे में कभी नहीं कहा कि वह कुल मालिक है।" हुज़ूर ने उत्तर दिया, "उन्होंने हमेशा अपने आप को परमात्मा का दास या सेवक ही कहा है। असल में वे तो सच्ची नम्रता की मूर्ति होते हैं और नम्रतावश ही ऐसा कहते हैं। उनके इन कथनों से उनकी शान और महिमा ज़रा भी नहीं घटती। गुरु नानक कहते हैं, 'कहु नानक हम नीच करमा।' तो क्या हमें उनके शब्दों का अर्थ ज्यों का त्यों ले लेना चाहिये ? पलटू साहिब फ़रमाते हैं, 'जीवन-भर मैंने पाप ही पाप किये हैं।' लेकिन ऐसा नहीं है। इन कथनों से उनकी नम्रता और दीनता प्रकट होती है। असल सच्ची नम्रता तो केवल सन्तों में ही मिलती है। दुनियादार लोग तो नम्रता और दीनता का अर्थ ही नहीं समझते। हालाँकि सन्त अपने आप को 'दास' कहते हैं, पर जानने वाले जानते हैं कि वे 'कुल मालिक' ही होते हैं।"

सरदार केसरासिंह ने कहा, "हुज़ूर, जब हम डेरा पहुँचे तो एक आदमी कबीर साहिब का पद गा रहा था कि मेरा गुरु मुझे परमात्मा से भी ज़्यादा प्यारा है।"

राय साहब रणजीत गोपाल ने बतलाया, "हुज़ूर, यह तो कबीर साहिब का एक मशहूर दोहा था :

गुरु गोबिंद दोऊ खड़े, का के लागौं पाँय।
बलिहारी गुरु आपने, जिन गोबिंद दियो बताय।

(कबीर साखी-संग्रह, पृ. २)

हुज़ूर ने कहा, "यह तो सेवक का अपने गुरु के प्रति कृतज्ञता और प्रेम प्रकट करने का तरीक़ा है।"

"क्या परमात्मा के लिये मनुष्य के रूप में अवतार लेना सम्भव है ?" सरदार केसरासिंह ने पूछा।

हुज़ूर महाराजजी ने फ़रमाया, "इसमें असम्भव क्या है ? जब भी परमात्मा इस संसार में आता है, और वह आता ही है, तो हमेशा मनुष्य के रूप में ही आता है। अगर वह फ़रिश्ते या देवी-देवता के रूप में आये तो न हम उसे देख सकेंगे और न ही वह हमसे बातें कर सकेगा। गाय, पशु, पक्षी आदि तो हर तरह से हमसे नीचे हैं। वे हमें उपदेश नहीं दे सकते। इसलिये, मनुष्य का रूप धारण करके ही वह इस संसार में आकर मनुष्य से बात कर सकता है, उसे समझा सकता है। केवल मनुष्य ही मनुष्य को ज्ञान दे सकता है। जब भी ज़रूरत पड़ी, परमात्मा हर देश, हर काल में मनुष्य के रूप में प्रकट होता रहा है और हमेशा होता रहेगा।"

सरदार केसरासिंह ने कहा, "सन्तों को पहचानने के लिये कुछ लक्षण या चिह्न तो होने चाहियें।"

हुज़ूर हँसे और बोले, "नहीं, यह ज़रूरी नहीं है। जिन जीवों के लिये वे आते हैं, वे जीव आसानी से उन्हें पहचान लेते हैं।"

"तो परमात्मा ने अपने आप को मनुष्य की आँखों से छिपा क्यों रखा है ?" सरदार केसरासिंह ने फिर पूछा।

हुज़ूर महाराजजी ने मुसकराते हुए फ़रमाया, "परमात्मा कभी उस मनुष्य से छिपा नहीं है जो 'असली माने में मनुष्य' है। लेकिन क्या हम वास्तव में 'मनुष्य' हैं ? हम तो एक बेहतर दर्जे के दो टाँग वाले जानवर

हैं जिनमें अन्य जानवरों की बनिस्बत थोड़ी-सी बुद्धि अधिक होती है। असली मनुष्य तो वह है जिसने अपनी मूल सत्ता को वापस पा लिया है, जिसने उस दौलत को खोज लिया है जिसे कि मालिक ने उसी के लिये उसके शरीर में सँभाल कर रखा है। हम तो अपने शरीर और मन के बल पर ही नाचते रहते हैं। हमारे अन्दर ऐसी चेतन सत्ता और आन्तरिक शक्तियाँ हैं जो सोई पड़ी हैं। जब उन्हें जगा लिया जायेगा तभी मनुष्य, वास्तव में पूर्ण मनुष्य बनेगा। पूर्ण मनुष्य वही है जो इस भू-मण्डल से लेकर चेतन मण्डलों तक सब-कुछ देखता है। परमात्मा उससे छिपा नहीं है। मनुष्य जितना अधिक इस आन्तरिक चेतनता को जगायेगा उतना ही अधिक वह सच्चा मनुष्य बनता चला जायेगा।"

सरदार केसरासिंह बोले, "यह तो निर्विवाद और स्पष्ट मालूम देता है।"

"हमारे लिये तो यह सब-कुछ एक पहेली है", पण्डित केवलकृष्ण ने कहा।

इस पर महाराजजी बोले, "हाँ, लेकिन ऐसी पहेली जिसका हल निकाला जा सकता है। असलियत तो यह है कि हमने कभी इस पहेली को हल करने की कोशिश ही नहीं की।"

"परमात्मा तो खुद पवित्रता और अच्छाई का ख़ज़ाना है। फिर महाराजजी, उसकी सृष्टि में पाप कैसे पैदा हुआ।?"

राय रणजीत गोपाल ने कहा, "बुराई नाम की चीज़ का अस्तित्व मनुष्य के अपने दृष्टिकोण से ही है। पूर्णता के दृष्टिकोण से देखें तो अपूर्णता नाम की कोई वस्तु है ही नहीं, बुराई है ही नहीं। परन्तु तुलनात्मक दृष्टि से देखें तो बुराई और पाप एक दर्दनाक सच्चाई है। लेकिन विश्व के संचालन में बुराई का भी एक महत्त्वपूर्ण योग है।"

"हुज़ूर बुराई और पाप की उत्पत्ति कहाँ से है ?" केवलकृष्ण ने प्रश्न किया।

हुज़ूर ने जवाब दिया, "हर चीज़ परमात्मा से ही पैदा हुई है।"

"क्या पाप भी ?"

"हाँ ! छाया, परछाईं और रात का अस्तित्व किससे है ? सूरज से।"

पण्डित केवलकृष्ण ने बड़ी उत्सुकता से पूछा, "क्या वास्तव में 'शैतान' या जिसे सन्तजन 'काल' कहते हैं, होता है ?"

"निस्सन्देह होता है", हुज़ूर ने कहा

"परमात्मा ने उसे क्यों बनाया ?"

हुज़ूर ने जवाब दिया, "हमारी भलाई के लिये। इसका होना बहुत ज़रूरी था। साँप का ज़हर दूसरों के लिये ज़हर है, उसके ख़ुद के लिये नहीं।"

नौजवान वकील ने पूछा, "हुज़ूर स्त्री, के आकर्षण और प्रेम से कैसे बचा जाये ?"

हुज़ूर महाराजजी ने जवाब दिया, "प्रेम और काम-वासना में आकाश-पाताल का अन्तर है। प्यार ऊपर की ओर उठाता है और काम नीचे की ओर घसीटता है। प्रेम आत्मा का स्वभाव है; वासना इन्द्रियों का। प्रेम वह अलौकिक भाव है जो मालिक की मेहर से ही प्रकट होता है। वासना गन्दी गलियों की गणिका है जिससे हर नेक और परमार्थी पुरुष को बचना चाहिये। हम इन बातों की असलियत को नहीं समझ पाते हैं। अगर हम रोज़ाना इस बात पर विचार करने में समय दें, तो हम वासना के मोहपाश से बच सकेंगे।"

राय साहब रणजीत गोपाल ने कहा, "हुज़ूर, मौलाना रूम फ़रमाते हैं कि जिसे दुनिया इश्क़ कहती है वह बहुत ज़्यादा गेहूँ खाने की गर्मी से पैदा होता है।"

हुज़ूर महाराजजी ने फ़रमाया, "हमारी आँखों पर मोह और वासना का पर्दा पड़ा हुआ है। वे उस अनमोल हीरे, उस कोहीनूर को नहीं देख सकतीं जो इस देह-रूपी तिजोरी में बन्द है। अगर हम मिट्टी और चमड़े से बनी इस देह से ऊपर उठ कर देखने की कोशिश करेंगे तो हमें परमात्मा की अलौकिक पुत्री आत्मा दिखाई देगी, जो इसी काया-रूपी नगरी में रहती है। कितनी शर्म की बात है कि देह-रूपी मैला पर्दा जो चिथड़ों से बना हुआ है मनुष्य को इतना अन्धा बना देता है कि उसे अपने अन्दर छिपे हुए तेजस्वी सूर्य की चमक दिखाई ही नहीं देती।"

सरदार केसरासिंह बोले, "लकड़ी की चौखट (फ़्रेम) हमारा ध्यान खींच लेती है और हम उसमें जड़ी अद्‌भुत तस्वीर की अलौकिक सुन्दरता को समझ नहीं पाते। हम केवल काग़ज़ की पुड़िया की ओर ही निहारते रहते हैं, उस रत्न को नहीं जिसे कि जौहरी ने उस पुड़िया में लपेट रखा है।"

"महाराजजी, परमात्मा ने इस संसार की रचना क्यों की ?" पण्डित केवलकृष्ण ने पूछा।

"हमारी भलाई के लिये", हुज़ूर ने जवाब दिया।

"शास्त्रों का कथन है कि यह सब उसकी लीला है, तमाशा है", पण्डितजी ने फिर कहा।

महाराजजी ने जवाब दिया, "हर बात में कोई मक़्सद होता है। परमात्मा कोई काम अकारण नहीं करता।"

इसी समय रावलपिण्डी और पेशावर की ओर के कुछ सत्संगी आये, हुज़ूर के चरणों में माथा टेका और बैठ गये। हुज़ूर ने हरएक से उसके परिवार का कुशल-मंगल पूछा। उसके बाद उन्होंने हुज़ूर को रेलगाड़ी में हुई एक नौजवान की दुःखद मृत्यु का हाल सुनाया। 'जल्लो' स्टेशन में एक नवविवाहित दम्पति गाड़ी में चढ़े और बुटारी रेलवे स्टेशन पर पति अपनी पत्नी के लिये कुछ मिठाई और फल लेने के लिये उतरा। ठेले वाले के पास पाँच रुपये की रेज़गारी नहीं थी। इसलिये वह टिकट-घर रेज़गारी लेने के लिये गया। इसी बीच गाड़ी चल पड़ी। नौजवान ने हाथ में फल लिये हुए चलती ट्रेन में चढ़ने की कोशिश की तो उसका पैर फिसल गया, वह गाड़ी के नीचे आ गया और उसके शरीर के टुकड़े-टुकड़े हो गये। बेचारी लड़की की अभी-अभी शादी हुई थी और वह पहली बार ससुराल जा रही थी। वह पर्दा-नशीन थी, उसे यह भी मालूम नहीं था कि उसे कौन-से गाँव जाना है। केवल वह इतना ही बता सकी कि पहली यात्रा में उसने लुधियाना पर एक दूसरे स्टेशन के लिये गाड़ी बदली थी, जहाँ से उसके पति का गाँव पाँच मील था।

"हे भगवान! इस दुनिया में कैसा-कैसा दुःख दर्द है!" पण्डित केवलकृष्ण बोल उठे।

हुज़ूर महाराजजी ने कहा, "मुसलमान सन्तों ने इस संसार को 'दर-अल-मुसाइब' मुसीबतों का घर कहा है। क्या इस संसार में कभी किसी ने सच्चा सुख पाया है ?"

सरदार केसरासिंह ने इस बात का विरोध किया, "हुज़ूर, हम ऐसा नहीं कह सकते कि इस संसार में दुःख ही दुःख हैं। यहाँ सुख और दुःख दोनों इकट्ठे मिलते हैं। कुछ लोग यहाँ वास्तव में बहुत सुखी हैं।"

हुज़ूर ने उत्तर दिया, "आप इन्द्रियों के क्षणभंगुर सुख को ही सच्चा सुख समझ बैठे हैं। मौत, बीमारी, बुढ़ापा, अनिश्चित भविष्य या दुर्घटनाएँ आदि के डर हमेशा मनुष्य के सिर पर झूलते रहते हैं। कहीं बेटे की मौत का डर खाये जा रहा है, कहीं खुद पर या पत्नी पर बीमारी हमला कर रही है, तो कहीं व्यापार में घाटे का डर बना हुआ है। इन सबके होते हुए आप अपने आप को सुखी कैसे कह सकते हैं ? अस्पतालों में जाकर देखिये, लोग कैसे तड़प रहे हैं। आप रोज़ अदालतों में देखते हैं, लोग किस बुरी तरह से लड़ रहे हैं। फ़ौजदारी मुक़दमे चल रहे हैं। जेल आदि सख़्त सज़ायें हो रही हैं। ग़रीब क़र्ज़दारों के ख़िलाफ़ डिक्रियाँ (decree) हो रही हैं, उनकी जायदाद नीलाम की जाती है और उनके बीवी-बच्चों को बे-घरबार कर दिया जाता है। अगर आप इन सब बातों को नज़रअन्दाज़ भी कर दें, तो भी इस बात को भुला नहीं सकते कि हर इनसान को एक दिन ज़रूर मरना है। मनुष्य को सच्चा और स्थायी सुख तभी मिल सकता है जब वह अपना रुख परमात्मा की ओर करे। वही सच्चे सुख का स्रोत है। जिस पदार्थ से इस संसार की रचना हुई है, नाश और मौत उसका स्वभाव है। फिर आप यहाँ स्थायी सुख की आशा कैसे कर सकते हैं ? आप दुनिया के सुखी से सुखी आदमी से भी मिलें, उसके दिल में भी आप एक निराशा, उदासी, अकेलापन या खिन्नता की भावना पायेंगे। यह बेचैनी आत्मा के अपने मूल — परमात्मा — से बिछुड़ने के कारण है, यह बूँद की वापस समुद्र में समा जाने की तड़प है।"

सरदार केसरासिंह बोले, "महाराजजी, मैं जानता हूँ कि सिर्फ़ बहस करने या बाल की खाल निकालने से कोई फ़ायदा नहीं। लेकिन फिर भी मेरे मन में यह सवाल बार-बार उठता है कि परमात्मा ने सृष्टि की रचना क्यों की ? उसने सचखण्ड से हमें नीचे क्यों भेजा ? उसने इस संसार में इतने दुःख क्यों पैदा कर रखे हैं ?"

हुज़ूर ने फ़रमाया, "मैं डॉक्टर जॉनसन से आपको एक कहानी सुनाने के लिये कहूँगा, जो कुछ दिन पहले मैंने उन्हें सुनायी थी। यह शायद आपको पसन्द आयेगी।"

डॉ. जॉनसन एक अमेरिकन सत्संगी थे जो आकर डेरा में बस गये थे। बातचीत के समय वे भी धीरे से आकर एक कोने में बैठ गये थे। वे मुसकराये और बोले, "यह बड़ी मनोरंजक कहानी है और इस शंका का

समाधान भी करती है। मैं शायद इसे इतने अच्छे ढंग से न सुना सकूँ जैसे कि महाराजजी ने सुनाया था। फिर भी कोशिश करूँगा। कहानी एक अन्धे के बारे में है जो एक गहरे कुएँ में गिर पड़ा था। उस रास्ते से एक मनुष्य निकला। उसने अन्धे आदमी की हालत पर दया करके उसे कुएँ से निकालना चाहा। उसने एक लम्बा रस्सा कुएँ में डाला और अन्धे से कहा कि इसे पकड़ लो ताकि मैं तुम्हें खींच कर निकाल लूँ। अन्धे आदमी ने रस्सा पकड़ने के बदले उस मनुष्य से व्यर्थ के सवाल-जवाब करना शुरू किये कि इतने गहरे कुएँ में मैं कैसे गिरा ? आप मुझे क्यों निकालना चाहते हैं ? क्या इसमें आपका कोई निजी स्वार्थ है ? लोग कुएँ क्यों बनाते हैं ? सबसे पहला कुआँ किसने बनाया ? इसका क्या भरोसा कि मैं फिर से किसी कुएँ में नहीं गिर पड़ूँगा ? वग़ैरह वग़ैरह।

"उसके बेवक़ूफ़ी के सवालों से उस दयालु मनुष्य का धैर्य टूट-सा गया। फिर भी उसने बड़ी शान्ति से जवाब दिया कि आपका भला इसी में है कि आप इस समय तो रस्से को पकड़ कर ऊपर आ जायें और उसके बाद आप आराम से चाहे जितने समय तक इन सब हालात पर विचार करते रहें। लेकिन उस अन्धे आदमी ने फिर वे ही बातें छेड़ दीं और रस्से वाले से पूछा कि यह क्या बात है कि मैं तो कुएँ में गिरा, तुम नहीं गिरे ?

"उसने कहा कि भाई, मैं काम-काजी आदमी हूँ और मुझे दूसरे बहुत-से ज़रूरी काम करने हैं। इसलिये आप जल्दी से रस्सा पकड़ कर बाहर नहीं निकलेंगे तो मुझे आपको यहीं छोड़ कर चले जाना पड़ेगा।

"उस अन्धे आदमी ने कहा, 'अच्छी बात है। लेकिन आप पहले यह तो बताइये कि यह कुआँ कितना गहरा है और यह कब और क्यों बना'?

"उस भले आदमी ने कहा 'यह कुआँ इतना गहरा है कि तुम्हारे जैसे अनेकों की यह क़ब्र बना सकता है।' इतना कह कर वह चला गया।

अन्धे आदमी की इस बेवक़ूफ़ी पर सब लोग हँस पड़े। इस पर हुज़ूर ने कहा, "क्या हम सब ऐसा ही नहीं कर रहे हैं ? वास्तव में हमारी बुद्धि और तर्क हमारे छुटकारे के मार्ग में बहुत बड़े रोड़े बन जाते हैं।"

"हुज़ूर, यह बिलकुल सही है। मगर एक सवाल हमेशा मुझे परेशान करता है। क्या सब-कुछ पहले से ही सुनिश्चित है, या हम कुछ अपनी मर्ज़ी से भी घटा-बढ़ा सकते हैं ? क्या हमारी अपनी स्वतन्त्र इच्छा भी होती है ?" पण्डित केवलकृष्ण ने पूछा।

हुज़ूर ने फ़रमाया, "न तो पहले से ही सब-कुछ तय है और न हम हरएक बात में अपनी मर्ज़ी चला सकते हैं। एक समय था जब हमारी अपनी स्वतन्त्र इच्छा थी, हम जैसा चाहते वैसा कर्म कर सकते थे। हमने कर्म किये और उन कर्मों का एक नतीजा निकला और वह 'नतीजा' ही हमारा प्रारब्ध बन गया। हम उससे बच न सके। हमने फिर कर्म किया। पर इस बार हमारी स्वतन्त्र इच्छा पर पुराने कर्मों का असर पड़ा और हमारे कर्म हमारे पिछले कर्मों के फल के अनुसार हुए। इन कर्मों से फिर भाग्य बना और उसके फलस्वरूप हमारी इच्छानुसार कर्म करने की स्वतन्त्रता कम हो गयी। हम लाखों वर्षों से कर्म करके उनके फलों का अम्बार लगाते जा रहे हैं, कर्मों के फल और प्रतिफल की यह कड़ी हमारा अमिट प्रारब्ध बन गयी है। हमारा शरीर, मन, बुद्धि आदि इनके द्वारा बनते हैं और ये हमें एक ख़ास मार्ग पर चलने को मजबूर करते हैं। हमारे पिछले कर्मों से हमारी आज की ज़िन्दगी बनती है और हमारे आज के कर्मों से आगे की ज़िन्दगी बनेगी। जो हमने पिछले जन्मों में बोया है उसे आज काट रहे हैं और जो हम आज बो रहे हैं उसे भविष्य में काटेंगे।

"इस समय हम दो तरह के कर्म कर रहे हैं : (1) नये कर्म जिन्हें क्रियमान कर्म कहते हैं और (2) प्रारब्ध जो कि पिछले कर्मों का फल है। दोनों कर्म साथ-साथ चलते हैं। अब आप खुद ही फ़ैसला कर सकते हैं कि हम कहाँ तक स्वतन्त्र हैं और कहाँ तक भाग्य की ज़ंजीर से बँधे हुए हैं। जिसे हम भाग्य कहते हैं वह हमारे पिछले कर्मों के फल के सिवाय और कुछ नहीं है। हमने ही यह भाग्य बनाया है और हम ही अपना आगे का भाग्य बनाने में निरन्तर लगे हुए हैं।

"हम जो भी कर्म करते हैं किसी इच्छा या कामना के वशीभूत होकर करते हैं। ये इच्छाएँ ही हमारे अगले जन्म की बेड़ियाँ बन जाती हैं। इसलिये इनसे मुक्ति या छुटकारे का केवल एक ही रास्ता है कि हम इच्छा रहित (निष्काम) कर्म करें। हम अनासक्त भाव से कर्म करें और उनके फल के बारे में कोई इच्छा न रखें। तन, मन, धन, स्त्री, बच्चे आदि सबको परमात्मा की ओर से सौंपी गयी धरोहर या अमानत समझें और अपने आप को उनका अमानतदार मान कर कार्य करें। यानी आप खुद को उस मालिक का एजेण्ट समझ कर कर्म करें। एजेण्ट के सब कार्यों की ज़िम्मेदारी उसके मालिक की होती है। एजेण्ट किसी

नफ़े-नुक़सान का भागी नहीं होता। तकलीफ़ तो तब होती है जब हम अमानत में ख़यानत करने लगते हैं।"

"लेकिन हुज़ूर, निष्काम कर्म करना तो सतगुरु की दया-मेहर के बिना सम्भव ही नहीं है", राय रणजीत गोपाल के एक सम्बन्धी श्री माथुर ने कहा।

"सतगुरु की दया-मेहर तो क़दम-क़दम पर ज़रूरी है", हुज़ूर ने उत्तर दिया, "लेकिन फ़िक्र न करें। सत्संगी के अन्तर में बोया हुआ नाम का बीज एक न एक दिन ज़रूर उगेगा। संसार की कोई ताक़त उसे नष्ट नहीं कर सकती। सच्चे सतगुरु से नामदान पाया हुआ जीव एक दिन अवश्य सचखण्ड पहुँचेगा।"

"महाराजजी, गुरु का आसरा लेना क्या मनुष्य की कमज़ोरी या बुज़दिली की निशानी नहीं है ? मनुष्य को अपनी मुसीबत का सामना आप ही करना चाहिये, अपनी लड़ाई आप ही लड़नी चाहिये", पण्डित केवलकृष्ण बोले।

एक सरल हँसी से हुज़ूर का चेहरा खिल उठा। उन्होंने कहा, "अपने मन, अपनी बुद्धि और इच्छाओं को किसी दूसरे की इच्छा पर छोड़ देने के लिये तो बड़ी मज़बूती और बहादुरी चाहिये, पण्डितजी ! अगर आप आन्तरिक रूहानी सफ़र अकेले शुरू करना चाहें तो कर सकते हैं। लेकिन, जो अन्तर में आने वाली कठिनाइयों और रुकावटों को जानते हैं, उनकी राय कुछ और ही होगी। क्या हम दुनिया की लड़ाइयों में दूसरों से मदद नहीं माँगते ? बग़ैर मददगार के, बिना रहनुमा के आप अन्दर के सफ़र में एक क़दम भी नहीं उठा सकते। आपको अगर 'गुरु' शब्द पसन्द नहीं तो आप उसे गुरु न कहें। उसे अपना मित्र कह लें, साथी कह लें, चाहें तो दास या सेवक भी कह लें, परन्तु जो कोई भी परमात्मा की खोज में अन्दर जाना चाहेगा, उसे एक मार्गदर्शक की ज़रूरत पड़ेगी ही। और जो अन्दर का सफ़र करना ही नहीं चाहता वह गुरु के बारे में जो चाहे राय बना सकता है। उसके फ़ैसले पर किसी को क्या एतराज़ होगा।"

पण्डित केवलकृष्ण ने पूछा, "महाराजजी, मनुष्य को मौत के लिये क्या-क्या तैयारियाँ करनी चाहियें ?"

महाराजजी ने जवाब दिया, "यह तैयारी तो पूरी ज़िन्दगी का काम है। मनुष्य को ऐसी ज़िन्दगी बितानी चाहिये जिससे मौत का डंक निकल

जाये, ताकि मरते समय वह मौत से डरे नहीं, बल्कि उसे ख़ुशी से गले लगा ले। एक फ़ारसी सन्त कहते हैं :

"क्या तुम्हें अपना जन्म-काल याद है ? उस समय सब ख़ुशियाँ मना रहे थे और तुम रो रहे थे। अब इस तरह से ज़िन्दगी बसर करो कि मौत के वक़्त सब रोवें और तुम ख़ुशी मनाओ।"

पण्डित केवल कृष्ण ने फिर पूछा, "मरते समय 'मृत्यु का आनन्द' लेने के लिये मनुष्य को क्या करना चाहिये ?"

हुज़ूर ने उत्तर दिया, "पण्डितजी, आपने बहुत ही सुन्दर शब्द का प्रयोग किया है। लेकिन वास्तव में जिसने जीवन का सच्चा 'आनन्द' नहीं लिया, वह मौत का सच्चा आनन्द भी नहीं ले सकता। भगवान कृष्ण गीता में कहते हैं, 'अन्त समय को पास आते जान कर जो मनुष्य अपने नौ द्वारों से ध्यान निकाल कर मन की फैली हुई वृत्तियों को आँखों के बीच में एकाग्र करेगा वह परमानन्द को प्राप्त करेगा।'" (गीता 8, 10-13)

राय साहब रणजीत गोपाल ने कहा, "लेकिन हुज़ूर, जब तक कोई ज़िन्दगी-भर इसका अभ्यास न करे क्या मौत के समय यह सम्भव हो सकेगा ?"

हुज़ूर ने समझाया, "मृत्यु का वक़्त इतना तकलीफ़ का होता है कि बड़े-बड़े पैग़म्बर भी उससे घबराते रहे हैं। कबीर साहिब कहते हैं कि मृत्यु के समय इतनी पीड़ा होती है जितनी कि एक साथ दस हज़ार बिच्छुओं के डंक मारने से होती है। अब आप ही सोचिये कि इतने बेहद दर्द के समय कोई व्यक्ति अपने मन को कैसे एकाग्र कर सकता है, अगर उसने जीवन-भर अभ्यास के द्वारा इस एकाग्रता की क्रिया को सिद्ध न कर लिया हो।"

राय रणजीत गोपाल ने शिकायत की कि जब भी वे भजन में बैठते हैं उन्हें नींद बहुत सताती है।

"हाँ राय साहब, अभ्यास की सफलता के मार्ग में तीन रुकावटें हैं", हुज़ूर ने कहा, "निद्रा भी इनमें से एक है। बाक़ी दो हैं आलस्य और प्रमाद। आलस्य सुस्ती को और प्रमाद लापरवाही को कहते हैं।"

"हुज़ूर, इन तीनों ने मेरे ऊपर क़ब्ज़ा कर रखा है।" राय साहब ने शिकायत की।

हुज़ूर महाराजजी ने फिर दोहराया कि निद्रा, सुस्ती और लापरवाही एक अभ्यासी के सबसे ज़बरदस्त शत्रु हैं।

"महाराजजी, इनसे कैसे छुटकारा पाया जाये ?" राय रणजीत गोपाल ने फिर पूछा।

हुज़ूर ने जवाब दिया, "अभ्यास के समय जब नींद या ऊँघ आने लगे तो आप इसका फ़ायदा उठा सकते हैं। भजन में सफलता के लिये आपको क्या करना पड़ता है ? आप अपनी तवज्जह को सब इन्द्रियों से समेट कर आँखों के बीच में इकट्ठा करते हैं। अब सोचिए कि जब आपको नींद आने लगती है तब क्या होता है ? उस समय भी आपकी तवज्जह सब ओर से सिमट कर आँखों के बीच में आती है, लेकिन उस समय उसका झुकाव नीचे की ओर कण्ठ में होता है। अब नींद के द्वारा जो यह सिमटाव होता है उसका आपको फ़ायदा उठाना चाहिये। इस समय आप अपने ध्यान को आँखों के बीच में स्थिर रखें और तीसरे तिल में जाने की कोशिश करें। नींद तभी आती है जब हमारी तवज्जह आँखों से फिसल कर कण्ठ-चक्र में आ जाती है। यही ध्यान जब आँखों से नीचे बाहर निकल आता है तो जाग्रत अवस्था आ जाती है। आप उसे नीचे या बाहर मत जाने दीजिये। अपनी तवज्जह को निद्रा और जाग्रत अवस्था के बीच की हालत में स्थिर रखिये। तब आप देखेंगे कि आपका ध्यान अन्तर में तीसरे तिल की ओर जा रहा है।"

राय साहब ने कहा, "आलस्य तो आत्मा की स्थायी या गहरी नींद के समान है।"

हुज़ूर महाराजजी ने फ़रमाया, "इसका भी इलाज हो सकता है। सुस्ती अक्सर ज़्यादा खाना खाने से आती है। सत्संगी को कम खाना और कम सोना चाहिये। भजन का सबसे बड़ा शत्रु प्रमाद है। इस पर आपको खुद ही क़ाबू पाना है। दृढ़ संकल्प ही सत्संगी को झकझोर कर इस प्रमाद से छुड़ा सकता है। हर रोज़ सुबह अपने इस संकल्प को दोहराते रहिये कि मुझे रोज़ भजन में पूरा समय देना है और इस निश्चय को नियत रूप से निभाइये। अपने मन से कह दीजिये कि जब तक वह रोज़ भजन नहीं कर लेगा तब तक उसे भोजन नहीं मिलेगा। हर सुबह हमें मालिक की दया-मेहर के बदले में यह भजन की भेंट देनी चाहिये।"

राय साहब ने कहा, "मेरा सबसे बड़ा दुश्मन तो नींद है।"

हुज़ूर महाराजजी ने समझाया, "नींद पर दूसरे साधनों से भी क़ाबू पाया जा सकता है। सिमरन को मन से न करके ज़बान से शुरू कर दें, जैसे कि आप किसी से बातें कर रहे हों, पर ज़बान से सिमरन ज़ोर से न हो। ऐसे सिमरन के समय आपकी आवाज़ केवल आपको ही सुनाई दे, किसी दूसरे को नहीं। इससे नींद दूर हो जायेगी। अगर इससे भी काम न चले तो उठ जाइये और हाथ-मुँह धो लीजिये और कुछ देर टहलिये या अपने कमरे में टहलते हुए सिमरन करने लग जाइये। पर इन सब बुराइयों या उपद्रवों की असल दवा तो बराबर अभ्यास करने का हमारा अपना दृढ़ संकल्प ही है।"

हुज़ूर ने आगे फ़रमाया, "इस प्रश्न पर हम एक और तरह से भी विचार करें। मान लें कि आप अपने किसी अफ़सर के सामने खड़े हैं। अगर उसने आपको कोई फ़र्ज़ पूरा न करने पर जवाब-तलब के लिये बुलाया है, तो क्या उस समय आपको नींद आयेगी ? या मान लीजिये किसी मरीज़ से डॉक्टर कह देता है कि आप इस संसार में कुछ घण्टे के ही मेहमान और हैं, तो क्या मरीज़ को नींद आयेगी ? अभ्यास के समय हम इसीलिये सो जाते हैं कि हमें मौत का डर नहीं जो कि एक दिन अवश्य आयेगी। या नींद हमें इसलिये आती है कि हम यह महसूस नहीं करते कि हम मालिक के शहंशाही दरबार में खड़े हैं जो हमारा सबसे बड़ा अफ़सर है। अगर हमें मालिक का ज़रा भी डर या प्यार हो तो नींद नहीं आयेगी। हमेशा याद रखें कि मृत्यु चली आ रही है और हमें बेकार खोये हुए एक-एक साँस का हिसाब देना पड़ेगा।"

"हुज़ूर, सुबह तीन बजे उठना तो बड़ी कठिन बात है", एक सत्संगी ने कहा।

"अगर सुबह जल्दी उठने में आपको दिक़्क़त महसूस होती है तो अपनी सुविधा के अनुसार आप और कोई समय भजन के लिये निकाल सकते हैं पर प्रातःकाल का समय सबसे अच्छा है।"

"महाराजजी, मन को वश में करना तो बहुत मुश्किल है", राय साहब ने अर्ज़ की।

हुज़ूर ने जवाब में फ़रमाया, "मन से 'नहीं' कहने की आदत डालें। पहले उसे आपकी छोटी-छोटी बातों को मानने के लिये मजबूर करें। फिर धीरे-धीरे मन आपकी बड़ी से बड़ी बात को मानने लगेगा।"

"हुज़ूर, मन हम पर इस क़दर हावी हो चुका है कि हमारे लिये उसे अपनी मनमानी करने से रोकना असम्भव है", उन्होंने शिकायत की।

"नहीं ! 'असम्भव' सही लफ़्ज़ नहीं है", हुज़ूर ने कहा, "आप 'कठिन' कह सकते हैं। आप मन पर क़ाबू पाने के लिये इस प्रकार शुरूआत करें : मान लें कि आपको बड़ी ज़ोर की प्यास लगी है और आप पानी या दूसरी कोई चीज़ पीना चाहते हैं। गिलास भर कर आप सामने मेज़ पर रख लें और अपने मन से कहें 'यह पानी तुझे दस मिनट बाद मिलेगा।' आप पानी दस मिनट बाद पीयें। मेरे ख़याल से ऐसा करना तो आपके लिये आसान होगा।"

उस सत्संगी ने स्वीकार किया, "हाँ, यह तो आसानी से किया जा सकता है।"

हुज़ूर ने कहा, "यह मन पर आपकी विजय है। मान लीजिये, आपको मिठाई बहुत पसन्द है और आपने खाने के लिये एक टुकड़ा उठाया है। आप उसे डिब्बे में रख दें और मन से कहें कि यह पाँच मिनट बाद मिलेगा और पाँच मिनट तक उसे न खायें। इस प्रकार मन पर आपकी छोटी-छोटी विजय धीरे-धीरे मन पर पूरी तरह से क़ाबू पाने में मदद देगी। इसके बाद मन को वश में करने की दूसरी कोशिशें भी कर सकते हैं। दिन-भर में कम-से-कम एक ऐसा अच्छा काम ज़रूर करें जो आपके मन को अच्छा न लगता हो। थोड़े दिन के अभ्यास के बाद आपको ऐसे नतीजे देखने को मिलेंगे कि आप ताज्जुब में पड़ जायेंगे।"

उसी सत्संगी ने कहा, "कभी-कभी तो ऐसा होता है कि भजन-सिमरन पर बैठते समय मन भजन-सिमरन करने से साफ़ इनकार कर देता है।"

महाराजजी ने फ़रमाया, "ऐसी हालत में भी मन के साथ कुछ समझौता किया जा सकता है। बजाय दो घण्टे या ज़्यादा बैठने के मन से कहें कि वह एकाध घण्टे ही बैठे। इतना हो जाने पर धीरे-धीरे समय बढ़ाते जायें। कभी-कभी मन को ज़िद्दी बच्चे की तरह मनाना पड़ता है। नियत समय के अतिरिक्त हर रोज़ सोने से पहले सिमरन के लिये आधा घण्टा दें। इसे रोज़ की आदत या नियम बना लें। नियमितता से बहुत सफलता प्राप्त होती है।"

श्री माथुर ने कहा, "हुज़ूर, सांसारिक झगड़े-झंझटों में रहते हुए आध्यात्मिक अभ्यास सफलतापूर्वक करते रहना मुश्किल है।"

इस पर हुज़ूर ने जवाब दिया, "सन्तमत ज़िन्दगी की सच्ची रहनी सिखाने वाला एक अमली स्कूल है। यह संसार की सब ज़िम्मेदारियों को पूरा करते हुए परमात्मा की प्राप्ति का मार्ग है। जब आप संसार के सम्बन्धों को और लेन-देन के असली रूप या भेद को समझ लेते हैं तब उन्हें निभाते हुए रूहानी अभ्यास करना आसान हो जाता है। दो बातें हमेशा याद रखें, पहली बात है मौत; यह न भूलें कि यहाँ हमें हमेशा के लिये नहीं रहना है। आज नहीं तो कल, हमें इस दुनिया को ज़रूर छोड़ना पड़ेगा। ज़िन्दगी-भर पच-पच कर जो कुछ भी हमने जमा किया है, सब यहीं छोड़ जाना होगा। और दूसरी बात, हमारे मनुष्य-जन्म का असली उद्देश्य वह नहीं है जिसमें हम अपना क़ीमती वक़्त बरबाद कर रहे हैं, बल्कि कुछ और ही है। अपनी ज़िन्दगी के असली उद्देश्य पर विचार करने के लिये कुछ समय निकालें। मैं कौन हूँ और क्या हूँ ? कहाँ से आया हूँ ? इस मनुष्य-जीवन का क्या मक़सद है ? इसका अन्त क्या होगा ? इसका सबसे अच्छा उपयोग क्या हो सकता है ?"

श्री माथुर ने कहा, "हुज़ूर, मुझे आपकी दया-मेहर की ज़रूरत है। इसके बिना कुछ भी सम्भव नहीं।"

"सन्त तो दया के स्वरूप ही होते हैं", हुज़ूर ने उत्तर दिया, "उनकी अपार दया, कृपा और करुणा को कोई बिरले ही समझ सकते हैं। अपने धाम की परम शान्ति और आनन्द को छोड़ कर सन्त इस दुःख-दर्द और शोक-सन्ताप से भरे संसार में क्यों आते हैं ? कश्मीर जैसे ठण्डे व सुहावने प्रदेश में रहने वाला व्यक्ति क्या गर्मी के मौसम में तपते हुए रेगिस्तान में आकर बसना पसन्द करेगा ? पर सन्त इस पृथ्वी पर आकर जो कष्ट उठाते हैं उसकी तुलना में यह कश्मीर वाला उदाहरण तो कुछ भी नहीं है। वे अपने परम आनन्द के पवित्र देश को छोड़ कर इस गन्दगी, सन्ताप और झूठ से भरे दुनिया के क़ैदख़ाने में आते हैं। वे केवल हम लोगों के उद्धार के लिये इस जड़ संसार में मनुष्य-देह धारण करके कष्ट उठाने आते हैं। हमें इस अज्ञान, अन्धकार तथा मृत्यु के लोक से उबार कर वापस अपने धाम, अनन्त सुख और सच्चे आनन्द के लोक में ले जाने के लिये ही वे यह हाड़-मांस का मैला चोला धारण करते हैं। वे केवल हमें अपने असली घर का रास्ता ही नहीं दिखाते, बल्कि हमारे कर्मों के भारी बोझ को भी अपने सिर पर ले लेते हैं और हमें रूहानी मण्डलों पर पहुँचाते हैं। सन्त परमात्मा के ही रूप

होते हैं। वे अपनी ऊँची रूहानी ताक़त से हमारी आत्मा को जगाते हैं और हमें रूहानी मण्डलों में जाने योग्य बनाते हैं। ऐसा कौन माई का लाल है जो बिना सतगुरु की मदद के केवल अपनी ही कोशिशों से मन और माया की ज़ंजीरों को तोड़ कर सचखण्ड पहुँच जाये ?"

"वास्तव में सन्त हमारे सबसे बड़े हितैषी हैं", राय रणजीत गोपाल बोले।

हुज़ूर महाराजजी ने आगे फ़रमाया, "सतगुरु का अपने शिष्य के साथ सम्बन्ध असीम प्यार का सम्बन्ध है। संसार के किसी भी सम्बन्ध और किसी भी रिश्ते से उसकी तुलना नहीं की जा सकती है। हमारे रिश्तेदार तो हमें कभी न कभी, आगे या पीछे, छोड़ कर चले ही जाते हैं, पर सतगुरु कभी नहीं छोड़ता। मृत्यु के बाद भी वह हमारे साथ रहता है। इस सम्बन्ध का गुरु नानक ने कितना सुन्दर वर्णन किया है। वे कहते हैं : जैसे एक माँ बच्चे को जन्म देकर उसे बड़े प्यार और हिफ़ाज़त से पालती है, हमेशा घर और बाहर उस पर नज़र रखती है, ठीक समय पर उसे खिलाती-पिलाती है और हर समय उसे प्यार करती रहती है, इसी तरह सतगुरु अपने शिष्य को परमार्थी प्यार में पालते और सँभालते रहते हैं।"

जब हुज़ूर चुप हुए तो पण्डित केवलकृष्ण ने कहा, "महाराजजी, हम आपके दर्शन के लिये यहाँ आने की साल डेढ़ साल से कोशिश करते आ रहे थे पर कुछ न कुछ रुकावट आ ही जाती थी। ऐसा क्यों हुआ ?"

महाराजजी का मुख एक मीठी हँसी से चमक उठा। "आप ठीक कहते हैं", उन्होंने फ़रमाया, "दुनिया में एक ऐसी विरोधी ताक़त भी है जिसे हम 'काल' कहते हैं। यह त्रिलोकी का स्वामी है। यह नहीं चाहता कि कोई भी जीव सतगुरु से मिले। यह जीव को सन्तों से दूर रखने के लिये कुछ भी कर सकता है। काल और सतगुरु के काम एक-दूसरे से बिलकुल भिन्न हैं। सन्त आत्माओं को इस दुनिया के जेलख़ाने से छुड़ाने के लिये आते हैं। काल इस जेलख़ाने का जेलर है। वह नहीं चाहता कि उसकी जेल कभी ख़ाली हो। इसलिये वह हरएक आत्मा को इस क़ैद में रखने के लिये सन्तों से ज़बरदस्त लड़ाई करता है।"

"यह सही मालूम देता है", पण्डित केवलकृष्ण गम्भीरता से बोले।

"हुज़ूर, क्या सतगुरु जिन्हें नाम देते हैं उन सब शिष्यों के पापों का बोझ वे अपने ऊपर ले लेते हैं ?" राय रणजीत गोपाल ने पूछा।

हुज़ूर ने जवाब दिया, "हाँ, जिन्हें वह नाम देता है उन सब सत्संगियों के कर्मों का बोझ ले सकता है।"

"क्या नामदान के समय ही ?"

"हाँ, और बाद में भी यह क्रिया जारी रहती है। राय साहब, आपने मुझे एक ऐसे भेद को खोलने पर मजबूर किया है जो अब तक छिपा हुआ था। सुनिये, एक पूर्ण गुरु का 'नामदान' केवल पवित्र नामों को जपना या दिव्य-ध्वनि को सुनना मात्र ही नहीं है। दीक्षा के समय वे शिष्य की आत्मा की डोर को, जो काल से बँधी हुई होती है, खोल कर सतगुरु के आन्तरिक चरणों में बाँध देते हैं। उसके बाद जैसे-जैसे शिष्य की प्रीति और भक्ति बढ़ती जाती है, वैसे ही सतगुरु उस डोर को और ऊपर के मण्डलों में बाँधते जाते हैं। काल का मुक़ाम या स्थान कंज-कमल (दोनों आँखों के बीच का स्थान) के बायीं ओर है और सतगुरु का दाहिनी ओर होता है। मरते समय नाम-विहीन लोगों की आत्मा अपने आप काल के मुँह में पहुँच जाती है, मानों कोई स्प्रिंग से बँधी खिंची आती हो। अगर नामदान का अर्थ केवल पाँच नामों का बताना ही होता तो यह काम एक दस वर्ष की लड़की भी कर सकती थी। लेकिन काल के मुँह से आत्माओं को निकालना आसान नहीं। काल के फन्दे से जीव का उद्धार केवल सतगुरु ही कर सकते हैं।"

"हुज़ूर, एक सत्संगी को सचखण्ड पहुँचने में कितना समय लगता है ?" राय साहब ने पूछा।

हुज़ूर ने जवाब दिया, "इसके लिये कोई निश्चित नियम नहीं है। यह तो सत्संगी की प्रीति, प्रतीति, भक्ति, लगन और कोशिश पर निर्भर है। इसमें मालिक की दया-मेहर और सत्संगी के अपने कर्मों का भी हाथ होता है। मुझे ऐसे लोगों का भी पता है जिनकी सुरत नाम देते ही अन्दर चली गई और अन्तर में सतगुरु से साक्षात् बातचीत की। दूसरी तरफ़ ऐसे भी लोग हैं जिनका ध्यान दस साल के बाद भी बाहर ही भटकता रहता है। यह तो केवल प्रेम-प्यार का मार्ग है। अगर सत्संगी का अपने गुरु के प्रति प्यार है तो चाहे वह भजन-सिमरन में ज़्यादा समय न दे पाया हो, तो भी गुरु की कृपा उसे ऊपर के मण्डलों में ले जायेगी, बशर्ते कि वह अपने ऊपर बुरे कर्मों का भार नहीं लादे जा रहा

हो। लेकिन यह बात निश्चित है कि नाम की प्राप्ति के बाद कोई भी जीव मनुष्य योनि से नीचे की योनि में जाकर जन्म नहीं लेगा और नाम लिये हुए जीव को सचखण्ड पहुँचने में चार जन्मों से अधिक नहीं लगेंगे। सबसे बड़ी मुश्किल तो यह है कि मनुष्य-जन्म की क़ीमत बहुत कम लोग समझते हैं और नतीजा यह होता है कि लोग अपनी ज़िन्दगी बेकार के कामों में गँवा देते हैं।"

"हुज़ूर, कभी-कभी महीनों तक ऐसा लगता है कि जैसे शब्द कहीं ग़ायब हो गया है", एक सत्संगी ने कहा।

हुज़ूर महाराजजी ने उसे यक़ीन दिलाया, "शब्द कभी बन्द नहीं होता, वह तो हमेशा बिना रुके हमारे अन्दर गूँज रहा है। अगर वह एक पल के लिये भी बन्द हो जाये तो हम ज़िन्दा नहीं रह सकते। शब्द-धुन तो हमारी जीवन-धारा है। यह हमेशा हमारे अन्दर है, पर हमारा ध्यान बाहर दुनिया में इधर-उधर भटकता रहता है, इसलिये हम इसे नहीं सुन पाते। हमारा मन बड़ा चंचल है। यह कभी निश्चल नहीं रहता। जब तालाब का पानी हिलता रहता है तो हम उसमें अपना चेहरा नहीं देख सकते। और अगर पानी में कीचड़ हो, पानी गन्दला हो तो वह एक और रुकावट बन जाता है। जब पानी स्थिर हो जाता है और कीचड़ पैंदे में जम जाता है तो निर्मल पानी में हमारा चेहरा दिखाई देने लग जाता है। इसी प्रकार, जब मल, विक्षेप (मन की चंचलता) और आवरण (माया का पर्दा) रूपी लहरें जो हमारे मन को हमेशा चंचल बनाती रहती हैं, हट जाती हैं और हमारे हृदय का दर्पण निर्मल और पवित्र हो जाता है, तो उसमें आन्तरिक रूहानी सुन्दरता व शोभा झलकें देने लग जाती हैं। मन को निर्मल और पवित्र बनाने का यह काम सिमरन और भजन के द्वारा होता है।"

सत्संगी ने फिर अर्ज़ की, "हुज़ूर, मैं रोज़ लगभग दो घण्टे सिमरन को देता हूँ, पर अन्त में अपने आप को जहाँ का तहाँ ही पाता हूँ। शायद मैं सिमरन सही रीति से नहीं कर रहा हूँ।"

"सिमरन हमेशा मन की पूरी तवज्जह के साथ करना चाहिये, मानों आप एक दुश्मन पर तलवार का वार कर रहे हों। गर्मी के महीनों में आपने पपीहे को स्वाति बूँद के लिये लगातार रट लगाते हुए सुना होगा। बग़ैर रुके वह लगातार रट लगाता रहता है — 'मीहूँ' 'मीहूँ'। बार-बार घण्टों तक वह यही रट लगाये जाता है। पपीहे से आपको सबक़

सीखना चाहिये। उसकी तरह ही आपका सिमरन भी घण्टों तक लगातार बिना रुके चलता रहना चाहिये। अगर सिमरन करते समय मन बाहर भटकता है तो आप उसे ज़बान और होंठों से सिमरन कर-करके थका दीजिये। याद रखिये कि यह मन के साथ आपकी हमेशा चलने वाली एक ज़बरदस्त लड़ाई है। मालिक का प्यार ही इस लड़ाई को जीतने में सहायक होता है।"

सत्संगी ने फिर पूछा, "यही तो समस्या है हुज़ूर ! सतगुरु का प्यार कैसे पैदा किया जाये ?"

हुज़ूर ने उत्तर दिया, "मालिक के लिये प्यार पैदा करने का सबसे अच्छा तरीक़ा यही है कि आप विश्वास और नम्रता के साथ भजन-सिमरन में समय दें, जितने अधिक आप शब्द से जुड़ेंगे उतने ही आप सतगुरु के नज़दीक पहुँचेंगे और उनके लिये आपका प्यार उतना ही बढ़ता जायेगा।"

"महाराजजी, श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में गुरु साहिबान ने प्रेम की बड़ी महिमा गाई है", सरदार केसरासिंह बोले।

"और फिर भी बहुत कम लोग जानते हैं कि प्रेम क्या है", हुज़ूर महाराजजी ने फ़रमाया, "लोग सच्चे प्रेमी के चरणों की धूल तक भी नहीं पहुँचते। एक प्रेमी की गति अन्य सब अभ्यासियों की गति से कहीं ऊँची होती है।"

"हुज़ूर, कृपा करके प्रेम के बारे में कुछ और खोल कर समझाइये।" सरदार केसरासिंह ने निवेदन किया।

हुज़ूर ने फ़रमाया, "प्रेम का मतलब है अपनी हस्ती को बिलकुल मिटा देना । कबीर साहिब कहते हैं :

जब मैं था तब गुरु नहीं, अब गुरु हैं हम नाहिं ।
प्रेम गली अति साँकरी, ता में दो न समाहिं ॥

(कबीर साखी संग्रह, पृ.44)

पलटू साहिब फ़रमाते हैं, 'सीस उतारै हाथ से सहज आसकी नाहिं'।

सरदार केसरासिंह ने कहा, "हुज़ूर, यह बात पूरी तरह समझ में नहीं आई।"

हुज़ूर ने फ़रमाया, "इसका मतलब यही है कि प्रेमी के लिये कोई भी कुर्बानी बहुत बड़ी नहीं है।"

"हुज़ूर, कैसी क़ुर्बानी ?" एक सत्संगी ने पूछा।

महाराजजी ने उत्तर दिया, "प्रेमी को अपना तन, मन और धन, सब-कुछ प्रेम की वेदी पर क़ुर्बान कर देना पड़ता है।"

उसी सत्संगी ने पूछा, "लेकिन किस तरह से हुज़ूर ?"

हुज़ूर ने जवाब में फ़रमाया, "मान लीजिये, आप भजन में बैठे हैं और शरीर से रूह के सिमटाव के कारण आपके अंगों में दर्द होने लगता है; अगर आप दर्द की वजह से अभ्यास से उठ बैठते हैं तो आप सच्चे प्रेमी नहीं। सच्चा प्रेमी अपने सतगुरु के स्वरूप की एक झलक मात्र के लिये हर तरह के दर्द को बरदाश्त करेगा। मान लें आपको धन-दौलत से प्यार है, तो आपके लिये अन्तर के द्वार नहीं खुलेंगे। परमात्मा के प्यार के सामने आपके हृदय में बसे हुए दूसरे सब प्यार ख़त्म हो जाने चाहियें। सच्चा प्रेम मन की सारी मलिनताओं को भस्म कर देता है, वह मन-मन्दिर को साफ़ करके मालिक के बिराजने के लायक़ बना देता है। निष्काम भक्ति और निर्मल प्रीति ही वह सीढ़ी है जो हमें सीधे मालिक के महल तक पहुँचाती है। प्रेम किसी भी प्रकार के क़ायदे-क़ानून को नहीं जानता। प्रेम बनिये की दुकान नहीं है, वह नफ़े-नुक़सान का हिसाब-किताब नहीं जानता। शायद आप लोग दूध बेचने वाली उस लड़की की कहानी जानते होंगे जो एक आने में एक पाव दूध बेचा करती थी। ख़रीदार आते, आना देते, और पाव भर दूध लेकर चले जाते। लेकिन जब उसका प्रेमी आया तो वह सब हिसाब और नाप-तोल भूल गई और उसके बरतन में पाव पर पाव दूध उड़ेलती गई। उसकी माँ ने इस पर लड़की को झिड़का कि क्या इस तरह दूध लुटाया जाता है ?

लड़की ने जवाब दिया, "माँ, जिसे मैं प्यार करती हूँ उसके साथ हिसाब कैसे रख सकती हूँ ? क्या तुम नहीं जानती कि प्रेम सब हिसाब-किताब भूल जाता है ?"

"अगर हम परमात्मा से सच्चा प्यार करेंगे तो वह भी हमारे लेन-देन का लेखा भूल जायेगा।"

हुज़ूर ने फिर फ़रमाया, "रामचरितमानस की रचना करने वाले प्रसिद्ध सन्त गोस्वामी तुलसीदास जी की एक कहानी है। उनकी

नई-नई शादी हुई थी। वे अपनी पत्नी से इतना प्यार करते थे कि एक दिन के लिये भी उसका वियोग बरदाश्त नहीं कर सकते थे। एक बार उनकी पत्नी को कुछ दिन के लिये बाहर जाना पड़ा। पर उसी दिन उसे वापस बुलाना पड़ा, क्योंकि उसके चले जाने के कुछ घण्टे बाद ही वे बीमार पड़ गये। उसके बाद उनकी पत्नी उनके बिना कहीं बाहर नहीं जाती थी। लेकिन एक बार ऐसा अवसर आया कि उसे अपने मायके जाना पड़ा, जो वहाँ से कुछ मील दूर एक गाँव में था। तुलसीदास को विरह-वेदना सताने लगी, उनसे रहा न गया और वे पैदल ही अपने ससुराल की ओर चल पड़े।"

इस पर पण्डित केवलकृष्ण हँस पड़े।

हुज़ूर महाराजजी ने मुसकराते हुए उनकी ओर देखा और बोले, "घायल की गति घायल ही जान सकता है। प्रेमी लोग तो इससे भी ज़्यादा बेहूदा बातें कर चुके हैं। सुनिये आगे क्या हुआ। रास्ते में एक छोटी नदी पड़ती थी। जब वे नदी के किनारे पहुँचे तो रात हो चुकी थी और नदी बाढ़ पर थी। ऐसे ख़तरनाक समय में कोई भी नाव वाला चौगुनी मज़दूरी देने पर भी जान जोखिम में डालने को तैयार नहीं था। लेकिन प्रेमी कभी हिम्मत नहीं हारते। वे एक लकड़ी का कुन्दा या एक ख़ाली पीपा खोजने लगे ताकि उसके सहारे नदी पार की जा सके। पर उन्हें ऐसी कोई चीज़ न मिली। इसलिये नदी को तैर कर पार करने के लिये वे उसमें उतर पड़े। थोड़ी देर बाद उन्हें उतार की ओर बहता हुआ एक मुर्दा दिखाई दिया और उसके सहारे वे नदी पार कर गये।

"जब वे अपनी ससुराल पहुँचे तो आधी रात हो चुकी थी और घर के सब खिड़की-दरवाज़े बन्द थे। वे घर के चारों ओर अन्दर जाने के किसी मार्ग की तलाश में घूमने लगे, लेकिन कोई रास्ता दिखाई न दिया। थक कर वे अपनी पत्नी की खिड़की के नीचे जा बैठे। वह खिड़की दूसरी मंज़िल के कमरे की थी। वहाँ बैठ कर पत्नी का ध्यान अपनी ओर खींचने के लिये वे खाँसने लगे और तरह-तरह की आवाज़ें करने लगे। वहाँ बैठे-बैठे वे ऊपर छत पर पहुँचने का कोई उपाय सोच ही रहे थे कि उन्हें कुछ सरसराहट की आवाज़ सुनाई दी मानों कोई ऊपर से रस्सी लटका रहा हो। देखने पर मालूम हुआ कि एक बड़ी रस्सी नीचे की तरफ़ लटक रही है और उसकी मदद से वे अपनी पत्नी

के कमरे में पहुँच गये। उन्होंने वहाँ पहुँचने पर रस्सी की मदद पहुँचाने के लिये अपनी पत्नी को धन्यवाद दिया।

'कैसी रस्सी ?' उसने आश्चर्य के साथ पूछा।

"पति ने कहा, 'क्या ऊपर चढ़ने के लिये रस्सी तुमने नहीं लटकाई थी ?'

"पत्नी ने जवाब दिया, 'नहीं, मैंने कोई रस्सी नहीं लटकाई।' उसके बाद वे दोनों उस दीवार की ओर गये तो देखा कि वहाँ एक बड़ा साँप लटक रहा था जिसे प्रेम में विभोर तुलसीदास रस्सी समझ बैठे थे। उसके बाद उन्होंने पत्नी को बताया कि रास्ते में नदी बड़े वेग में थी और उन्होंने एक मुर्दे के सहारे नदी पार की। इस पर उनकी पत्नी ने कहा, 'हे प्राणनाथ, इस प्यार का दसवाँ भाग भी अगर आप परमात्मा के लिये पैदा कर लेते तो वह आपके लिये मुक्ति के द्वार खोल देता। आप मेरे अन्दर ऐसा क्या देख रहे हैं ? मैं तो महज़ एक गन्दगी से भरा हाड़-मांस का पुतला हूँ। अपने प्रेम की लगन को प्रभु की ओर लगाइये ताकि हम दोनों इस भवसागर से पार हो जायें।

"उस अनपढ़ लड़की के इन सीधे सरल शब्दों ने तुलसीदास की आँखें खोल दीं और उनकी ज़िन्दगी ही बदल दी। वे अपनी पत्नी के चरणों में झुक कर बोले, 'हे देवी ? तुमने मुझे ज्ञान दिया है, परमात्मा तुम पर कृपा करे। तुम मेरी सच्ची गुरु हो।' यह कह कर उन्होंने अपनी पत्नी से बिदा ली और परमात्मा की खोज में निकल पड़े।"

सरदार केसरासिंह ने पूछा, "यह सच्ची घटना है या केवल कहानी ही है ?"

हुज़ूर महाराजजी ने जवाब दिया, "तुलसीदास की जीवनी लिखने वाले लगभग सब लोगों ने इसका वर्णन किया है।"

11. वार्ता समाप्त होती है

अफ़सोस! आख़िर वह दर्दनाक घड़ी आ ही पहुँची, जिसकी कल्पना मात्र हमारी आँखों में आँसू और दिल में गहरी वेदना ला देती थी। 2 अप्रेल 1948 की सुबह 8 बजे हुज़ूर महाराजजी ने पाँच तत्त्वों का चोला त्याग दिया। नब्बे साल पहले सचखण्ड के महासागर से जो महान धारा निकली थी, वापस अपने मूल में समा गयी। जिस सूर्य ने हमारे अन्धकारमय हृदय के कोने-कोने में प्रकाश की किरणें बिखेरी थीं, वह एकाएक अस्त हो गया और इसके साथ ही हमारी ज़िन्दगी के प्यार और ख़ुशी पर आख़िरी पर्दा गिर गया। अब हमारी ज़िन्दगी में रह ही क्या गया था? हम तो केवल अब मौत का इन्तिज़ार कर रहे थे। प्यारे सतगुरु के बिना अब ज़िन्दगी में कोई ख़ुशी न रही। वह तो अब केवल दुःख-दर्द की गाथा बन गयी है। वे हमारा छोटे बच्चों की तरह दुलार करते थे, प्यार करते थे। हमारे सिर पर उनके हाथ का स्पर्श मात्र हमारे मन को शान्ति और दिल को चैन प्रदान करता था। उनके दर्शन करते ही हमारी सब दुनियावी चिन्ताएँ और रूहानी शंकाएँ दूर हो जाती थीं। उन दिनों हमारा हृदय पुराने प्रेम-गीत की धुन पर नाचता रहता था, "दूर देश का प्रीतम प्यारा आया ग्राम हमारे।" आज वह गीत बेसुरा और बे-मौज़ूँ हो गया है। उस दूर देश के वासी ने आज हमसे पीठ फेर ली है और वापस अपने असली घर चला गया है। हमारा सरताज और हमारा बादशाह हमसे छिन गया है। हमारी ज़िन्दगी के बेड़े का कप्तान इस दुनिया से उठ गया। हम अनाथ और बे-सहारा हो गये। हाय! काश दो अप्रेल की वह सुबह आती ही नहीं, हम उनके साथ अपनी पूरी ज़िन्दगी रात के अँधेरे में ही गुज़ार लेते। वे ज़िन्दा हैं, इतना-सा ख़याल ही हमारी अँधेरी रातों को रोशन करने के लिये काफ़ी होता।

जब हम अपने प्यारे सतगुरु के शरीर का ब्यास नदी के किनारे संस्कार करके लौटे तो डेरा हमें सुनसान जंगल-सा लगने लगा। जिस स्फूर्ति-दायक हवा ने डेरे को चमन बनाया था, वह सहसा बन्द हो गई

के कमरे में पहुँच गये। उन्होंने वहाँ पहुँचने पर रस्सी की मदद पहुँचाने के लिये अपनी पत्नी को धन्यवाद दिया।

'कैसी रस्सी ?' उसने आश्चर्य के साथ पूछा।

"पति ने कहा, 'क्या ऊपर चढ़ने के लिये रस्सी तुमने नहीं लटकाई थी ?'

"पत्नी ने जवाब दिया, 'नहीं, मैंने कोई रस्सी नहीं लटकाई।' उसके बाद वे दोनों उस दीवार की ओर गये तो देखा कि वहाँ एक बड़ा साँप लटक रहा था जिसे प्रेम में विभोर तुलसीदास रस्सी समझ बैठे थे। उसके बाद उन्होंने पत्नी को बताया कि रास्ते में नदी बड़े वेग में थी और उन्होंने एक मुर्दे के सहारे नदी पार की। इस पर उनकी पत्नी ने कहा, 'हे प्राणनाथ, इस प्यार का दसवाँ भाग भी अगर आप परमात्मा के लिये पैदा कर लेते तो वह आपके लिये मुक्ति के द्वार खोल देता। आप मेरे अन्दर ऐसा क्या देख रहे हैं ? मैं तो महज़ एक गन्दगी से भरा हाड़-मांस का पुतला हूँ। अपने प्रेम की लगन को प्रभु की ओर लगाइये ताकि हम दोनों इस भवसागर से पार हो जायें।

"उस अनपढ़ लड़की के इन सीधे सरल शब्दों ने तुलसीदास की आँखें खोल दीं और उनकी ज़िन्दगी ही बदल दी। वे अपनी पत्नी के चरणों में झुक कर बोले, 'हे देवी ? तुमने मुझे ज्ञान दिया है, परमात्मा तुम पर कृपा करे। तुम मेरी सच्ची गुरु हो।' यह कह कर उन्होंने अपनी पत्नी से बिदा ली और परमात्मा की खोज में निकल पड़े।"

सरदार केसरासिंह ने पूछा, "यह सच्ची घटना है या केवल कहानी ही है ?"

हुज़ूर महाराजजी ने जवाब दिया, "तुलसीदास की जीवनी लिखने वाले लगभग सब लोगों ने इसका वर्णन किया है।"

11. वार्ता समाप्त होती है

अफ़सोस! आख़िर वह दर्दनाक घड़ी आ ही पहुँची, जिसकी कल्पना मात्र हमारी आँखों में आँसू और दिल में गहरी वेदना ला देती थी। 2 अप्रेल 1948 की सुबह 8 बजे हुज़ूर महाराजजी ने पाँच तत्त्वों का चोला त्याग दिया। नब्बे साल पहले सचखण्ड के महासागर से जो महान धारा निकली थी, वापस अपने मूल में समा गयी। जिस सूर्य ने हमारे अन्धकारमय हृदय के कोने-कोने में प्रकाश की किरणें बिखेरी थीं, वह एकाएक अस्त हो गया और इसके साथ ही हमारी ज़िन्दगी के प्यार और ख़ुशी पर आख़िरी पर्दा गिर गया। अब हमारी ज़िन्दगी में रह ही क्या गया था? हम तो केवल अब मौत का इन्तिज़ार कर रहे थे। प्यारे सतगुरु के बिना अब ज़िन्दगी में कोई ख़ुशी न रही। वह तो अब केवल दुःख-दर्द की गाथा बन गयी है। वे हमारा छोटे बच्चों की तरह दुलार करते थे, प्यार करते थे। हमारे सिर पर उनके हाथ का स्पर्श मात्र हमारे मन को शान्ति और दिल को चैन प्रदान करता था। उनके दर्शन करते ही हमारी सब दुनियावी चिन्ताएँ और रूहानी शंकाएँ दूर हो जाती थीं। उन दिनों हमारा हृदय पुराने प्रेम-गीत की धुन पर नाचता रहता था, "दूर देश का प्रीतम प्यारा आया ग्राम हमारे।" आज वह गीत बेसुरा और बे-मौज़ूँ हो गया है। उस दूर देश के वासी ने आज हमसे पीठ फेर ली है और वापस अपने असली घर चला गया है। हमारा सरताज और हमारा बादशाह हमसे छिन गया है। हमारी ज़िन्दगी के बेड़े का कप्तान इस दुनिया से उठ गया। हम अनाथ और बे-सहारा हो गये। हाय! काश दो अप्रेल की वह सुबह आती ही नहीं, हम उनके साथ अपनी पूरी ज़िन्दगी रात के अँधेरे में ही गुज़ार लेते। वे ज़िन्दा हैं, इतना-सा ख़याल ही हमारी अँधेरी रातों को रोशन करने के लिये काफ़ी होता।

जब हम अपने प्यारे सतगुरु के शरीर का ब्यास नदी के किनारे संस्कार करके लौटे तो डेरा हमें सुनसान जंगल-सा लगने लगा। जिस स्फूर्ति-दायक हवा ने डेरे को चमन बनाया था, वह सहसा बन्द हो गई

के कमरे में पहुँच गये। उन्होंने वहाँ पहुँचने पर रस्सी की मदद पहुँचाने के लिये अपनी पत्नी को धन्यवाद दिया।

'कैसी रस्सी ?' उसने आश्चर्य के साथ पूछा।

"पति ने कहा, 'क्या ऊपर चढ़ने के लिये रस्सी तुमने नहीं लटकाई थी ?'

"पत्नी ने जवाब दिया, 'नहीं, मैंने कोई रस्सी नहीं लटकाई।' उसके बाद वे दोनों उस दीवार की ओर गये तो देखा कि वहाँ एक बड़ा साँप लटक रहा था जिसे प्रेम में विभोर तुलसीदास रस्सी समझ बैठे थे। उसके बाद उन्होंने पत्नी को बताया कि रास्ते में नदी बड़े वेग में थी और उन्होंने एक मुर्दे के सहारे नदी पार की। इस पर उनकी पत्नी ने कहा, 'हे प्राणनाथ, इस प्यार का दसवाँ भाग भी अगर आप परमात्मा के लिये पैदा कर लेते तो वह आपके लिये मुक्ति के द्वार खोल देता। आप मेरे अन्दर ऐसा क्या देख रहे हैं ? मैं तो महज़ एक गन्दगी से भरा हाड़-मांस का पुतला हूँ। अपने प्रेम की लगन को प्रभु की ओर लगाइये ताकि हम दोनों इस भवसागर से पार हो जायें।

"उस अनपढ़ लड़की के इन सीधे सरल शब्दों ने तुलसीदास की आँखें खोल दीं और उनकी ज़िन्दगी ही बदल दी। वे अपनी पत्नी के चरणों में झुक कर बोले, 'हे देवी ? तुमने मुझे ज्ञान दिया है, परमात्मा तुम पर कृपा करे। तुम मेरी सच्ची गुरु हो।' यह कह कर उन्होंने अपनी पत्नी से बिदा ली और परमात्मा की खोज में निकल पड़े।"

सरदार केसरासिंह ने पूछा, "यह सच्ची घटना है या केवल कहानी ही है ?"

हुज़ूर महाराजजी ने जवाब दिया, "तुलसीदास की जीवनी लिखने वाले लगभग सब लोगों ने इसका वर्णन किया है।"

11. वार्ता समाप्त होती है

अफ़सोस! आख़िर वह दर्दनाक घड़ी आ ही पहुँची, जिसकी कल्पना मात्र हमारी आँखों में आँसू और दिल में गहरी वेदना ला देती थी। 2 अप्रेल 1948 की सुबह 8 बजे हुज़ूर महाराजजी ने पाँच तत्त्वों का चोला त्याग दिया। नब्बे साल पहले सचखण्ड के महासागर से जो महान धारा निकली थी, वापस अपने मूल में समा गयी। जिस सूर्य ने हमारे अन्धकारमय हृदय के कोने-कोने में प्रकाश की किरणें बिखेरी थीं, वह एकाएक अस्त हो गया और इसके साथ ही हमारी ज़िन्दगी के प्यार और खुशी पर आख़िरी पर्दा गिर गया। अब हमारी ज़िन्दगी में रह ही क्या गया था? हम तो केवल अब मौत का इन्तिज़ार कर रहे थे। प्यारे सतगुरु के बिना अब ज़िन्दगी में कोई खुशी न रही। वह तो अब केवल दुःख-दर्द की गाथा बन गयी है। वे हमारा छोटे बच्चों की तरह दुलार करते थे, प्यार करते थे। हमारे सिर पर उनके हाथ का स्पर्श मात्र हमारे मन को शान्ति और दिल को चैन प्रदान करता था। उनके दर्शन करते ही हमारी सब दुनियावी चिन्ताएँ और रूहानी शंकाएँ दूर हो जाती थीं। उन दिनों हमारा हृदय पुराने प्रेम-गीत की धुन पर नाचता रहता था, "दूर देश का प्रीतम प्यारा आया ग्राम हमारे।" आज वह गीत बेसुरा और बे-मौज़ूँ हो गया है। उस दूर देश के वासी ने आज हमसे पीठ फेर ली है और वापस अपने असली घर चला गया है। हमारा सरताज और हमारा बादशाह हमसे छिन गया है। हमारी ज़िन्दगी के बेड़े का कप्तान इस दुनिया से उठ गया। हम अनाथ और बे-सहारा हो गये। हाय! काश दो अप्रेल की वह सुबह आती ही नहीं, हम उनके साथ अपनी पूरी ज़िन्दगी रात के अँधेरे में ही गुज़ार लेते। वे ज़िन्दा हैं, इतना-सा ख़याल ही हमारी अँधेरी रातों को रोशन करने के लिये काफ़ी होता।

जब हम अपने प्यारे सतगुरु के शरीर का ब्यास नदी के किनारे संस्कार करके लौटे तो डेरा हमें सुनसान जंगल-सा लगने लगा। जिस स्फूर्ति-दायक हवा ने डेरे को चमन बनाया था, वह सहसा बन्द हो गई

थी। ऐसा लगता था मानों सर्दी के पाले और कोहरे ने उस चमन की सब कलियों को मुरझा डाला था। जैसे पतझड़ में पेड़ों की पत्तियाँ झड़ जाती हैं और केवल ठूँठ रह जाते हैं, उसी प्रकार डेरा भी सुनसान और बेजान लग रहा था। केवल जवान और बूढ़े, अमीर व ग़रीब ही फूट-फूट कर नहीं रो रहे थे, बल्कि बच्चों तक के चेहरे उदास थे और वे भी सिसकियाँ भर रहे थे। हमारे शोक और विलाप में प्रकृति भी हमारा साथ दे रही थी। एक ऐसी भयंकर आँधी उठ रही थी जिसकी गर्द ने सारे आकाश में छांकर अँधेरा कर दिया था। पिछले कई दिनों से भूकम्प के झटके आ रहे थे, मानों धरती यह भविष्यवाणी कर रही थी कि कोई बड़ा भारी संकट आने वाला है।

एक प्यारा साथी, चाहे वह पत्नी, पुत्र, पुत्री, माता, पिता, मित्र, सेवक, पड़ोसी या और कोई प्रियजन हो, हमारे ज़िन्दगी के सफ़र का रूप बदल देता है। प्यार ही ज़िन्दगी को बनाता है, हमें जीने की ख़ुशी देता है। जब यह प्यार ख़त्म हो जाता है तो सुन्दर से सुन्दर बग़ीचा भी रेगिस्तान लगने लगता है। अकेलापन सब ख़ुशियों को ख़त्म कर देता है। सतगुरु के प्यार ने मेरे अन्दर के और सब प्यार — पत्नी, बच्चे, माता-पिता, भाई, दोस्त के प्यार को हटा दिया था। इस उम्र में आज उस दिव्य प्यार के बिना मुझे सब-कुछ उदास, बोझिल और अन्धकारपूर्ण मालूम हो रहा था। हृदय पर अकेलेपन और सूनेपन की वीरानी छा गई थी। जीने में अब कोई रुचि न रही थी और मैं जीवन के अन्त के लिये प्रार्थना कर रहा था। लेकिन इसके ख़त्म होने में काफ़ी समय लग रहा था। सतगुरु के साथ बिताये हुए दिनों की मधुर स्मृतियाँ आज वियोग की वेदना को और बढ़ा रही थीं। आह ! उस मोहक प्यारे मुखड़े को अब कहाँ ढूँढूँ, जिसके पल-भर के दर्शन से ही हमारे दुःख-दर्द दूर हो जाते थे और ऐसी शान्ति मिलती थी जैसी कि तपती हुई धूप से झुलसी फ़सल को सावन की फुहारों से मिलती है। लेकिन अफ़सोस, आज वह प्यारा स्वरूप हमेशा के लिये हमारी आँखों से ओझल हो गया। वह मीठी वाणी आज हमेशा के लिये ख़ामोश हो गई ! केवल उसकी गूँज ही रह गई है — हमेशा के लिये।

लेकिन नहीं। सन्त कभी नहीं मरते। वह दिव्य ज्योति कभी नहीं बुझती। वह तो हमेशा जगमगाती रहती है। क्या उन्होंने नहीं कहा था, "मैं वादा करता हूँ, मैं हमेशा तुम्हारे अंग-संग रहूँगा।"

बेशक, वे हमारे साथ हैं। उन्होंने केवल पोशाक ही बदली है। वही ज्योति, वही प्रकाश आज भी हमारी रहनुमाई कर रहा है। वही शोभा, वही प्यारा स्वरूप, वही लुभावनी मुसकान और वैसा ही अपार दया-मेहर का सागर आज भी मौजूद है। प्यार और प्रकाश की वही धारा, वही ज्योति चमकते हुए सितारे की तरह आज भी सारी संगत की रहनुमाई कर रही है। सिर्फ़ हमें प्रेम, प्रतीति और नम्रता के साथ उनकी दया-मेहर को पाने के लायक़ बनना है।

चोला छोड़ने के 15 दिन पहले हुज़ूर महाराजजी ने एक वसीयतनामे के द्वारा सरदार बहादुर जगतसिंह जी को अपना परमार्थी उत्तराधिकारी नियुक्त किया। 20 मार्च 1948 की सुबह, मैं राय साहब मुंशीराम जी (रिटायर्ड डिस्ट्रिक्ट व सेशन जज, पंजाब) के साथ बैठा हुआ था। राय साहब सन् 1941 से हुज़ूर महाराजजी के सेक्रेटरी का काम कर रहे थे। हुज़ूर का सेवादार गाँधी हमारे पास आया और बोला कि हुज़ूर राय साहब को बुला रहे हैं। राय साहब तुरन्त गये और 15-20 मिनट के बाद लौटे तो मुझे बताया कि हुज़ूर ने सरदार बहादुर जगतसिंह जी को अपना रूहानी जानशीन नियुक्त किया है और उनके हक़ में एक वसीयतनामा तैयार करना है।

सरदार बहादुर जगतसिंह जी कृषि कॉलेज लायलपुर (पंजाब) के रिटायर्ड वाइस-प्रिंसीपल थे। उनकी आला दर्जे की भक्ति, सेवा और कमाई के लिये सारी संगत उनका बड़ा आदर और मान करती थी। उनकी नम्रता और दीनता का अन्दाज़ आगे दी जाने वाली घटना से लगेगा। वसीयतनामे पर दस्तख़त करने से पहले हुज़ूर ने सरदार बहादुर जी को बुलाया और कहा, "परमार्थ और नामदान की जो ज़िम्मेदारी मेरे सतगुरु बाबाजी महाराज (बाबा जैमलसिंह जी) ने मुझे सौंपी थी वह मैं तुम्हें सौंपता हूँ। मैं तुम्हें अपना जानशीन बनाना चाहता हूँ।" यह सुनते ही सरदार बहादुर जी की आँखों से आँसू बहने लगे और दोनों हाथ जोड़ कर बड़ी नम्रता से बोले, "हुज़ूर, आप तो सन्तों के शहंशाह हैं और मैं तो केवल आपका एक अदना दास हूँ। यह शहंशाहों की गद्दी शहंशाहों को ही शोभा देती है। हुज़ूर हमेशा सलामत रहें।"

हुज़ूर महाराजजी कुछ नहीं बोले। केवल सरदार बहादुर जी के ऊपर एक प्यार-भरी दृष्टि डाली। सरदार बहादुर जी बाहर आ गये, उनकी आँखों से अभी भी आँसू बह रहे थे। लेकिन हुज़ूर ने उन्हें फिर

थी। ऐसा लगता था मानों सर्दी के पाले और कोहरे ने उस चमन की सब कलियों को मुरझा डाला था। जैसे पतझड़ में पेड़ों की पत्तियाँ झड़ जाती हैं और केवल ठूँठ रह जाते हैं, उसी प्रकार डेरा भी सुनसान और बेजान लग रहा था। केवल जवान और बूढ़े, अमीर व ग़रीब ही फूट-फूट कर नहीं रो रहे थे, बल्कि बच्चों तक के चेहरे उदास थे और वे भी सिसकियाँ भर रहे थे। हमारे शोक और विलाप में प्रकृति भी हमारा साथ दे रही थी। एक ऐसी भयंकर आँधी उठ रही थी जिसकी गर्द ने सारे आकाश में छांकर अँधेरा कर दिया था। पिछले कई दिनों से भूकम्प के झटके आ रहे थे, मानों धरती यह भविष्यवाणी कर रही थी कि कोई बड़ा भारी संकट आने वाला है।

एक प्यारा साथी, चाहे वह पत्नी, पुत्र, पुत्री, माता, पिता, मित्र, सेवक, पड़ोसी या और कोई प्रियजन हो, हमारे ज़िन्दगी के सफ़र का रूप बदल देता है। प्यार ही ज़िन्दगी को बनाता है, हमें जीने की ख़ुशी देता है। जब यह प्यार ख़त्म हो जाता है तो सुन्दर से सुन्दर बग़ीचा भी रेगिस्तान लगने लगता है। अकेलापन सब ख़ुशियों को ख़त्म कर देता है। सतगुरु के प्यार ने मेरे अन्दर के और सब प्यार — पत्नी, बच्चे, माता-पिता, भाई, दोस्त के प्यार को हटा दिया था। इस उम्र में आज उस दिव्य प्यार के बिना मुझे सब-कुछ उदास, बोझिल और अन्धकारपूर्ण मालूम हो रहा था। हृदय पर अकेलेपन और सूनेपन की वीरानी छा गई थी। जीने में अब कोई रुचि न रही थी और मैं जीवन के अन्त के लिये प्रार्थना कर रहा था। लेकिन इसके ख़त्म होने में काफ़ी समय लग रहा था। सतगुरु के साथ बिताये हुए दिनों की मधुर स्मृतियाँ आज वियोग की वेदना को और बढ़ा रही थीं। आह ! उस मोहक प्यारे मुखड़े को अब कहाँ ढूँढूँ, जिसके पल-भर के दर्शन से ही हमारे दुःख-दर्द दूर हो जाते थे और ऐसी शान्ति मिलती थी जैसी कि तपती हुई धूप से झुलसी फ़सल को सावन की फुहारों से मिलती है। लेकिन अफ़सोस, आज वह प्यारा स्वरूप हमेशा के लिये हमारी आँखों से ओझल हो गया। वह मीठी वाणी आज हमेशा के लिये ख़ामोश हो गई ! केवल उसकी गूँज ही रह गई है — हमेशा के लिये।

लेकिन नहीं। सन्त कभी नहीं मरते। वह दिव्य ज्योति कभी नहीं बुझती। वह तो हमेशा जगमगाती रहती है। क्या उन्होंने नहीं कहा था, "मैं वादा करता हूँ, मैं हमेशा तुम्हारे अंग-संग रहूँगा।"

बेशक, वे हमारे साथ हैं। उन्होंने केवल पोशाक ही बदली है। वही ज्योति, वही प्रकाश आज भी हमारी रहनुमाई कर रहा है। वही शोभा, वही प्यारा स्वरूप, वही लुभावनी मुसकान और वैसा ही अपार दया-मेहर का सागर आज भी मौजूद है। प्यार और प्रकाश की वही धारा, वही ज्योति चमकते हुए सितारे की तरह आज भी सारी संगत की रहनुमाई कर रही है। सिर्फ़ हमें प्रेम, प्रतीति और नम्रता के साथ उनकी दया-मेहर को पाने के लायक़ बनना है।

चोला छोड़ने के 15 दिन पहले हुज़ूर महाराजजी ने एक वसीयतनामे के द्वारा सरदार बहादुर जगतसिंह जी को अपना परमार्थी उत्तराधिकारी नियुक्त किया। 20 मार्च 1948 की सुबह, मैं राय साहब मुंशीराम जी (रिटायर्ड डिस्ट्रिक्ट व सेशन जज, पंजाब) के साथ बैठा हुआ था। राय साहब सन् 1941 से हुज़ूर महाराजजी के सेक्रेटरी का काम कर रहे थे। हुज़ूर का सेवादार गाँधी हमारे पास आया और बोला कि हुज़ूर राय साहब को बुला रहे हैं। राय साहब तुरन्त गये और 15-20 मिनट के बाद लौटे तो मुझे बताया कि हुज़ूर ने सरदार बहादुर जगतसिंह जी को अपना रूहानी जानशीन नियुक्त किया है और उनके हक़ में एक वसीयतनामा तैयार करना है।

सरदार बहादुर जगतसिंह जी कृषि कॉलेज लायलपुर (पंजाब) के रिटायर्ड वाइस-प्रिंसीपल थे। उनकी आला दर्जे की भक्ति, सेवा और कमाई के लिये सारी संगत उनका बड़ा आदर और मान करती थी। उनकी नम्रता और दीनता का अन्दाज़ आगे दी जाने वाली घटना से लगेगा। वसीयतनामे पर दस्तख़त करने से पहले हुज़ूर ने सरदार बहादुर जी को बुलाया और कहा, "परमार्थ और नामदान की जो ज़िम्मेदारी मेरे सतगुरु बाबाजी महाराज (बाबा जैमलसिंह जी) ने मुझे सौंपी थी वह मैं तुम्हें सौंपता हूँ। मैं तुम्हें अपना जानशीन बनाना चाहता हूँ।" यह सुनते ही सरदार बहादुर जी की आँखों से आँसू बहने लगे और दोनों हाथ जोड़ कर बड़ी नम्रता से बोले, "हुज़ूर, आप तो सन्तों के शहंशाह हैं और मैं तो केवल आपका एक अदना दास हूँ। यह शहंशाहों की गद्दी शहंशाहों को ही शोभा देती है। हुज़ूर हमेशा सलामत रहें।"

हुज़ूर महाराजजी कुछ नहीं बोले। केवल सरदार बहादुर जी के ऊपर एक प्यार-भरी दृष्टि डाली। सरदार बहादुर जी बाहर आ गये, उनकी आँखों से अभी भी आँसू बह रहे थे। लेकिन हुज़ूर ने उन्हें फिर

बुलवाया। इस बीच में वसीयतनामे पर दस्तख़त हो चुके थे। हुज़ूर महाराजजी ने फ़रमाया, "मेरे हुक्म को मानना पड़ेगा।" इस पर सरदार बहादुर जी हुज़ूर के चरणों में गिर पड़े और कहा, "मालिक ! मैं आपके हुक्म के सामने सिर झुकाता हूँ।"

हुज़ूर महाराजजी के गिरते हुए स्वास्थ्य की ख़बर को सुनते ही मैं अपने दिल के जज़्बात को न रोक सका और राय साहब को वसीयतनामा तैयार करने के लिये वहीं छोड़ कर अपने कमरे में आ गया। शाम को मुझे वसीयतनामा दिखाया गया तो मेरे मुँह से निकल पड़ा कि हुज़ूर महाराजजी परमार्थ में तो पूर्ण सन्त हैं ही, दुनियादारी के कामों में भी उनकी सूझ-बूझ को कोई पहुँच नहीं सकता। वसीयतनामे पर खुद हुज़ूर के दस्तख़त तो थे ही, गवाह के रूप में उनके सबसे बड़े लड़के सरदार बचिन्तसिंह जी तथा उनके पोते सरदार चरनसिंह जी — जो कि मौजूदा सन्त सतगुरु हैं[1] के भी दस्तख़त थे। हुज़ूर के कहने पर डॉ. स्मिथ ने भी, जो कि जिनेवा के मशहूर डॉक्टर और हुज़ूर के प्रेमी सत्संगी हैं और जो हुज़ूर की बीमारी में उनका इलाज करने के लिये ख़ास तौर पर स्विट्ज़रलैण्ड से आये थे, वसीयतनामे पर अपने हाथ से एक नोट लिखा कि वसीयतनामे पर दस्तख़त करते समय हुज़ूर पूरी तरह से सजग और सचेत थे।

29 मार्च 1948 को सत्संग हुआ। यह हुज़ूर महाराजजी के जीवन-काल का अन्तिम मासिक सत्संग था। सत्संग के बाद सरदार कृपालसिंह ने संगत को बताया कि डॉक्टरों के अनुसार हुज़ूर महाराजजी की तबीयत कुछ अच्छी नहीं है और उन्होंने अपना वसीयतनामा लिख दिया है। लेकिन हमें यह देख कर ताज्जुब हुआ कि सरदार कृपालसिंह ने हुज़ूर के उत्तराधिकारी का नाम नहीं बताया। इसका कारण तो वे ही जानें, उनके मन में क्या भावना थी। लेकिन बाद की घटनाओं से इसका कारण बहुत कुछ प्रकट हो गया। कुछ लोगों ने उत्तराधिकारी के नाम को छिपा कर रखने की कोशिश की। लेकिन फिर भी उत्तराधिकारी का नाम, संगत के वापस लौटने से पहले ही सारे डेरा में हर सत्संगी की ज़बान पर था।

दुर्भाग्य से सरदार बहादुर जगतसिंह जी बहुत कम समय के लिये हमारे बीच रहे। उन्होंने अप्रेल 1948 में गद्दी सँभाली और अपनी पूरी

1. हुज़ूर महाराज चरनसिंह जी 1 जून 1990 को ज्योति-ज्योत समा गये।

रूहानी शान में जगमगाने लगे। स्वास्थ्य के ख़राब रहने के बावजूद भी उन्होंने अपनी ज़िम्मेदारी बड़ी श्रद्धा व दृढ़ता से निभायी। 23 अक्तूबर 1951 को वे ज्योति-ज्योत समा गये। मौजूदा सतगुरु महाराज चरनसिंह जी को अपना उत्ताराधिकारी नियुक्त करके वसीयतनामे पर दस्तख़त करते हुए उन्होंने कहा, "मैं अपने गुरु का ख़ज़ाना वापस उन्हें ही सौंप रहा हूँ। मुझे ख़ुशी है कि मैं इस धरोहर को वापस लौटा रहा हूँ।"

मौजूदा सतगुरु अक्तूबर 1951 में गद्दी पर बिराजे। इस छोटी-सी पुस्तक में मौजूदा महाराजजी के या उनके पहले सरदार बहादुर जी महाराज के कार्यों और शिक्षाओं का वर्णन किया जाना सम्भव नहीं। यह काम तो किसी बाद में आने वाले लेखक के लिये छोड़ता हूँ।

लेकिन हुज़ूर महाराजजी के शब्द मेरे कानों में अब भी गूँज रहे हैं, "मेरा उत्तराधिकारी मुझसे दस गुनी ताक़त और दया-मेहर लेकर आयेगा। संगत और डेरा बहुत तरक़्क़ी करेगा। तुम्हारा प्यार और विश्वास भी बढ़ेगा। और तुम्हें और ज़्यादा दया-मेहर और बख़्शिशें मिलेंगी।"

हिन्दुस्तान और विदेश के सत्संगियों और परमार्थ के खोजियों को इस बात की सच्चाई का पूरा अनुभव हो रहा है।

परमार्थ के सच्चे जिज्ञासुओं के लिये सतगुरु का द्वार हमेशा खुला रहता है। वे अपनी समस्याओं और शंकाओं के समाधान के लिये जब चाहें उनके पास आ सकते हैं। ऐसी मुलाक़ातें हमेशा फलदायक होंगी और लोगों को हुज़ूर महाराजजी के वचनों की यथार्थता का पता अपने अनुभव द्वारा लग सकेगा। उन्हें मौजूदा सतगुरु में वह अलौकिक ज्ञान और रूहानी दौलत मिलेगी जो आज की दुनिया में दुर्लभ है और जो पूरे सतगुरु की निशानी है।

बुलवाया। इस बीच में वसीयतनामे पर दस्तख़त हो चुके थे। हुज़ूर महाराजजी ने फ़रमाया, "मेरे हुक्म को मानना पड़ेगा।" इस पर सरदार बहादुर जी हुज़ूर के चरणों में गिर पड़े और कहा, "मालिक ! मैं आपके हुक्म के सामने सिर झुकाता हूँ।"

हुज़ूर महाराजजी के गिरते हुए स्वास्थ्य की ख़बर को सुनते ही मैं अपने दिल के जज़्बात को न रोक सका और राय साहब को वसीयतनामा तैयार करने के लिये वहीं छोड़ कर अपने कमरे में आ गया। शाम को मुझे वसीयतनामा दिखाया गया तो मेरे मुँह से निकल पड़ा कि हुज़ूर महाराजजी परमार्थ में तो पूर्ण सन्त हैं ही, दुनियादारी के कामों में भी उनकी सूझ-बूझ को कोई पहुँच नहीं सकता। वसीयतनामे पर खुद हुज़ूर के दस्तख़त तो थे ही, गवाह के रूप में उनके सबसे बड़े लड़के सरदार बचिन्तसिंह जी तथा उनके पोते सरदार चरनसिंह जी — जो कि मौजूदा सन्त सतगुरु हैं[1] के भी दस्तख़त थे। हुज़ूर के कहने पर डॉ. स्मिथ ने भी, जो कि जिनेवा के मशहूर डॉक्टर और हुज़ूर के प्रेमी सत्संगी हैं और जो हुज़ूर की बीमारी में उनका इलाज करने के लिये ख़ास तौर पर स्विट्ज़रलैण्ड से आये थे, वसीयतनामे पर अपने हाथ से एक नोट लिखा कि वसीयतनामे पर दस्तख़त करते समय हुज़ूर पूरी तरह से सजग और सचेत थे।

29 मार्च 1948 को सत्संग हुआ। यह हुज़ूर महाराजजी के जीवन-काल का अन्तिम मासिक सत्संग था। सत्संग के बाद सरदार कृपालसिंह ने संगत को बताया कि डॉक्टरों के अनुसार हुज़ूर महाराजजी की तबीयत कुछ अच्छी नहीं है और उन्होंने अपना वसीयतनामा लिख दिया है। लेकिन हमें यह देख कर ताज्जुब हुआ कि सरदार कृपालसिंह ने हुज़ूर के उत्तराधिकारी का नाम नहीं बताया। इसका कारण तो वे ही जानें, उनके मन में क्या भावना थी। लेकिन बाद की घटनाओं से इसका कारण बहुत कुछ प्रकट हो गया। कुछ लोगों ने उत्तराधिकारी के नाम को छिपा कर रखने की कोशिश की। लेकिन फिर भी उत्तराधिकारी का नाम, संगत के वापस लौटने से पहले ही सारे डेरा में हर सत्संगी की ज़बान पर था।

दुर्भाग्य से सरदार बहादुर जगतसिंह जी बहुत कम समय के लिये हमारे बीच रहे। उन्होंने अप्रेल 1948 में गद्दी सँभाली और अपनी पूरी

1. हुज़ूर महाराज चरनसिंह जी 1 जून 1990 को ज्योति-ज्योत समा गये।

रूहानी शान में जगमगाने लगे। स्वास्थ्य के ख़राब रहने के बावजूद भी उन्होंने अपनी ज़िम्मेदारी बड़ी श्रद्धा व दृढ़ता से निभायी। 23 अक्तूबर 1951 को वे ज्योति-ज्योत समा गये। मौजूदा सतगुरु महाराज चरनसिंह जी को अपना उत्ताराधिकारी नियुक्त करके वसीयतनामे पर दस्तख़त करते हुए उन्होंने कहा, "मैं अपने गुरु का ख़ज़ाना वापस उन्हें ही सौंप रहा हूँ। मुझे खुशी है कि मैं इस धरोहर को वापस लौटा रहा हूँ।"

मौजूदा सतगुरु अक्तूबर 1951 में गद्दी पर बिराजे। इस छोटी-सी पुस्तक में मौजूदा महाराजजी के या उनके पहले सरदार बहादुर जी महाराज के कार्यों और शिक्षाओं का वर्णन किया जाना सम्भव नहीं। यह काम तो किसी बाद में आने वाले लेखक के लिये छोड़ता हूँ।

लेकिन हुज़ूर महाराजजी के शब्द मेरे कानों में अब भी गूँज रहे हैं, "मेरा उत्तराधिकारी मुझसे दस गुनी ताक़त और दया-मेहर लेकर आयेगा। संगत और डेरा बहुत तरक़्क़ी करेगा। तुम्हारा प्यार और विश्वास भी बढ़ेगा। और तुम्हें और ज़्यादा दया-मेहर और बख़्शिशें मिलेंगी।"

हिन्दुस्तान और विदेश के सत्संगियों और परमार्थ के खोजियों को इस बात की सच्चाई का पूरा अनुभव हो रहा है।

परमार्थ के सच्चे जिज्ञासुओं के लिये सतगुरु का द्वार हमेशा खुला रहता है। वे अपनी समस्याओं और शंकाओं के समाधान के लिये जब चाहें उनके पास आ सकते हैं। ऐसी मुलाक़ातें हमेशा फलदायक होंगी और लोगों को हुज़ूर महाराजजी के वचनों की यथार्थता का पता अपने अनुभव द्वारा लग सकेगा। उन्हें मौजूदा सतगुरु में वह अलौकिक ज्ञान और रूहानी दौलत मिलेगी जो आज की दुनिया में दुर्लभ है और जो पूरे सतगुरु की निशानी है।

12. अन्तिम दर्शन

(हुज़ूर महाराजजी का महा-प्रयाण तथा अन्तिम संस्कार)

लेखक : डॉक्टर पैरी स्मिथ, जिनेवा

जब महाराजजी ने अन्तिम साँस ली तब मैं अपने सतगुरु के पवित्र हाथ को थामे एक छोटे स्टूल पर बैठा हुआ था और उनके दिव्य नेत्रों को स्थिरतापूर्वक निहार रहा था। मैंने उनके अन्तिम श्वास को देखा और उनके हृदय की आख़िरी धड़कन को महसूस किया। मैं उठ कर खड़ा हो गया, अपने असामान्य कर्तव्य का मुझे बोध था। गम्भीर मौन के साथ, मैंने कमरे में नत-सिर, भीगे नेत्र बैठे सत्संगियों की ओर देखा। पास का कमरा भी सत्संगियों से भरा हुआ था, जो अश्रुपूर्ण नेत्रों के साथ सिर झुकाये बैठे थे। गहरे दुःख और टूटे हृदय के साथ मैं अपने सतगुरु के चरणों में नत हो गया, जिसका अर्थ यह घोषणा करना था कि 'सब-कुछ पूर्ण हो गया'।

2 अप्रेल 1948 का दिन था। उस वक़्त डेरा बाबा जैमलसिंह में सुबह के साढ़े आठ बजे थे।

कैसा दर्दनाक वक़्त था ! कैसा भीषण आघात था हर सत्संगी के हृदय पर !! क्या वास्तव में यह सच था ? कुछ क्षणों के लिए हम स्तब्ध रह गये। पल-पल यह आस लगा रहे थे कि कोई चमत्कार हो जाये। और फिर सहसा अपने प्यारे सतगुरु के बिछोह के गहरे आघात को व्यक्त करने वाली रुदन-ध्वनि ऊपर के कमरों में गूँज उठी, जिससे नीचे सहन में एकत्रित संगत को इस दर्दनाक घटना की सूचना मिल गई।

पिछले दो दिन से महाराजजी का कमरा तथा पास के कमरे सत्संगियों से भरे हुए थे, जो बग़ैर खाये-पीये, दिन-रात अपने सतगुरु पर नज़रें लगाये बैठे थे। हुज़ूर महाराजजी ने कुछ दिनों पहले यह इच्छा प्रकट की थी कि शान्ति से सिमरन करते हुए सत्संगी उनके कमरे में रहें।

महाराजजी के दो-तीन निकटतम सेवक और उनके पुत्र तथा पौत्र अपने सतगुरु के पावन शरीर को अन्तिम संस्कार हेतु तैयार करने लगे।

उन्होंने साबुन और पानी से महाराजजी की देह को स्नान कराना तथा उन्हें सफ़ेद कुर्ता और गहरे रंग के वस्त्र पहनाना शुरू किया। जिस समय सब लोग हुज़ूर को स्नान कराने में तत्पर और व्यस्त थे, कोई उनका सिर धो रहा था तो कोई उनका मुख, कोई उनके हाथों को धो रहा था तो कोई उनके कन्धों को स्नान करा रहा था, उस समय हुज़ूर का वफ़ादार कम्पाउण्डर हज़ारासिंह कमरे के एक कोने में शोक और दर्द में बेसहारा पड़ा हुआ था, उसमें मानों बोलने या हिलने-डुलने तक का सामर्थ्य न था। कमरे के दूसरे कोने में मैं सरदार बहादुर जगतसिंह के पास प्रार्थना में झुका हुआ बैठा था। एकाएक नये सतगुरु उठे, शान्तिपूर्वक उन्होंने अपना शाल उतारा, एक छोटा पीतल का लोटा लिया, उसमें पानी भरा और भीड़ में से चुपचाप अपने प्यारे सतगुरु के चरणों में जा पहुँचे जहाँ कोई नहीं था। उन्होंने हुज़ूर के चरणों पर से वस्त्र हटाए और बड़े आदर तथा भक्ति-पूर्वक अन्तिम बार उनके पुनीत चरणों का प्रक्षालन किया और उस पवित्र जल को यत्न के साथ एक पात्र में इकट्ठा कर लिया। जिस प्रकार उन्होंने यह कार्य किया उसमें कैसी सौम्यता और शान थी ! औरों की उत्तेजनापूर्ण सरगर्मी से यह कितना भिन्न था ! और यह महत्त्वपूर्ण कार्य इस प्रेम और दीनता से, इतनी आडम्बर-रहित सरलता के साथ किया गया था कि मुझे पूर्ण विश्वास है कि उनके इस पवित्र कार्य की ओर किसी का ध्यान ही न गया। अपना पुनीत कर्तव्य करके एक परछाईं के समान वे वापस आ गये और अपना शाल ओढ़ कर मेरे पास चुपचाप बैठ गये। बाक़ी लोग अपना-अपना काम करते रहे।

महाराजजी की कोठी की पहली मंज़िल के द्वार पर संगत की उमड़ती भीड़ को रोकने के लिये कुछ सेवादारों को रखने की दूरदर्शिता ने दरवाज़ों को टूटने से बचा लिया, वरना अपने प्यारे सतगुरु के दर्शन के लिये व्याकुल संगत की अपार अनियन्त्रित भीड़ बार-बार अन्दर आने की कोशिश कर रही थी। बाहर से हमें चीख-पुकार और शोकपूर्ण स्वर में चिल्लाने की आवाज़ें आ रहीं थीं। कमरों का और बाहर का वातावरण शोक और विषादमय था। मैं अन्दर ही बैठा रहा।

प्रमुख सत्संग-केन्द्रों पर तार द्वारा यह शोकपूर्ण समाचार देने तथा चन्दन की लकड़ी व संस्कार हेतु अन्य आवश्यक सामान लाने के लिये हुज़ूर महाराजजी के एक पौत्र तुरन्त ब्यास रेलवे स्टेशन होते हुए अमृतसर के लिये रवाना हो गये।

12. अन्तिम दर्शन

(हुज़ूर महाराजजी का महा-प्रयाण तथा अन्तिम संस्कार)

लेखक : डॉक्टर पैरी स्मिथ, जिनेवा

जब महाराजजी ने अन्तिम साँस ली तब मैं अपने सतगुरु के पवित्र हाथ को थामे एक छोटे स्टूल पर बैठा हुआ था और उनके दिव्य नेत्रों को स्थिरतापूर्वक निहार रहा था। मैंने उनके अन्तिम श्वास को देखा और उनके हृदय की आख़िरी धड़कन को महसूस किया। मैं उठ कर खड़ा हो गया, अपने असामान्य कर्तव्य का मुझे बोध था। गम्भीर मौन के साथ, मैंने कमरे में नत-सिर, भीगे नेत्र बैठे सत्संगियों की ओर देखा। पास का कमरा भी सत्संगियों से भरा हुआ था, जो अश्रुपूर्ण नेत्रों के साथ सिर झुकाये बैठे थे। गहरे दुःख और टूटे हृदय के साथ मैं अपने सतगुरु के चरणों में नत हो गया, जिसका अर्थ यह घोषणा करना था कि 'सब-कुछ पूर्ण हो गया'।

2 अप्रेल 1948 का दिन था। उस वक़्त डेरा बाबा जैमलसिंह में सुबह के साढ़े आठ बजे थे।

कैसा दर्दनाक वक़्त था ! कैसा भीषण आघात था हर सत्संगी के हृदय पर !! क्या वास्तव में यह सच था ? कुछ क्षणों के लिए हम स्तब्ध रह गये। पल-पल यह आस लगा रहे थे कि कोई चमत्कार हो जाये। और फिर सहसा अपने प्यारे सतगुरु के बिछोह के गहरे आघात को व्यक्त करने वाली रुदन-ध्वनि ऊपर के कमरों में गूँज उठी, जिससे नीचे सहन में एकत्रित संगत को इस दर्दनाक घटना की सूचना मिल गई।

पिछले दो दिन से महाराजजी का कमरा तथा पास के कमरे सत्संगियों से भरे हुए थे, जो बग़ैर खाये-पीये, दिन-रात अपने सतगुरु पर नज़रें लगाये बैठे थे। हुज़ूर महाराजजी ने कुछ दिनों पहले यह इच्छा प्रकट की थी कि शान्ति से सिमरन करते हुए सत्संगी उनके कमरे में रहें।

महाराजजी के दो-तीन निकटतम सेवक और उनके पुत्र तथा पौत्र अपने सतगुरु के पावन शरीर को अन्तिम संस्कार हेतु तैयार करने लगे।

उन्होंने साबुन और पानी से महाराजजी की देह को स्नान कराना तथा उन्हें सफ़ेद कुर्ता और गहरे रंग के वस्त्र पहनाना शुरू किया। जिस समय सब लोग हुज़ूर को स्नान कराने में तत्पर और व्यस्त थे, कोई उनका सिर धो रहा था तो कोई उनका मुख, कोई उनके हाथों को धो रहा था तो कोई उनके कन्धों को स्नान करा रहा था, उस समय हुज़ूर का वफ़ादार कम्पाउण्डर हज़ारासिंह कमरे के एक कोने में शोक और दर्द में बेसहारा पड़ा हुआ था, उसमें मानों बोलने या हिलने-डुलने तक का सामर्थ्य न था। कमरे के दूसरे कोने में मैं सरदार बहादुर जगतसिंह के पास प्रार्थना में झुका हुआ बैठा था। एकाएक नये सतगुरु उठे, शान्तिपूर्वक उन्होंने अपना शाल उतारा, एक छोटा पीतल का लोटा लिया, उसमें पानी भरा और भीड़ में से चुपचाप अपने प्यारे सतगुरु के चरणों में जा पहुँचे जहाँ कोई नहीं था। उन्होंने हुज़ूर के चरणों पर से वस्त्र हटाए और बड़े आदर तथा भक्ति-पूर्वक अन्तिम बार उनके पुनीत चरणों का प्रक्षालन किया और उस पवित्र जल को यत्न के साथ एक पात्र में इकट्ठा कर लिया। जिस प्रकार उन्होंने यह कार्य किया उसमें कैसी सौम्यता और शान थी ! औरों की उत्तेजनापूर्ण सरगर्मी से यह कितना भिन्न था ! और यह महत्त्वपूर्ण कार्य इस प्रेम और दीनता से, इतनी आडम्बर-रहित सरलता के साथ किया गया था कि मुझे पूर्ण विश्वास है कि उनके इस पवित्र कार्य की ओर किसी का ध्यान ही न गया। अपना पुनीत कर्तव्य करके एक परछाईं के समान वे वापस आ गये और अपना शाल ओढ़ कर मेरे पास चुपचाप बैठ गये। बाक़ी लोग अपना-अपना काम करते रहे।

महाराजजी की कोठी की पहली मंज़िल के द्वार पर संगत की उमड़ती भीड़ को रोकने के लिये कुछ सेवादारों को रखने की दूरदर्शिता ने दरवाज़ों को टूटने से बचा लिया, वरना अपने प्यारे सतगुरु के दर्शन के लिये व्याकुल संगत की अपार अनियन्त्रित भीड़ बार-बार अन्दर आने की कोशिश कर रही थी। बाहर से हमें चीख-पुकार और शोकपूर्ण स्वर में चिल्लाने की आवाज़ें आ रहीं थीं। कमरों का और बाहर का वातावरण शोक और विषादमय था। मैं अन्दर ही बैठा रहा।

प्रमुख सत्संग-केन्द्रों पर तार द्वारा यह शोकपूर्ण समाचार देने तथा चन्दन की लकड़ी व संस्कार हेतु अन्य आवश्यक सामान लाने के लिये हुज़ूर महाराजजी के एक पौत्र तुरन्त ब्यास रेलवे स्टेशन होते हुए अमृतसर के लिये रवाना हो गये।

इसी बीच डेरे में विशाल जन-समुदाय इकट्ठा हो गया। मेरे सामने दुःख के ऐसे हृदय-विदारक दृश्य थे जो शायद ही किसी मनुष्य ने अपने जीवन में देखे हों। समाचार फ़ौरन पूरी कालोनी में पहुँच गया और अपनी इस तबाही में संगत का रुदन और विलाप अत्यन्त दर्दनाक था। एक घण्टे के अन्दर तीन हज़ार से ज़्यादा लोग आ गये और दस बजे तक तो आस-पास के गाँवों और शहरों से दस हज़ार से अधिक लोग आ पहुँचे। अपने सतगुरु की प्रीति और भक्ति में रोते हुए इस अश्रु-पूरित जन-समुदाय का शोकपूर्ण विलाप और गहरी वेदना का प्रदर्शन अत्यन्त मर्मस्पर्शी था। कई बेहोश हो गये। एक नवयुवक सत्संगी ने कुछ खाकर प्राण त्याग दिये, वह अपने सतगुरु के बिना ज़िन्दा नहीं रह सकता था। शोक और सन्ताप के उन दृश्यों का वर्णन हो ही नहीं सकता।

सतगुरु के शरीर को तैयार कर लेने के बाद, सबके दर्शन के लिये नीचे सहन में लाया गया। जिस गद्दे पर हुज़ूर के शरीर को रखा था वह सुन्दर बेल-बूटेदार चद्दर से सजा हुआ था और गद्दा एक सुन्दर विशाल गलीचे पर रखा हुआ था। द्वार के पास के पोर्च के नीचे हुज़ूर का शरीर रखा हुआ था और आये हुए सत्संगी एक-एक करके पास से दर्शन करते हुए निकलते जा रहे थे। यह क्रम बग़ैर रुके पाँच घण्टे तक चलता रहा। वे अपने प्यारे सतगुरु के प्रति अन्तिम श्रद्धांजलि अर्पित करने और उनके अनुपम स्वरूप के आख़िरी दर्शन के लिये उमड़े चले आ रहे थे। हुज़ूर का मुख-मण्डल यद्यपि संगमरमर के समान श्वेत और स्थिर था, परन्तु उसमें अभी भी गहरी शान्ति और सौम्यता थी।

संगत के करुण विलाप, रुदन और शोक का दृश्य वर्णन से परे है। और उस समय मुझे बोध हुआ कि 'भक्ति' और 'प्रेम' का वास्तव में क्या अर्थ है। नीची से नीची जाति से लेकर ऊँची से ऊँची जाति के लोग, अछूत और मेहतर से लेकर ब्राह्मण और पण्डित, मुसलमान, हिन्दू तथा सभी धर्म के लोग आकर महाराजजी के पवित्र शरीर के सामने श्रद्धापूर्वक माथा टेक रहे थे। यह अनायास सच्ची भावना के साथ नमते थे। हरएक व्यक्ति उन्हें देखने और उन्हें स्पर्श करने के लिये व्यग्र था। संगत की उमड़ती भीड़ में व्यवस्था रखने के लिये सेवादारों का एक विशेष संगठन बनाया गया था, क्योंकि कोई भी इस कठोर सत्य पर विश्वास नहीं कर पा रहा था कि महाराजजी महा-प्रयाण कर चुके हैं, और अपनी आँखों से देख कर ही यक़ीन करना चाहता था। सभी उनके

सामने फूल, इत्र आदि रख रहे थे। उधर अन्तिम संस्कार के लिये उनके शरीर के आस-पास सुगन्धिपूर्ण द्रव्य रखे जा रहे थे। इसके बाद उन्हें एक अर्थी पर लिटाया गया। अर्थी लाल कपड़े तथा रूपहरी सुनहरी सजावटों से सजी हुई थी।

अब इस बात का निर्णय करना था कि अन्तिम संस्कार उसी दिन किया जाये या बाद में, क्योंकि कई सत्संगियों ने बड़े अनुरोध के साथ प्रार्थना की कि संस्कार कुछ दिनों के बाद किया जाये ताकि उनके मित्र तथा परिवार के लोग, जिन्हें अभी तक ख़बर भी न मिल पाई थी, आकर अपने सतगुरु के अन्तिम दर्शन कर सकें। परन्तु हिन्दुस्तान में यह रिवाज है कि संस्कार उसी दिन किया जाये और इस देश के जलवायु तथा गरम मौसम को देखते हुए अन्तिम संस्कार को स्थगित करना मुश्किल भी है। अतएव यह तय किया गया कि उसी दिन शाम को सूर्यास्त के समय अग्नि-संस्कार किया जाये।

शाम को पाँच बजे तेज़ हवा और आँधी आने लगी, आकाश में धूल छा गई और वातावरण धुँधला हो गया। ऐसा लगता था मानों प्रकृति भी इस व्यथा में व्याकुल हो। ख़ूब सजे हुए शव-मंच पर अर्थी को रखा गया और उसे सतगुरु के बारह निकटतम सत्संगियों ने अपने कन्धों पर उठाया; इनमें नये सतगुरु सरदार बहादुर जगतसिंह जी भी थे। शव-यात्रा डेरे से तीन मील दूर ब्यास नदी के किनारे की ओर चल पड़ी। शव-यात्रियों को रेती के टीलों और घुटनों तक गहरे पानी में से जाना पड़ रहा था। पूरी यात्रा में डेढ़ घण्टा लगा। साथ में 20 हज़ार लोगों का समुदाय फूल आदि फेंकता हुआ तथा भीड़ में एक-दूसरे को धक्के देता हुआ चल रहा था। उनके पैरों से उड़ने वाली धूल सारे वातावरण में छा रही थी और उसमें अर्थी तथा उसको उठाने वाले छिप गये थे। रास्ते में अर्थी उठाने वाले बदलते जा रहे थे।

चिता के चारों ओर एक रस्सी का घेरा बना दिया गया था, परन्तु भीड़ इतनी ज़बरदस्त थी कि कुछ ही क्षणों में घेरा छिन्न-भिन्न हो गया, क्योंकि हरएक व्यक्ति चिता के पास रहना चाहता था। चन्दन आदि बहुमूल्य लकड़ियों से चिता तैयार की जा रही थी। चन्दन की लकड़ी के बड़े-बड़े कुन्दे संगत में एक से दूसरे के हाथों में दिये जा रहे थे। चिता तैयार होने पर सतगुरु के पार्थिव शरीर को उस पर रखा गया तथा

ऊपर से और लकड़ियाँ रखी गईं। बीच-बीच में घी तथा अगर, चन्दन, कपूर आदि सुगन्धित द्रव्य रखे गये। और फिर चिता को अग्नि दी गई।

मैं अपने सहायक डॉक्टर पुरी के साथ कोलाहल और भीड़ से अलग होकर पीछे की ओर आ गया था। हम मानों सबसे बिछुड़ कर एकाकी खड़े थे और मन ही मन अपने सतगुरु के चरणों में प्रार्थना कर रहे थे, जो कि बाहरी दृष्टि से हमें छोड़ कर जा चुके थे। इस सबमें मुझे ऐसा लग रहा था कि मैं एक असहाय विदेशी हूँ। मैं सोच रहा था कि क्या मैं सचमुच ज़िन्दा हूँ। मैं अपने आप से कह रहा था, "अब मैं एक ऐसा अनाथ हूँ जिसने सब-कुछ खो दिया है, जिसे असहाय और बेसहारा छोड़ दिया गया है, जिसे आसरा और सहायता देने वाला अब कोई नहीं है। संसार की मरुभूमि में पथ भूली हुई एक दीन आत्मा हूँ....." और इसी समय भीड़ दोनों ओर हट गई उसमें से एक उज्ज्वल व्यक्तित्व आगे आया, उसके मुख पर एक दिव्य सौम्यता थी और नेत्रों में था करुणापूर्ण प्रेम। ये थे नये सतगुरु जो दोनों हाथ बढ़ाये हुए मेरी ओर आ रहे थे और मुझसे पूछ रहे थे कि क्या वे मेरे पास बैठ सकते हैं। मेरे टूटे हुए दिल और मेरी घोर निराशा का कैसा अनुपम उत्तर था! सतगुरु की करुणा और दया-मेहर का कितना प्रभावशाली तथा मर्मस्पर्शी संकेत था! हम ख़ामोश बैठे थे। मैं श्रद्धापूर्वक अन्तिम संस्कार की विधि देख रहा था। चिता से ऊँची-ऊँची लपटें उठ रही थीं। संगत शब्द गा रही थी। लोग चिता में सुपारी, खजूर, जायफल आदि डाल रहे थे। हवा तेज़ी से चल रही थी, धीमी बारिश हो रही थी; प्रकृति में भी उदासी और अँधेरा छा रहा था।

कुछ समय बाद सरदार बहादुर जी महाराज उठे और मुझे अपने साथ चलने को कहा। मैं बारिश और तेज़ हवा में अपनी छतरी सँभाले उनके साथ चल रहा था। औरों की तरह मैं भी एक हाथ से अपनी पतलून ऊपर खींचे हुए था ताकि वह बारिश व कीचड़ में गन्दी न हो जाये। सहसा जब हमने रुक कर पीछे चिता की चमकती हुई लालिमा की ओर देखा, तो आँधी और बारिश थम चुकी थी और डेरे के पीछे एक अद्वितीय सूर्यास्त का दृश्य दिखाई दे रहा था, जिसके अरुण प्रकाश की पृष्ठ-भूमि में, हमारे सतगुरु द्वारा बनाये हुए विशाल सत्संग-घर की रेखाएँ स्पष्ट दिखाई दे रही थीं। पीछे आसमान की रक्तिम लालिमा में सत्संग-घर का यह दृश्य बहुत ही भव्य और प्रभावशाली था। एक ओर

तो संगत की विशाल भीड़ के बीच में चिता में सतगुरु का पार्थिव शरीर था और दूसरी ओर चिता के समान ही लाल आकाश था, मानों आकाश इस कभी न भुलाये जा सकने वाले अन्तिम-संस्कार के दृश्य का प्रतिबिम्ब ही हो।

चिता पर चार सेवादारों का पहरा बैठा दिया गया था। चिता में डेढ़ दिन तक आग रही। 2 अप्रेल की वह रात भयानक थी; भयंकर आँधी व गुबार, गरजते हुए बादलों की गड़गड़ाहट, बार-बार चमचमाती हुई बिजली और अन्त में तेज़ बरसात की झड़ी। इतने पर भी वे चारों सत्संगी चिता के पहरे पर दृढ़तापूर्वक बैठे रहे। अग्नि सतगुरु के पार्थिव शरीर को अपनी ज्वाला में समेटती जा रही थी, प्रकृति के वेग, आँधी और तूफ़ान की मानों उसे चिन्ता न थी।

4 अप्रेल को दोपहर के बाद फूल चुनने की क्रिया हुई। फूल को शीतल करने के लिये चिता पर दूध डाला गया। इसके बाद महाराजजी के परिवार के सदस्यों ने तथा उनके निकटतम शिष्यों ने बालटियों में फूल तथा राख को समेटना शुरू किया। क़रीब तीन सौ सत्संगी एक कतार बना कर चिता से नदी के बीच तक खड़े थे। बालटियाँ उसी समय से एक-दूसरे के हाथों से होती हुईं नदी के बीच तक पहुँचाई गईं और फूल, राख तथा संस्कार-स्थल की मिट्टी तक जल में प्रवाहित कर दी गई। इस कार्य में पूरी दोपहर बीत गई।

वापस जाने के लिये संगत ने बड़ी कृपा के साथ मेरे लिये घोड़े का इन्तिज़ाम कर दिया था। हुज़ूर महाराजजी की तीन महीने तक सेवा और चिकित्सा करने के लिये जिस प्रकार लोगों ने आकर मुझे शुक्रिया दिया, वह बड़ा ही हृदय-स्पर्शी था। नये सतगुरु स्वयं मेरे निवास-स्थान पर आये, उन्होंने मुझे अपनी बाहों में भर लिया और अत्यन्त करुणा और प्रेम के साथ आभार प्रकट किया। मेरा दिल भर आया। मैं कह सकता हूँ कि उस समय एक सतगुरु से दूसरे में परिवर्तित होने की वास्तविकता का मैंने अनुभव किया, जिसने मेरे अन्तर में एक गहरी अमिट छाप छोड़ दी। मैं उस क्षण को कभी नहीं भूल सकता जो आज तक मेरे लिये अत्यन्त पावन है, जो मेरे लिये एक अमिट वरदान है।

हुज़ूर महाराज सावनसिंह जी एक पूर्ण सन्त तथा सच्चे सतगुरु थे। वे आज भी अपने शिष्यों के अन्तर में बिराजमान हैं और शिष्य आज भी अन्तर में जाकर उनके दिव्य ज्योतिर्मय स्वरूप के दर्शन कर सकते हैं।

हुज़ूर महाराज बाबा सावनसिंह जी की

वसीयत

मैं, सावनसिंह आत्मज सरदार काबलसिंह, जाति जाट-ग्रेवाल, गद्दीनशीन डेरा बाबा जैमलसिंह तहसील और ज़िला अमृतसर, इस दस्तावेज़ के द्वारा नीचे लिखी वसीयत करता हूँ :

इस वसीयत के पहले, मैंने अपनी निजी सम्पत्ति और सत्संगों की जायदाद के बारे में वसीयतें कर दी हैं, परन्तु अभी तक किसी को अपनी जगह डेरा में अपने बाद गद्दीनशीन के बतौर नामज़द नहीं किया। इसलिये अब मैं अपने पूरे होश-हवास में और अपनी मरज़ी से सरदार बहादुर जगतसिंह, एम.ए., रिटायर्ड प्रोफ़ेसर, एग्रीकल्चरल कॉलेज, लायलपुर को डेरा बाबा जैमलसिंह तथा इससे सम्बन्धित सभी सत्संगों के लिये अपना जानशीन मुक़र्रर करता हूँ। जो-जो काम मैं करता रहा हूँ वे सभी काम मेरे बाद सरदार साहिब क़रेंगे।

लिहाज़ा यह वसीयनामा लिख दिया कि सनद रहे और ब-वक़्त ज़रूरत काम आये।

डेरा बाबा जैमलसिंह
ता. 20 मार्च, 1948

वसीयत-कर्त्ता
के हस्ताक्षर
सावनसिंह

ब-क़लम
मुन्शीराम
सेक्रेटरी

गवाह :
बचिन्तसिंह
(हुज़ूर महाराजजी के ज्येष्ठ पुत्र)

गवाह :
चरनसिंह
एडवोकेट

वसीयत के बारे में डॉ. स्मिथ का नोट

वसीयत-कर्त्ता ने, जिनका मैं इलाज कर रहा हूँ, मेरे सामने यह दस्तावेज़ स्वयं दो बार पढ़ा और आपके सेक्रेटरी लाला मुन्शीराम ने भी उन्हें पढ़ कर सुनाया। वसीयत-कर्त्ता सरदार सावनसिंह ने इस पर दस्तख़त मेरी मौजूदगी में किये। मैं प्रमाणित करता हूँ कि वसीयत-कर्त्ता अपने पूरे होश-हवास में हैं और उन्होंने अपनी ख़ुद की मरज़ी से इस पर दस्तख़त किये हैं।

हस्ताक्षर : **डॉ. पैरी स्मिथ**
निवासी-जिनेवा, स्विट्ज़रलैण्ड
दोपहर 1 बजकर 30 मिनट
दिनांक : 20 मार्च, 1948

सील :
रजिस्ट्रार जालन्धर

हस्ताक्षर : **गुरबचनसिंह**
सब-रजिस्ट्रार

हमारे हिन्दी प्रकाशन

स्वामी शिवदयालसिंह जी महाराज

1. सारबचन राधास्वामी (छन्द-बन्द)
2. सारबचन राधास्वामी (वार्तिक)
3. सारबचन संग्रह

बाबा जैमलसिंह जी महाराज

1. परमार्थी पत्र, भाग 1

हुज़ूर महाराज सावनसिंह जी

1. परमार्थी पत्र, भाग 2
2. शब्द सार
3. शब्द की महिमा के शब्द
4. अमृत वचन
5. गुरुमत सिद्धान्त, भाग 1, 2
6. गुरुमत सिद्धान्त 84 विषय
7. सन्तमत प्रकाश, भाग 1 से 5
8. परमार्थी साखियाँ
9. गुरुमत सार
10. प्रभात का प्रकाश

सरदार बहादुर जगतसिंह जी

1. आत्म-ज्ञान
2. रूहानी फूल

हुज़ूर महाराज चरनसिंह जी

1. सन्तों की बानी
2. सन्तमत दर्शन, भाग 1 से 3
3. सन्त-संवाद, भाग 1, 2
4. सन्त-मार्ग
5. जीवत मरिए भवजल तरिए
6. पारस से पारस
7. सत्संग नं. 1 से 46 (छोटी पुस्तिकाएँ)
8. सत्संग: 24 मई से 27 मई 1990

सतगुरुओं के विषय में

1. रूहानी डायरी, भाग 1 से 3- राय साहब मुन्शीराम
2. धरती पर स्वर्ग-दरियाईलाल कपूर
3. सन्त समागम- दरियाईलाल कपूर
4. अनमोल ख़ज़ाना- शान्ति सेठी

'पूर्व के सन्त' पुस्तक-माला के अन्तर्गत

1. सन्त नामदेव- जनक पुरी
2. सन्त दादू दयाल- के. एन. उपाध्याय
3. सन्त दरिया (बिहारवाले)-के.एन.उपाध्याय
4. गुरु रविदास- के. एन. उपाध्याय
5. मीरा प्रेम दीवानी- वीरेन्द्र सेठी
6. सन्त पलटू- राजेन्द्र सेठी
7. सन्त कबीर- शान्ति सेठी
8. तुलसी साहिब-जनक पुरी, वीरेन्द्र सेठी
9. गुरु नानक का रूहानी उपदेश-जनक पुरी
10. साईं बुल्लेशाह-जे.आर.पुरी, टी.आर.शंगारी
11. सन्त चरनदास- टी. आर. शंगारी
12. भाई गुरुदास- महिन्दरसिंह जोशी
13. नाम-भक्ति : गोस्वामी तुलसीदास- के. एन. उपाध्याय, पंचानन उपाध्याय
14. उपदेश राधास्वामी (स्वामीजी महाराज)- सहगल, शंगारी, ख़ाक, भण्डारी
15. परम सन्त महाराज सावनसिंह- मनमोहन सहगल

सन्तमत के सम्बन्ध में

1. सन्तमत विचार- शंगारी, ख़ाक
2. सन्त संदेश- शान्ति सेठी
3. गुरुमत- लेखराज पुरी
4. बिनती और प्रार्थना के शब्द- सम्पादित
5. अन्तर की आवाज़- कर्नल सैंडर्स
6. अमृत नाम- महिन्दरसिंह जोशी
7. हक़ हलाल की कमाई- सम्पादित
8. नाम सिद्धान्त- शंगारी, ख़ाक, भण्डारी, सहगल
9. हंसा हीरा मोती चुगना- सम्पादकः सन्तोखसिंह, टी. आर. शंगारी